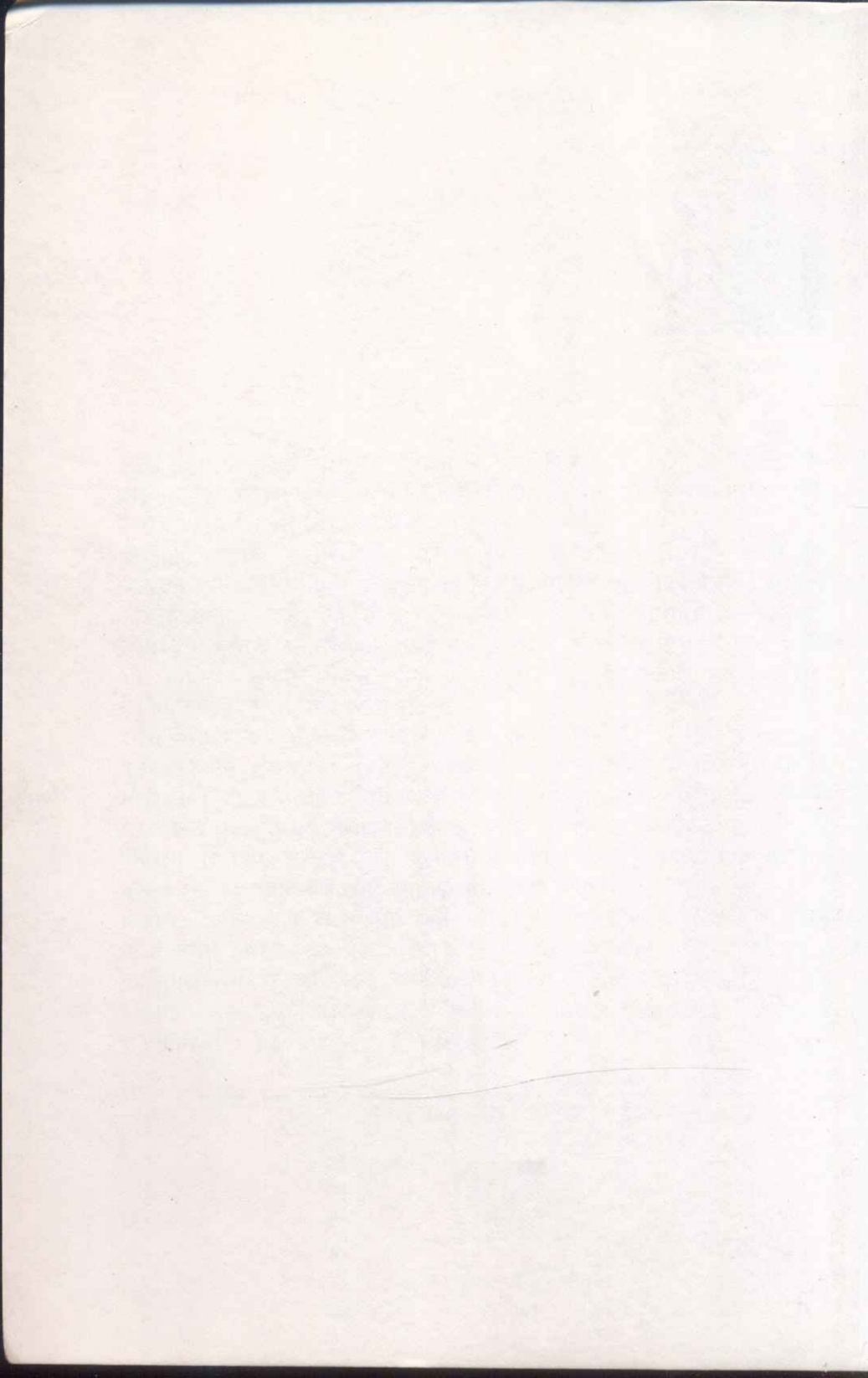


गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य



डा. कमल सिंह

250-00



गोरखनाथ और उनका हिन्दी-साहित्य

डा. कमल सिंह



186, इंजीनियर्स कालोनी
क्वार्सी बाईपास रोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

ISBN 978 - 81 - 88978 - 34 - 2

प्रकाशक :



186, इंजीनियर्स कालोनी

क्वार्सी बाईपास रोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

सर्वाधिकार : डा. कमल सिंह

संस्करण : प्रथम संस्करण सन् 1983 ई०

: द्वितीय संस्करण (संशोधित, परिवर्धित) सन् 1990 ई०

: तृतीय संस्करण (पुनर्मुद्रण) सन् 2010 ई०

आवरण : लिथो कलर प्रिंटर्स, अलीगढ़

मुद्रक : लिथो कलर प्रिंटर्स, अलीगढ़

मूल्य : रु. 190/-

GORAKH NATH AUR UNKA HINDI SAHITYA (CRITICISM)

BY Dr. KAMAL SINGH

卐 समर्पण 卐

“बाबा गोरखनाथ को कभी मत छोड़ना”
की प्रेरणा देने वाले संतसाधक
आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी को
गुरुदक्षिणा के रूप में
सादर.

- कमल सिंह

THE HISTORY OF

THE CITY OF BOSTON

FROM THE FIRST SETTLEMENT

TO THE PRESENT TIME

BY

JOHN

WINTHROP

OF THE CITY OF BOSTON

IN TWO VOLUMES

VOLUME THE FIRST

BOSTON

1856

WINTHROP

OF THE CITY OF BOSTON

विभिन्न विद्वानों की सम्मतियाँ

डा० उदयनारायण तिवारी—“गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य’ में आपने खड़ी बोली की छह कड़ियों का उल्लेख किया है— १- राउलवेल की टक्की २- गोरखनाथ की बानियाँ ३- खुसरो की भाषा ४- कबीर की भाषा ५- कुतुब शतक की हिन्दुई ६- दक्खिनी । वास्तव में पूर्वी पंजाबी और खड़ी बोली का अति निकट का संबंध है । खड़ी बोली पर टक्क अपभ्रंश का प्रभाव है । आपको इस कृति को प्रकाशित देखकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है । आपने अनेक समस्याओं को स्पष्ट किया है, इसके लिए आप मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें । नेक आशीर्वाद ।”

डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित—“आपकी पुस्तक ‘गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य’ पढ़ गया । पुस्तक अपने पूरे रूप में महत्त्वपूर्ण है, परन्तु मुझे इसका तीसरा अध्याय ‘गोरखनाथ की भाषा’ और हिन्दी-रचनाओं की टीका और अर्थ बहुत महत्त्वपूर्ण लगा । टीका और अर्थ के संबंध में यह मानकर चलता हूँ कि आप उसके अधिकारी हैं और उसका दिया जाना हमारे लिए सर्वथा लाभकर है ।”

डा० अम्बाप्रसाद ‘सुमन’—“हिन्दी अर्थात् खड़ी बोली हिन्दी के आदिस्वरूप से अवगत होने के लिए हिन्दी के पाठक को यह कृति अवश्य पढ़नी चाहिए । कबीर जायसी आदि निगुण और सूफी सन्तों की वाणी को समझने के लिए डा० कमलसिंह की यह कृति उपादेय सिद्ध होगी । नाथ-संप्रदाय के अध्यात्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य और भाषा को जानने के लिए भी यह पुस्तक दिशा-निर्देशक का काम करती है ।

हिन्दी साहित्य के प्रथम डी० लिट्० (एक भारतीय विश्वविद्यालय से) डा० पीताम्बर दत्त बड़थवाल ने गोरखनाथ के जितने मार्गों को अपने सारस्वत चिन्तनालोक से आलोकित किया था, उससे कुछ आगे ही भाषा-चिन्तन की दृष्टि से डा० कमलसिंह ने उस मार्ग को आलोकित किया है ।”

डा० कैलाशचन्द्र भाटिया—“यद्यपि गोरखनाथ और उनके युग पर कई शोध-कार्य तथा आलोचनात्मक ग्रंथ उपलब्ध हैं पर प्रस्तुत कृति सर्वथा भिन्न प्रकार की है । यह शोधकार्य भी है, और आलोचनात्मक कृति भी, फलतः अध्येताओं तथा विद्यार्थियों के लिए सामान्य रूप से उपयोगी ।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विवेचन है ‘खड़ी बोली की आदिकालीन शृंखला में गोरख का योगदान’, जिसमें लेखक ने बिखरी हुई कड़ियों को जोड़कर खड़ीबोली शृंखला को पूर्ण करने का प्रयास किया है । इस शृंखला की प्रथम कड़ी है ‘राउलवेल की टक्की’ और दूसरी शक्तिशाली कड़ी है, ‘गोरखनाथ की बानियाँ’ । तीसरी कड़ी खुसरो की ‘हिन्दुई’, चौथी कबीर की भाषा, पाँचवीं कुतुबशतक की हिन्दुई और छठी कड़ी है दक्खिनी हिन्दी । इस प्रकार ११ वीं शताब्दी से १६ वीं शताब्दी तक की खड़ी बोली शृंखला तैयार होती है ।

डा० कमल ने बड़े श्रम से गोरखबानी के सूत्रों को पकड़ा है । यही कारण है कि पुस्तक के दूसरे भाग में नमूने के तौर पर ‘सबदी’ तथा ‘पद’ दिये गये हैं, जिनकी

टीका व अर्थ भी दिया गया है। भविष्य में डा० कमलगृह से आशा है कि सम्पूर्ण 'गोरखबानी' का भाष्य इसी प्रकार प्रस्तुत कर गोरख के अध्येताओं का मार्ग प्रशस्त करेंगे और जो कार्य डा० बड़वाल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डा० रांगेय राघव ने प्रारंभ किया था उसको हिन्दी के व्यापक हित में आगे बढ़ायेंगे।"

श्री रामलाल श्रीवास्तव—“आपने बड़ी सहृदयता और बौद्धिक निर्मलता के परिप्रेक्ष्य में गोरखनाथ जी के साहित्यिक योगदान और उनकी योगसाधना के संबंध में इस पुस्तक में जो मौलिक विषय प्रतिपादन किया है, उससे आप की इस प्रस्तुति का महत्व बढ़ जाता है और नाथयोग की साहित्यिक धारा के चिन्तन में यह एक महनीय संश्लिष्ट है।"

डा० कृष्णचन्द्र गुप्त—“गोरखनाथ का समय, उनकी भाषा का निर्धारण, तत्कालीन परिवेश में उनका योगदान, साहित्य और विशेषतः तत्कालीन समाज के सन्दर्भ में, उनकी उलटवाँसियों तथा जटिल और रहस्यमयी बानियों का स्पष्टीकरण सचमुच बड़े श्रम का द्योतक है। गोरखनाथ और उनके पंथ को लेकर जो भ्रांति जनसाधारण में है, उसे भी आपने साफ किया है। नारी विरोध, गृहस्थ विरोध आदि अनेक गुत्थियों को सुलझाया है और गोरखनाथ के योगदान को ऐतिहासिक सन्दर्भ में रेखांकित किया है। अंत में हिन्दी रचनाओं का संकलन ग्रन्थ को और अधिक उपयोगी तो बनाता ही है, गोरख साहित्य को लोकप्रिय बनाने में भी सहायक है तथा बाद में दी गई टिप्पणियाँ इस साहित्य को समझने में सहायक होती हैं। इतिहास, भ्रांति, अज्ञान, दुराग्रह के धुंध में खोये हुए गोरखनाथ को उजागर करने के लिए आप साधुवाद के पात्र हैं।"

डा० नरेन्द्र कुमार शर्मा—“इस कृति में लेखक ने अत्यन्त सारगर्भित रूप में गोरखनाथ की हिन्दी-रचनाओं की प्रामाणिकता, उनकी योग-साधना, दर्शन तथा परवर्ती हिन्दी साहित्य पर उनका प्रभाव का विवेचन किया है जो उपयोगी बन पड़ा है। विषय को लेखक ने पूरी तन्मयता और निष्ठा से प्रस्तुत किया है। गोरखनाथ की भाषा और उनके साहित्य के अध्येताओं के लिए यह एक उपयोगी पुस्तक है एवं लेखक का इस दिशा में किया गया प्रयास सराहनीय है।"

डा० भोलानाथ तिवारी—“आपके भाषा-संबंधी निर्णय से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। मुझे गोरख की भाषा खड़ीबोली ही लगती है। भगवान करे 'गोरख' के विषय में आपको लोग सदा-सर्वदा स्मरण करते रहें।"

डा० पारसनाथ तिवारी—“पुस्तक मैं सरसरी निगाह से देख गया। आपने पर्याप्त अध्ययन-अनुशीलन का परिचय इसमें दिया है। संधाभाषा संबंधी पदों के अर्थ मैं विशेष ध्यानपूर्वक पढ़ गया। यह देखकर प्रसन्नता हुई कि आपने उसमें भी बहुत सूझ-बूझ का परिचय दिया है। लेकिन मेरा सुझाव तो यह है कि अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक मानी जानेवाली समस्त रचनाओं का इसी प्रकार संकलन कर देते तो अच्छा था, गोरखबानी का नया रूप हो जाता।"

□

अनुक्रम

पृष्ठ

०	शुभाशिव	
०	प्रस्तावना	
०	लेखकीय पुरोवाक्	
१.	गोरखनाथ और उनकी हिन्दी-रचनाएँ	१-२६
१.१.	गोरखनाथ का आविर्भावकाल	१
१.२.	गोरखनाथ की हिन्दी-रचनाओं का परिचय	४
१.३.	खड़ीबोली की आदिकालीन शृंखला में गोरखनाथ का योगदान	१०
१.४.	गोरखनाथ: हिन्दी के पहले कवि	१५
१.५.	गोरखनाथ की रचनाओं की प्रामाणिकता	२०
२.	गोरखनाथ की योग-साधना	३०-६२
२.१.	शिवोपदिष्ट योग का संकेत	३०
२.२.	सिद्ध-सिद्धान्त	३४
२.३.	हठयोग प्रक्रिया	३६
२.४.	योगासन	४४
२.५.	योगसाधना में आहार-विहार	४८
२.६.	नारी-भावना	५४
३.	गोरखनाथ की भाषा	६३-१०५
३.१.	भाषावैज्ञानिक विवेचन	६३
३.२.	संघा भाषा	६८
३.३.	प्रतीकात्मक शब्दावली	७४
३.४.	पारिभाषिक शब्दावली	१०१
४.	गोरखनाथ की काव्यगत विशेषताएँ	१०६-१२४
४.१.	छन्द-विधान तथा शैली	१०६
४.२.	भाषा एवं शब्द-विधान	१११
४.३.	प्रतीक-विधान	११३
४.४.	बिम्ब-विधान	११८
४.५.	मिथक-तत्त्व	१२०
४.६.	अलंकार	१२१
५.	परवर्ती हिन्दी-साहित्य पर गोरखनाथ का प्रभाव	१२५-१३७
६.	गोरखनाथ की प्रासंगिकता और हिन्दी-साहित्य को देन	१३८-१५१
७.	विशिष्ट हिन्दी-रचनाएँ	१५२-१६३
८.	हिन्दी रचनाओं की टीका एवं अर्थ	१६४-१६६

शुभाशिष

आप द्वारा लिखित पुस्तक "गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य" की एक प्रति प्राप्त हुई। आद्योपान्त उसका अवलोकन किया। यह सच है कि महायोगी गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओं के संदर्भ में विद्वानों द्वारा अब तक यथेष्ट प्रकाश नहीं डाला जा सका है। इस दिशा में किया गया आपका प्रयास उपयोगी एवं श्रम-साध्य है। 'गोरखबानी' के अन्तर्गत डा० बड़थवाल ने गुरु गोरखनाथ की जिन ४० रचनाओं का संकलन किया है, उनके प्राप्ति-स्थान एवं काल-निर्धारण आदि को तालिका के माध्यम से प्रस्तुत करके कथ्य को आपने सहज, सुलभ और सुबोध बना दिया है। आपका यह अभिमत भी यथार्थ है कि हिन्दी खड़ीबोली के विकास में संत नामदेव, अमीर खुसरो एवं कबीर आदि ने जो योगदान किया था उसकी पृष्ठभूमि उनसे बहुत पहले गुरु गोरखनाथ ने तैयार की थी। बौद्ध सिद्धों की बानियाँ अपभ्रंश में मिनती हैं, जब कि श्रीगोरखनाथ की रचनाओं में खड़ीबोली हिन्दी अपनी अनेक विशेषताओं के साथ लक्ष्य की जा सकती है। इस परिप्रेक्ष्य में गोरखबानी की कतिपय सब्दियाँ एवं पद उद्धृत कर आपने विषय को प्रमाणित एवं तर्क-सम्मत भी बनाया है। खड़ी बोली हिन्दी के विकास-क्रम में गोरखबानी एवं श्री गोरखनाथ के योगदान की सविस्तार चर्चा करते हुए आपका यह प्रतिगदन कि 'गोरखबानी की भाषा खड़ी बोली शृंखला की आदिकालीन कड़ी है और महायोगी गोरखनाथ हिन्दी के प्रथम कवि हैं, यथार्थ एवं मौलिक है।

गुरु गोरखनाथ के आविर्भाव-काल, सिद्धान्त एवं साधना आदि विषयों पर भी आपकी लेखनी चली है। इस प्रसंग में विद्वानों के मत-मतान्तर भी प्रस्तुत किये गये हैं। नाथयोग की परिभाषिक शब्दावलियों का वैज्ञानिक विवेचन करते हुए जिन तथ्यों का उद्घाटन हुआ है, उनसे शोधकर्त्ताओं एवं अध्येताओं को नया प्रकाश मिलेगा। पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों में गोरखबानी की कुछ सब्दियाँ एवं पद उद्धृत कर उनकी तथ्यपूर्ण टीका प्रस्तुत करने का आपका प्रयास पाठकों में विषय के प्रति सहज आकर्षण पैदा करेगा। हम आपके इस सुझाव से भी सहमत हैं कि प्रामाणिकता एवं काल-निर्धारण आदि को दृष्टिपथ में रखते हुए श्री गोरखनाथ की रचनाओं का पुनः सम्पादन आवश्यक है, इससे कुछ नये तथ्य उभर कर सामने आ सकते हैं।

नाथ-साहित्य के अध्ययन, शोध एवं लेखन में आपकी अभिरुचि को देखते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है और साथ ही मुझे आशा भी है कि आप इस दिशा में अपने चिन्तन-मनन एवं अध्यवसाय से जन-सामान्य को और अधिक उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करेंगे। इस पुनीत कार्य में मेरी शुभकामना आपके साथ है।

महन्तश्री अवेद्यनाथ

श्री गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर

शुभेच्छु

अवेद्यनाथ

प्रस्तावना

गोरखनाथ मध्यकालीन धर्म-साधना एवं साहित्य के अप्रतिम व्यक्तित्व हैं। उनके द्वारा प्रवर्तित एवं संघटित "नाथ सम्प्रदाय" सम्पूर्ण भारत में तो व्याप्त है ही, चीन, मंगोलिया, जापान एवं पूर्वी द्वीप समूह में भी व्यापक प्रभाव रखता है। नाथ योगियों की दृष्टि में गोरखनाथ का व्यक्तित्व दिव्य एवं लोकोत्तर है। वे साक्षात् परम शिव हैं। उन्हें देशकाल की सीमा में आवद्ध नहीं किया जा सकता। वे अनादि और अनन्त हैं। आधुनिक इतिहासकारों की दृष्टि में गोरखनाथ एक विलक्षण व्यक्तित्व वाले सच्चे सिद्ध योगी थे, जिनका आविर्भाव ईसा की सातवीं शती से लेकर तेरहवीं शती के बीच किसी समय हुआ होगा। दोनों प्रकार की मान्यताओं में किसी प्रकार का विवाद उठाना उचित नहीं। अध्यात्मप्रधान इस देश में प्रत्येक धर्म-सम्प्रदाय अपनी दिव्य उत्पत्ति घोषित करता है। इतिहासकार वैज्ञानिक दृष्टि-सम्पन्न होने के कारण प्रत्येक महिमामय व्यक्तित्व को देश-काल-बद्ध मानता है और आधुनिक पद्धति से उसकी ऐतिहासिकता प्रमाणित करके अपनी अनुसंधित्सा को तुष्ट करता है।

जहाँ तक नाथ-सम्प्रदाय का प्रश्न है, निस्सन्देह यह भारत के प्राचीनतम धर्म-सम्प्रदायों में से एक है। गोरखनाथ के आविर्भाव के पूर्व भी इसकी सत्ता किसी न किसी रूप में विद्यमान थी। वस्तुतः विश्व-प्रसूति के मूल में विश्व-शक्ति की परिकल्पना अत्यन्त प्राचीन है। यह भारतीय धर्म-साधना का बीज रूप है। अतः शक्ति-तत्त्व को महत्त्व देने वाले धर्म-सम्प्रदायों की प्राचीनता सन्देह से परे है। नाथ-योग में कुण्डलिनी के रूप में विश्वशक्ति को ही महत्त्व दिया गया है। शिव और शक्ति एक ही अद्वयतत्त्व के द्विविध रूप हैं। यह तंत्र-विद्या का मूल सिद्धान्त है। यह विद्या ऋग्वेद की रचना के पूर्व भी विद्यमान थी। नाथ-योग में तंत्र-विद्या के इस बीज रूप को स्वीकार किया गया है। शिव-शक्ति की अद्वयता ही हठयोग की साधना का लक्ष्य है। ऐसा समझा जाता है कि गोरखनाथ के पूर्व नाथ-योग में भी कुछ विकृतियाँ आ गयी थीं। गोरखनाथ ने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को सतर्क एवं जागृत करके एक प्रकार से नाथ-मत को ही नयी शक्ति और ऊर्जा प्रदान की थी। उन्होंने अन्य अनेक समशील साधनाओं को परिष्कृत करके अपने मत में समाहित कर लिया था। किसी समय पूरे एशिया को प्रभावित करने वाले बौद्ध-धर्म के परवर्ती प्रवाह को भी गोरखनाथ ने परिष्कृत किया था और बौद्धधर्म-प्रभावित क्षेत्रों को नाथ-मत की साधना-सीमा में समेट लिया था। अपने समय में उन्होंने नाथ-मत को एक शक्तिशाली राष्ट्रीय धर्ममत का स्वरूप प्रदान किया था।

ऐसे महिमामय व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जितना भी अध्ययन-अनुशीलन किया जाए, वह कम ही कहा जाएगा। 'गोरखनाथ और उनका हिन्दी-साहित्य' गोरखनाथ

की अध्ययन-परम्परा को आगे बढ़ाने वाला एक उल्लेखनीय प्रयास है। इसके लेखक डा० कमल सिंह ने गोरखनाथ को ईसा की दसवीं शती में आविर्भूत माना है। डा० सिंह ने ऐतिहासिक साक्ष्यों के अतिरिक्त भाषागत साक्ष्य भी प्रस्तुत किये हैं। डा० सिंह के अनुसार गोरखनाथ हिन्दी के प्रथम कवि हैं। अब तक हिन्दी के प्रथम कवि के रूप में “पुष्प” या “पुण्ड”, “सिद्ध सरहपाद”, “शालिभद्र सूरि” और “अमीर-खुसरो” के नाम लिये जाते रहे हैं। इनमें “पुण्ड” की कोई रचना उपलब्ध न होने के कारण उनके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है; “अमीर खुसरो” की उपलब्ध रचनाओं की भाषा का स्वरूप आधुनिक होने के कारण विश्वसनीय नहीं है, सरहपाद और शालिभद्र सूरि की भाषा मूलतः अपभ्रंश है जबकि गोरखनाथ की भाषा सरलता से समझी जा सकती है। अतः गोरखनाथ को ही हिन्दी का प्रथम कवि मानना समीचीन होगा।

डा० कमल सिंह ने प्रस्तुत कृति में अत्यन्त सारगर्भित रूप में गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओं की प्रामाणिकता, उनकी योगसाधना, उनके दर्शन, उनके नैतिक आचार, उनकी नारी-भावना, उनकी रचना का शिल्प-विधान, उनकी संघा भाषा, उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकात्मक एवं पारिभाषिक शब्दावली तथा परवर्ती हिन्दी-साहित्य पर उनके व्यापक प्रभाव का विवेचन किया है। अतः उनकी कुछ विशिष्ट रचनाओं तथा उनकी टीका देकर उन्होंने कृति को अधिक उपयोगी और संग्रहणीय बना दिया है। पूरी पुस्तक बड़ी तन्मयता और निष्ठा से लिखी गई है। जो कुछ कहा गया है, पूरी तरह आत्मसात् करके सहज ग्राह्य एवं विश्वसनीय बना दिया गया है। अब तक नाथ-सम्प्रदाय और गुरु गोरखनाथ का अध्ययन अनेक विद्वानों ने किया है। महा-पंडित राहुल सांकृत्यायन डा० पीताम्बर दत्त बड़थवाल, डा० मोहन सिंह, श्री जी० डब्ल्यू० त्रिगस, प० हजारौ प्रसाद द्विवेदी, डा० रांगेय राघव, श्री अक्षयकुमार बंद्योपाध्याय, डा० कोमल सिंह सोलंकी, डा० कल्याणी मल्लिक, डा० अशोक प्रभाकर कामत, डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, डा० दिवाकर पाण्डेय आदि अनेक विद्वानों ने इस संदर्भ में महत्वपूर्ण कार्य किया है। डा० कमल सिंह ने भी इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए गोरखनाथ की भाषा पर शोधकार्य किया है प्रस्तुत कृति को उन्होंने अपने शोध से प्राप्त निष्कर्षों से भी समृद्ध किया है।

गोरखनाथ की हिन्दी-कृतियों को आधार बनाकर उनके साधक और कवि व्यक्तित्व का अध्ययन अभी तक नहीं के बराबर हुआ है। इस दृष्टि से प्रस्तुत कृति को एक सार्थक एवं उल्लेखनीय प्रयास कहा जा सकता है। मैं डा० कमल सिंह की प्रस्तुत कृति का हार्दिक स्वागत करता हूँ। मेरा विश्वास है, भविष्य में डा० सिंह अत्यधिक मनोयोग और निष्ठा से गोरखनाथ और उनके साहित्य के अनुसंधान में प्रवृत्त होंगे और हिन्दी-संसार उनकी कृतियों से लाभान्वित होगा।

लेखकीय पुरोवाक्

गुरु गोरखनाथ हिन्दी (छड़ी बोली) के सबसे पहले कवि हैं । हिन्दी-भाषा और उसकी उत्पत्ति में तथा सम्पूर्ण भारत की संत-परंपरा के विकास में, गोरखनाथ का स्थान सर्वप्रमुख है । महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डा० पीताम्बर दत्त बड़थवाल, डा० मोहनसिंह, श्री जौ० डब्ल्यू त्रिगस, श्री गोपीनाथ कविराज, डा० हजारोप्रसाद द्विवेदी, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डा० रांगेय राघव, श्री अक्षय कुमार वंद्योपाध्याय, डा० कोमलसिंह सोलंकी, डा० कल्याणी मल्लिक, महन्त अवेद्यनाथ, डा० अशोक प्रभाकर कामत, डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, डा० दिवाकर पाण्डेय, श्री शान्तिप्रसाद चन्दोला, डा० मंगल बिहारी शरण शर्मा आदि विद्वानों ने इस ओर मार्ग प्रशस्त्र किया है किन्तु नाथ-संप्रदाय से संबंधित सभी विद्वानों का दृष्टि नाथ-सिद्धों की योग-साधना एवं दार्शनिक विचार-धारा पर ही केन्द्रित रही है ।

प्रस्तुत कृति में लेखक की दृष्टि हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति में गोरखनाथ का स्थान निर्धारित करते हुए उनके साहित्य पर केन्द्रित रही है । गोरखनाथ की योग-पद्धति का अध्ययन किये बिना कबीर आदि संतों की योगात्मक गुणियों को सुलझाना आसान नहीं है इसलिए गोरखनाथ की योग-साधना का भी सम्यक् विवेचन किया गया है ।

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होगा कि परवर्ती हिन्दी-साहित्य की योग-साधना संबंधी विचार-धारा पर गोरखनाथ की विचारधारा एवं शिल्प-विधान कितने प्रबल रूप से छाये हुए हैं ।

पुस्तक में गोरखनाथ की विशिष्ट हिन्दी-रचनाओं के संकलन के साथ-साथ उनका अर्थ एवं टीका देना भी इसलिए आवश्यक था कि गोरखनाथ को समझने-समझाने में आसानी हो जाए ।

लेखक की पी-एच०डी० के शोध-प्रबंध की मौखिकी के पश्चात् आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने एक 'गुरु-दक्षिणा' मांगी थी-“बाबा गोरखनाथ को कभी मत छोड़ना ।” यह कृति गुरु-दक्षिणा के रूप में उन्हीं संत-साधक को समर्पित है ।

परमादरणीय महन्त श्री अवेद्यनाथ जी, डा० अम्बरसाद 'सुमन', डा० रामचन्द्र तिवारी एवं श्री रामलाल श्रीवास्तव की निरंतर प्रेरणाओं, सुझावों तथा आग्रहों के फलस्वरूप ही इस कृति का साकार रूप प्रस्तुत हो सका है । महन्त श्री अवेद्यनाथ जी ने "शुभाशिष" तथा डा० रामचन्द्र तिवारी ने "प्रस्तावना" लिखकर मुझे और भी अनुग्रहीत कर दिया है । मैं उक्त चारों विद्वानों का बहुत-बहुत आभारी हूँ ।

प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जिन विद्वानों की प्रेरणा अथवा सहयोग इस कृति के लेखन में रहा है, उन सभी के प्रति लेखक विनम्र आभार प्रकट करता है।

अपनी सीमाओं को स्वीकार करते हुए प्रस्तुत कृति विद्वानों के हाथों में समर्पित है।

हिन्दी-विभाग

—कमलसिंह

सनातनधर्म महाविद्यालय

मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)

द्वितीय संस्करण

विद्वान् पाठकों ने प्रस्तुत कृति के प्रथम संस्करण की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। मुझे ढेर-सारे पत्रों से विद्वानों का आशीर्वाद, बधाई, साधुवाद, प्रोत्साहन एवं मुज्ञाव मिले हैं। विद्वानों की इस कृपा का प्रतिफल ही यह द्वितीय संस्करण है। विद्वानों की कतिपय सम्मतियों इस दूसरे संस्करण में प्रकाशित भी की जा रही हैं। अनेक सुझावों के आधार पर इस संस्करण में पर्याप्त संशोधन एवं परिवर्धन कर दिया गया है। चौथा तथा छटा अध्याय नये बढ़ाये गये हैं। पुस्तक को अपने में पूर्ण करने का प्रयास किया गया है।

इधर एक प्रसन्नता की बात यह हुई कि कुछ विश्वविद्यालयों ने गोरखनाथ और उनकी रचनाओं को अपने पाठ्यक्रमों में समाहित कर लिया है। मुझे आशा है कि पाठक इस द्वितीय संस्करण का उपयोग और भी अधिक कर सकेंगे।

—कमलसिंह

१. गोरखनाथ और उनकी हिन्दी रचनाएँ

१. १. गोरखनाथ का आविर्भाव काल

आज भी संपूर्ण भारत, पाकिस्तान, नेपाल और अफगानिस्तान में गोरखनाथ के अनुयायी एवं काबुल, पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, राजस्थान और महाराष्ट्र तक फैली हुई नाथ-पंथ की गदियाँ गोरखनाथ की विस्तृत महत्ता की परिचायिका हैं। उनके समय और जन्मस्थान के संबंध में विवाद हो सकते हैं किन्तु उनकी प्रतिभा और महानता निर्विवाद है। भारत में शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और युग-प्रवर्तक व्यक्तित्व दूसरा नहीं हुआ।¹ गोरखनाथ जब तक रहे, अपने युग पर छाए रहे। उनके शरीर-त्याग के बाद इतिहास ने गोरख को भुलाने का प्रयत्न किया। यह देश का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है किन्तु युग-प्रवर्तक दिव्य व्यक्तित्व इतिहास एवं काल की पहुँच से भी परे होता है। यही कारण है कि गोरखनाथ आज भी प्रासंगिक हैं और वे किसी न किसी रूप में हम से संबद्ध हैं।

गोरखनाथ ने समाज के विभिन्न विभेदों की समाप्ति करके अंध-विश्वास और मिथ्या आरोपित छद्म को चकनाचूर करके जन साधारण को गले लगाया, आश्वस्त किया। बहुत संभव है कि कतिपय इतिहास-वेत्ताओं और धर्म के आचार्यों को यह ऊँच-नीच की समानता, जाति-पाँति के प्रति उपेक्षात्मक प्रवृत्ति और शासक-शासित का समन्वय रुचिकर न लगा हो। यही कारण है कि आज इस महान् योग-गुरु के विषय में ठोस एवं ऐतिहासिक तथ्य प्रायः कम ही मिलते हैं।

गोरखनाथ के संबंध में पर्याप्त ऐतिहासिक तथ्य चाहे न मिलते हों, पर जाने-अनजाने वह आज भी हमारे घर-घर में समाहित है। भारत की ऐसी कोई भाषा नहीं, जिसमें गोरखनाथ-संबंधी कहानियाँ न पायी जाती हों। देश का कोई क्षेत्र ऐसा

1 गोरख को शंकर के बराबर आसन पर देखकर विद्वानों से प्रार्थना है कि वे एकदम चौक न हों उठें क्योंकि तथ्यों ने इसी ओर मुझे पहुँचाया है। —गोरखनाथ और उनका युग —डा० रमेश रायच, भूमिका, पृष्ठ 'ड.'

नहीं, जहाँ उनके अनुयायी न पाये जाते हों। चाहे अम्बाला, हैदराबाद और रंगपुर में गाने-बजाने का काम करते हों, काँगड़ा में नगनावस्था में औषड़ के रूप में घूमते हों, मध्यप्रदेश में शीशे-कंधे-मूँगे आदि बेचते फिरते हों; बंगाल और आसाम में जुलाहे का काम करते हों; बंबई में नाथों के वेप में घूमते हों तथा उत्तरप्रदेश में जोगी और भगत के नाम से प्रसिद्ध हों, ये सभी नाथ-पंथ के ही अवशेष हैं।

संकोच होता है कि ऐसे युग-प्रवर्तक धर्म-गुरु का अविर्भाव-काल भी विवादास्पद है। उनके काल-निर्धारण के संबंध में शोध करने वाले विद्वानों के मत-भेद के साथ नाथपंथियों के द्वारा गोरखनाथ को आदिनाथ शिव के साक्षात् स्वरूप अमर महायोगी मानने के कारण तथा नाथ-संप्रदाय के अत्यधिक प्रसारित-प्रचारित होने से अन्य पंथ वालों के द्वारा अपना संबंध गोरखनाथ से जोड़ने के कारण भी गोरखनाथ का सही समय निर्धारित करने में कठिनाई होती रही है। उनके सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ भी काल-निर्धारण में बाधक रही हैं। फिर भी अन्तः साक्ष्य और बहिः साक्ष्य के आधार पर ऐतिहासिक-विवेचन करते हुए उनका काल-निर्धारण करने का प्रयास किया जा सकता है। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व अन्य विद्वानों के मत जान लेना भी आवश्यक है।

अनेक विद्वान गोरखनाथ का आविर्भाव काल सातवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक ठहराने का प्रयास कर चुके हैं। डा० भवानी शंकर त्रिवेदी गोरख का समय ७वीं शती मानते हैं।¹ डा० शहीदुल्ला ने गोरखनाथ को ८ वीं शती का माना है।²

६ वीं शताब्दी का समय मानने वालों में आचार्य पं० किशोरीदास वाजपेयी, श्री राहुल सांकृत्यायन तथा डा० रांगेय राघव के नाम उल्लेखनीय हैं। आचार्य वाजपेयी जी का कहना है कि “पुष्पदन्त का समय दसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इनसे लगभग सौ वर्ष पहले की गोरख-वाणी देखिए।”³ राहुल जी का कहना है कि “महाराज देवपाल (८०६-८४६ ई०) के समकालीन सिद्ध गोरखनाथ पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कबीर से विवाद करने नहीं आ सकते। वस्तुतः वहाँ हमें गोरखनाथ की जगह उनके नाथपंथ को लेना चाहिए।”⁴ डा० रांगेय राघव का कहना है कि मत्स्येन्द्र जी नवीं शताब्दी के मध्यभाग में हुए। गोरखनाथ उनके शिष्य होने के नाते, उन्हीं के जीवन के पिछले भाग में समसामयिक थे।⁵

डा० हजारिप्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य परशुराम चतुर्वेदी गोरखनाथ का समय १० वीं शताब्दी स्वीकार करते हैं। द्विवेदी जी का कहना है कि “विक्रम

1 हमारा हिन्दी-साहित्य और भाषा-परिवार--डा० भवानीशंकर त्रिवेदी पृ० ३८

2 हिन्दीसाहित्य का आलोचनात्मक इतिहास--डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १०७

3 हिन्दी शब्दानुशासन--आ० किशोरीदास वाजपेयी, पूर्व पीठिका, पृ० १२

4 पुरातत्त्व-निबंधावली--राहुल सांकृत्यायन, पृ० १५१

5 गोरखनाथ और उनका युग--डा० रांगेय राघव, पृ० २६

संवत् की दशवीं शताब्दी में भारतवर्ष के महान् गुरु गोरखनाथ का अविर्भाव हुआ ।¹ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कहना है कि "उनके पूर्व वर्तमान रहने वाले सरहपा आदि कतिपय सिद्धों का जीवन-काल ईसा की ८ वीं-६ वीं शताब्दियों तक जाता हुआ प्रतीत होता है और ११-वीं-१२ वीं शताब्दी का समय गुरु गोरखनाथ के भिन्न भिन्न शिष्यों तथा अनुयायियों का आविर्भाव-काल समझा जाता है । अतएव, इनके जीवनकाल के लिए ईसा की १० वीं शताब्दी अधिक से अधिक ११ वीं के प्रारंभिक भाग में अर्थात् विक्रम की ११ वीं शताब्दी में कोई समय निश्चित करना उचित कहा जा सकता है ।"²

डा० पीताम्बर दत्त बड़थवाल ने गोरखनाथ का समय विक्रम की ११ वीं शती ही माना है—'मैं अधिक संभव यह समझता हूँ कि गोरखनाथ विक्रम की ग्यारहवीं शती में हुए ।'³

आ० रामचन्द्र शुक्ल गोरख का समय १२ वीं शती मानते हैं ।⁴ डा० राम कुमार वर्मा गोरखनाथ का समय १३ वीं शती मानते हैं ।⁵

उक्त विद्वानों के अतिरिक्त और भी अनेक विद्वानों ने गोरखनाथ का समय ७ वीं शती से लेकर तेरहवीं शती तक सिद्ध करने का प्रयास किया है । कुछ विद्वान् तो सातवीं शती से भी पहले पहुँच जाते हैं और कुछ तेरहवीं शती के बाद तक चले जाते हैं । जो विद्वान् गोरखनाथ का समय १० वीं शती से पूर्व अथवा ११ वीं शती के बाद निर्धारित करते हैं, उनके पास ऐतिहासिक तर्क नहीं हैं । उन मतों से गोरख-नाथ का विस्तृत प्रभाव ही सिद्ध होता है । गोरखनाथ का प्रभाव उनके परवर्तियों पर इतना अधिक है कि वे उनके लिए ईश्वर स्वर्ण हैं । उनके साथ गोरखनाथ के संबंधों को लेकर उनका समय निर्धारण नहीं किया जा सकता । कबीर इत्यादि के साथ गोरख-विवाद में गोरख नहीं, उनका पंथ है । अथवा 'पद्मावत' में जब जायसी कहता है कि "गोरख आइ ठाढ़ भा, उठ रे चेला नाथ ।" तब भी हमें गोरख-पंथ की ही बात समझनी चाहिए ।

गोरखनाथ का सही समय जानने के लिए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने बड़े परिश्रमपूर्वक कुछ युक्तियाँ दी हैं ।⁶ उन युक्तियों के आधार पर यहाँ प्रकारान्तर से कुछ तर्कों के साथ गोरखनाथ का समय जानने का प्रयास किया जा रहा है ।

१- यह लगभग सभी ने स्वीकार कर लिया है कि गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के

- 1 नाथ-संप्रदाय—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १०६
- 2 उत्तरीभारत की संत-परंपरा—आ० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ५६
- 3 गोरखबानी, भूमिका, पृ० २०
- 4 हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास— डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १०७-१०८
- 5 वही, पृ० १८
- 6 नाथसिद्धों की बानियाँ—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६ से १० तक

शिष्य थे और उनके समकालीन थे। मत्स्येन्द्रनाथ द्वारा लिखित संस्कृत के 'कौलज्ञान निर्णय' की लिपि तिरुमलय लिपि है और यह लिपि ११ वीं शती के पूर्व की है। डा० कल्याणी मल्लिक का कहना है कि डा० शहीदुल्ला के द्वारा बताए गए ७ वीं शती के गोपीचन्द तथा भर्तृहरि नाथ-संप्रदाय वाले भर्तृहरि नहीं हैं मालवराज भर्तृहरि मयनामति के भाई थे। उनकी पत्नी पिगला थी। पिगला गोरख की शिष्या थी। भर्तृहरि पिगला की मृत्यु के बाद नाथ-संप्रदाय में आये। इन भर्तृहरि के बाद विक्रमादित्य (१०७६-११२६ ई०) उज्जैनी के राजा हुए। इसका तात्पर्य यह हुआ कि पिगला की मृत्यु की घटना ११ वीं शती की है। अतः भर्तृहरि के गुरु गोरखनाथ का समय १० वीं शती रहा होगा।

२- काश्मीर के आचार्य अभिनव गुप्त ने तंत्रालोक' में मच्छंद विभु का उल्लेख किया है। डा० द्विवेदी के मतानुसार ये 'मच्छंद विभु' मत्स्येन्द्रनाथ ही हैं। अभिनव गुप्त का समय १० वीं शती का उत्तरार्ध वा ६ वीं का उत्तरार्ध तथा गोरख का समय १० वीं शती निश्चित होता है।

३- पं० राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुरातत्त्व निबंधावली' में ८४ सिद्धों की सूची दी है। उनमें मीनपा को राजा देवपाल का समकालीन बताया गया है। राजा देवपाल ने ८०६ से ८४६ ई० तक राज्य किया। वस्तुतः मीनपा और कोई नहीं, मत्स्येन्द्रनाथ ही थे। अतः गोरखनाथ का समय १० वीं शताब्दी ही सिद्ध होता है।

४- तिरुमलय की शैलीलिपि से यह तथ्य उजागर होता है कि दक्षिण के राजा राजेन्द्रचोल ने मणिकचन्द्र के पुत्र गोविन्दचन्द्र को पराजित किया था। राजेन्द्रचोल का समय १०६३ ई० से १११२ ई० है। गोविन्दचन्द्र गोपीचन्द ही हैं। तो गोपीचन्द ११ वीं शताब्दी में हुए थे। ये गोरखनाथ के शिष्य थे। अतः गोरखनाथ १० वीं शती के सिद्ध होते हैं।

५- कण्डपा (कानिपा, कानिफा, कान्हूपा) ने अपने गानों में जालंधरपाद का नाम लिया है। ये देवपाल (८०६-८४६ ई०) के समकालीन थे। जालंधरपाद और गोपीचन्द दोनों कानिफा के शिष्य थे।

६- गोरखनाथ का सम्बन्ध एक कन्धड़ी नामक सिद्ध से बताया जाता है। 'प्रबंध चिन्तामणि' की एक कथा के आधार पर चालुक्य राजा मूलराज ने कन्धड़ी सिद्ध को एक मन्दिर का प्रबन्धक बनाया था। मूलराज ने सं० ६६३ को राज्य ग्रहण किया था। इस आधार पर भी गोरखनाथ १० वीं शती के ही ठहरते हैं।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गोरखनाथ का समय १० वीं शताब्दी ही रहा होगा। इस बात की पुष्टि गोरखनाथ की भाषा के विवेचन से भी हो रही है। काल निर्धारण के लिए गोरखनाथ की भाषा का विवेचन यथास्थान किया गया है।

१. २. गोरखनाथ की हिन्दी-रचनाओं का परिचय

गोरखनाथ की हिन्दी-रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ यत्र-तत्र बिखरी हुई

पड़ी हैं। उन सभी को एकत्र करके वैज्ञानिक संपादन किया जाना चाहिए। अब तो १५ वीं शती की हस्तलिखित प्रतियाँ भी मिल गई हैं।^१ आगे कहीं उल्लेख किया गया है। सबसे पहले डा. मोहन सिंह ने 'गोरख-बोध' तथा कुछ फुटकर पदों को अंग्रेजी अनुवाद तथा टिप्पणियों के साथ छपवाया था। उसके बाद डा० बड़थवाल ने बड़े परिश्रम से गोरखनाथ की हिन्दी-रचनाओं का संपादन कर 'गोरखबानी' नाम से हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से छपवाया। इसके बाद गोरखनाथ-मन्दिर, गोरखपुर से श्री रामलाल श्रीवास्तव के संपादन में 'गोरखबानी' नाम से गोरख की रचनाओं का प्रकाशन हुआ है, जो डा० बड़थवाल की 'गोरखबानी' से कतिपय भिन्न है।

यद्यपि वैज्ञानिक संपादन उक्त दोनों में से कोई नहीं है फिर भी डा० बड़थवाल ने अनेक प्रतियों का मिलान करके संपादन किया है। अतः उनके द्वारा संपादित रचनाओं की जानकारी कर लेना यहाँ आवश्यक है। उन्हें नाथ-योगियों की हस्तलिखित दस प्रतियाँ मिली थीं। इन प्रतियों का विवरण संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है—

सं०	प्रति	स्थान	स्रोत	काल	विशेषता
१.	क	पौड़ी गढ़वाल	पं० तारादत्त गैरोला को जयपुर से मिली	पुष्पिका नष्ट होने से काल अनिश्चित। अगर रज्जब की हो तो सं- १७१५	इसके चार भाग हैं। दादू, कबीर, नामदेव, रंदास। अंतिम भाग में गोरखनाथ की बानियाँ हैं।
२.	ख	जोधपुर दरबार पुस्तकालय	पं० विश्वेश्वर नाथ रेऊ	अज्ञात	केवल सबदियाँ
३.	ग	जोधपुर	श्री गजराज ओझा	अज्ञात	केवल सबदियाँ
४.	घ	जोधपुर	शुभकरण चारण	सं० १८२५	बृहत् ग्रंथ। निरंजनी साधु द्वारा संग्रहीत
५.	ङ	पटियाला	मंदिर बाबा	सं० १६७४	गंगाराम निरंजनी बैष्णव ने स्वामी रूपदास के पटना जयपुर में लिखा था।
६.	च	जयपुर	पु० हरि- नारायण	सं० १७१५	—

१ द्रष्टव्य है, योगवाणी-गोरख विशेषांक (१९७७ ई०) में श्री अमरचन्द नाहटा का लेख।

७.	छ	जयपुर	"	सं० १७४१	—
८.	ज	जयपुर	"	सं० १८८५	—
९.	झ	—	—	—	नकल है। मूल अप्राप्त है। सेवादास की कुछ रचनाएँ गोरखदास की मिली हैं।
१०.	ञ	काशी	सरस्वती भवन	अज्ञात	योगियों की रचनाओं के संस्कृत अनुवाद की एक हस्त-लिखित प्रति।

इन दस प्रतियों के आधार पर डा० बड़धवाल ने गोरखनाथ के नाम से मिलने वाली चालीस रचनाओं की खोज की। ये चालीस रचनाएँ किस-किस प्रति में आई हैं, इसको डा० बड़धवाल ने इस प्रकार दिखाया है—

रचनाएँ संवत्	च	क	छ	ड	घ	ज	झ	ख	ग
	१७१५—१७४३	१७६४	१८२५	१८५५—१७६४—					
१ सबदी	✓	✓	✓	✓	✓		✓	✓	✓
२ पद	✓	✓	✓	✓	✓	✓			
३ सिध्या दरसन	✓	✓	✓		✓				
४ प्राण संकली	✓	✓	✓				✓		
५ नरवै बोध	✓	✓	✓		✓		✓		
६ अत्मबोध (१)	✓	✓			✓		✓		
७ अभैमात्रा जोग	✓	✓	✓		✓				
८ पन्द्रह तिथि	✓	✓	✓	✓	✓		✓		
९ सप्तवार	✓	✓	✓	✓	✓		✓		
१० मछीन्द्र गोरख-बोध	✓	✓	✓		✓		✓		
११ रोमावली		✓	✓		✓		✓		
१२ ग्यान तिलक					✓	✓	✓		
१३ ग्यान चौतीसा	✓		✓	✓			✓		
१४ पंचमात्रा		✓	✓		✓		✓		
१५ गोरख गणेश गोष्टी	✓	✓	✓	✓		✓	✓		✓
१६ गोरख दत्त गोष्टी (ज्ञानदीप बोध)		✓		✓	✓				
१७ महादेव गोरख गुष्टि	✓	✓	✓	✓					✓
१८ सिष्ट पुरान			✓	✓	✓	✓	✓		✓

१६	दयाबोध	✓	✓	✓	✓	✓			
२०	जाती भौरावली छंद गोरख	✓							
२१	नवग्रह	✓	✓	✓					
२२	नवरात्र	✓						✓	
२३	अष्ट पारछया	✓			✓				
२४	रहरास				✓	✓			
२५	ग्यानमाला				✓	✓			
२६	आत्मबोध (२)	✓			✓				
२७	व्रत		✓				✓		
२८	निरंजन पुराण			✓					
२९	गोरख वचन		✓						
३०	इंद्री देवता		✓						
३१	मूल गर्भावली		✓						
३२	खाणी वाणी		✓						
३३	गोरख सत			✓					
३४	अष्ट मुद्रा					✓			
३५	चौबीस सिद्धि					✓			
३६	पडक्षरी					✓			
३७	पंच अग्नि					✓			
३८	अष्ट चक्र					✓			
३९	अबलिसिलुक	✓							
४०	काफिर बोध	✓							

योग	१४	१६	२४	३३	२६	८	१२	५	११
-----	----	----	----	----	----	---	----	---	----

जहाँ तक इन प्रतियों के समय ज्ञात हो सके हैं, सबसे प्राचीन प्रति (च) है, जो सं० १७१५ की है। (क) प्रति भी संभवतः सं० १७१५ की ही लिखी हुई होनी चाहिए और काल, रचना एवं भाषा की दृष्टि से (च) प्रति से सबसे अधिक मेल खाने वाली यही प्रति है। डा० बड़वाल ने (च) एवं (क) प्रतियों को ही प्रामाणिक मानकर गोरख की रचनाओं का संपादन किया है। इन दोनों प्रतियों में से भी अधिकांशतः आधार (क) प्रति को बनाया है।

डा० बड़वाल जी ने १४ रचनाओं को असंदिग्ध माना है क्योंकि ये प्रायः सभी प्रतियों में मिलती हैं। डा० बड़वाल की धारणा थी कि इन असंदिग्ध मानी जाने वाली १४ रचनाओं में 'ग्यानचौतीसा' नहीं है। अतः उन्होंने 'गोरखबानी' के मूल भाग में तेरह प्रामाणिक रचनाओं को संपादित किया और शेष संदिग्ध रचनाओं को परिशिष्ट में संपादित किया। 'ग्यानचौतीसा' के संबंध में डा० बड़वाल ने 'गोरखबानी' की भूमिका में लिखा है—“इनमें से ग्यानचौतीसा 'च' प्रति में है और

‘छ’ तथा ‘अ’ में उसका समर्थन हो जाता है। परन्तु उसको मैं समय पर प्राप्त करने में समर्थ न रहा। फिर भी आशा है कि शीघ्र ही वह भी अवश्य साहित्यिकों को उपलब्ध हो जायेगा।”

डा० बड़थवाल की इस स्वीकृति से विद्वानों में ‘ग्यानचौतीसा’ के प्रति और भी अधिक उत्सुकता जाग्रत हो गई। किन्तु परम सुखद आश्चर्य का विषय है कि ‘ग्यानचौतीसा’ गोरखबानी में ही संकलित है। इस रहस्य का उद्घाटन ‘गोरखबानी’ का नया संपादन करते हुए श्री रामलाल श्रीवास्तव ने इस प्रकार किया है—“मैंने ‘गोरखबानी’ के इस नये कलेवर के संपादन में ‘ग्यानचौतीसा’ का उपयोग करना चाहा, नाहटा जी को पत्र लिखा। उनका पत्रोत्तर मिला कि रचना ‘सप्तसिन्धु’ में नहीं, ‘साहित्य’ पत्र में प्रकाशित करायी गयी थी और उन्होंने कृपापूर्वक उसकी प्रति नकल करवाकर मेरे पास भेज दी। प्रतिलिपि ‘जैन बड़े भाण्डार’ की संवत् १७७० वि० की हस्तलिखित (नाथ संप्रदायी) गुटका से करवायी गयी थी। मैं नाहटा जी द्वारा प्रेषित ‘ग्यानचौतीसा’ की प्रतिलिपि देखकर आश्चर्यचकित हो गया। ‘गोरखबानी’ में ही डा० बड़थवाल ने परिशिष्ट १ क-क (२) के अन्तर्गत पृष्ठ २४१ से २४३ पर ‘कुछ पद’ शीर्षक से तीन पदों में उसे दिया है तथा ‘गोरखबानी’ में ही पृष्ठ १२० पर पद संख्या २७ वाँ भी ‘ग्यानचौतीसा’ का अन्तिम अंश है। मैंने ‘गोरखबानी’ के इस नये कलेवर में ‘ग्यानचौतीसा’ में इनका अपने भाष्यसहित संकलन कर दिया है। इस संकलन में क्रम सं० १२, १३, १७, १८, १९ की दस पंक्तियाँ नाहटा जी द्वारा प्रेषित ‘ग्यान चौतीसा’ की प्रति से ली गयी हैं, क्योंकि मुझे ‘गोरखबानी’ के सम्मेलनवाले संस्करण में ये नहीं मिलीं। लगता है कि ‘ग्यानचौतीसा’ गोरखनाथ जी के चार पदों का संकलन है, जिसे किसी श्रुद्धालु शिष्य ने इस नाम से ३४ सबदियों में अथवा दो-दो पंक्ति के पदों में संग्रहीत कर दिया। कहीं डा० बड़थवाल को यह पता होता कि ‘गोरखबानी’ में ही ‘ग्यानचौतीसा’ संग्रहीत है, तो उनकी आत्मा को कितना संतोष होता।”^१

संपादित रचनाएँ इस प्रकार हैं—

- | | | |
|------------------------|---------------------|-----------------|
| १- सबदी | २- पद (रागरामग्री), | ३- सिध्या दरसन, |
| ४- प्राण संकली, | ५- नरबै बोध, | ६- आत्मबोध, |
| ७- अभेमात्रा जोग, | ८- पंद्रह तिथि, | ९- सप्तवार, |
| १०- मछीन्द्र गोरख बोध, | ११- रोमावली, | १२- ग्यान तिलक, |
| १३- पंचमात्रा। | | |
- परिशिष्ट— (१) (क) १- गोरख गणेश गुष्टि, २- ज्ञानदीप बोध (गोरप दत्त गुष्टि), ३- महादेव गोरप गुष्टि, ४- सिष्ट पुराण,
- ५- दयाबोध, ६- कुछ पद।

१ योगवाणी— गोरखबानी विशेषांक, सं० श्री रामलाल श्रीवास्तव जनवरी, १९७६ ई० पृ० ६५

परिशिष्ट-(२) (ख) १- सप्तवार नवग्रह, २- व्रत,
३- पंच अग्नि, ४- अष्ट मुद्रा, ५- चौबीस सिद्धि,
६- बत्तीस लछन, ७- अष्ट चक्र, ८- रह रासि ।

परिशिष्ट (३)

‘घ’ प्रति में किसी निरंजनी साधु-कृत २७ पदों का तिलक दिया हुआ है । डा० बड़थवाल ने परिशिष्ट (३) में पदों की प्रथम पंक्तियाँ देकर तिलक दिये हैं । ‘घ’ प्रति में निरंजनी ग्रंथ अधिक हैं । अतः इन २७ पदों को भी डा० बड़थवाल ने किसी निरंजनी साधुकृत ही माना है । साधु का नाम विदित नहीं ।

परिशिष्ट की रचनाओं की संदिग्धता के सम्बन्ध में यहाँ हमें कुछ नहीं कहना हाँ, बड़थवाल जी द्वारा असंदिग्ध और प्रामाणिक मानी जाने वाली तरह रचनाओं के सम्बन्ध में कुछ चर्चा अवश्य करना चाहते हैं ।

नाथ सिद्धों की हस्तलिखित प्रतियों में विभिन्न कवियों की बानियाँ आपस में ऐसी घुलमिल गई हैं कि उन्हें अलग-अलग करना आसान नहीं है । गोरख की प्रामाणिक कही जाने वाली रचनाओं में भी अन्य संतों की बानियाँ मिली हुई हैं । ऐसे स्थलों पर ‘रचनाओं की प्रामाणिकता’ के अन्तर्गत विचार किया गया है । यहाँ कुछ ऐसे पाठ-भेदों की चर्चा अभीष्ट है, जिन्हें हम सचेष्ट एवं निश्चेष्ट विकृतियाँ कह सकते हैं । गोरखबानी के कतिपय पाठ, अर्थ की दृष्टि से संगत नहीं जान पड़ते, जबकि उनके पाठान्तरों से अर्थ की संगति ठीक बैठती है । यहाँ ऐसे ही कुछ पाठों की समालोचना की जा रही है ।

“गगन सिपर महि सबद प्रकास्या स. ४/२” में ‘महि’ का पाठ भेद ‘ग’ तथा ‘ख’ प्रतियों में ‘चढ़ि’ मिल रहा है । ‘गगन सिपर’ (=ब्रह्मरंध्र) में शब्द सुनाई नहीं देता^१ अतः ‘गगन शिखर में शब्द प्रकाशित हुआ’ ऐसा अर्थ ठीक नहीं । ‘चढ़ि’ पाठ से अर्थ होगा ‘जो योगी गगन शिखर ब्रह्मरंध्र में चढ़कर शब्द को प्रकाशित करता है ।’ योगी के द्वारा ऐसा करने से अलक्ष्य विज्ञानी से साक्षात्कार हो जाता है अतः यह अर्थ ठीक है । ‘चढ़ि’ के स्थान पर ‘महि’ पाठ में लिपिकार के द्वारा निश्चेष्ट विकृति ही कही जाएगी क्योंकि ‘च’ में ‘म’ का तथा ‘ढ़ि’ में ‘हि’ का भ्रम हो सकता है ।

“बाई कै घरि चोन्हसि ज्यंद स० ५५/१” में ‘चोन्हसि’ के स्थान पर ‘ख’ प्रति में ‘चोन्हंत’, ‘ग’ प्रति में ‘चोन्हवा’ और ‘घ’ प्रति में ‘निसचल’ पाठ है । ‘ख’ प्रति का ‘चोन्हंत’ पाठ रूप-एवं अर्थ की दृष्टि से अन्य रूपों से मिल रहा है । पूर्वा-पर सम्बन्ध से अर्थ होना चाहिए—‘वायु के घर जिद को पहचानता है ।’ वर्तमानकाल निश्चयार्थ के लिए—‘असि’ प्रत्यय अन्यत्र दिखाई नहीं देता । अतः ‘चोन्हंत’ पाठ ही

१ “गगन सिपर चढ़ि (ग) पाठ ठीक जंचता है, अर्थात् गगन शिखर (ब्रह्मरंध्र) में चढ़कर शब्द जो प्रकाशित करता है । आज्ञाचक्र के ऊपर तो शब्द सुनाई देना बन्द हो जाता है ।” —गोरखनाथ और उनका युग--डा० रांगेय राघव, पाद टिप्पणी, पृष्ठ १६८

ठीक है। यह विकृति सचेष्ट जान पड़ती है।

‘एवहाँ’ मद श्री गोरप केवट्या प० १२३/१” में एवहाँ का पाठान्तर ‘क’ प्रति में ‘एद्वा’ है। सार्वनामिक विशेषण के रूप में ‘एद्वा’ ‘जेद्वा’ जैसे रूप अन्यत्र खूब मिलते हैं जबकि ‘एवहाँ’ ‘जेवहाँ’ जैसे रूप नहीं मिलते अतः ‘क’ प्रति का ‘एद्वा’ पाठ ही ठीक है। यहाँ ‘द्वा’ में ‘द्वा’ का भ्रम होने से निश्चेष्ट विकृति प्रतीत होती है।

“अचरा न चरै धेन कटरा न षाई। पंच ग्वालियां को मारण धाई, प० १४८/१” में कटरा के स्थान पर ‘कचरा’ पाठ मिल रहा है। कटरा=भैंस का नर बच्चा (यहाँ गाय के बच्चे के लिए)। कचरा=घास-फूस। इस पंक्ति का अर्थ ‘कटरा’ पाठ से तो लगता नहीं है। बच्चे को खाने अथवा न खाने की बात का कोई औचित्य नहीं। उलटजाँसी जैसे अर्थ की भी आवश्यकता नहीं पड़ रही। ‘कचरा’ पाठ से अर्थ होगा—यह धेनु (=ब्रह्मानुभूति) अचर है (स्थिर है अथवा न चरने वाली है) चरती नहीं है अतः घास-फूस नहीं खाती। यह तो पंच ग्वालियों को (पंच ज्ञानेन्द्रियों को) मारने के लिए दोड़ती है। ‘व’ के स्थान पर ‘ट’ लिखने की विकृति निश्चेष्ट जान पड़ती है।

“उलटी सक्ति आप घरि आंणीं मगो० १६०/६६” में ‘सक्ति’ के स्थान पर ‘घ’ प्रति में ‘सुरति’ पाठ है। यहाँ प्रश्न यह है कि कुण्डलिनी शक्ति वापस लौट सकती है अथवा नहीं? बुडरोफ ने प्रश्न उठाया था कि कुण्डलिनी का एक छोर सदैव मूल स्थान में ही रहता है।^१ अगर कुण्डलिनी शक्ति नहीं लौट सकती है या लौटने की आवश्यकता नहीं होती तो फिर ‘घ’ प्रति का ‘सुरति’^२ पाठ अधिक ठीक प्रतीत होता है। बहुत संभव है कि आस-पास कहीं ‘सक्ति’ शब्द हो और लिपिकार ‘सुरति’ के स्थान पर निश्चेष्ट रूप से ‘सक्ति’ लिख गया हो।

कुछ रूप ऐसे हैं, जिनमें लिपिकार का प्रमाद स्पष्टतया झलक रहा है—

‘पणि’ के स्थान पर ‘षणि’ स. ५३/२

‘भानं’ के स्थान पर ‘मानं’ स. ६३/२

‘कपूर’ के स्थान पर ‘कसूर’ स. १२०/२

‘जहाँ’ के स्थान पर ‘जरां’ प. पृ० ११४/८

‘रोटी’ के स्थान पर ‘रोरी’ प. पृ० १४२/२

‘गरजै’ के स्थान पर ‘जगजै’ आत्म० पृ० १७४/८

‘सरवणं’ के स्थान पर ‘सरचणं’ मगो० पृ० १८७/१३

‘धोवती’ के स्थान पर ‘धोवती’ मगो० पृ० १६७/१३

१. ३. खड़ी बोली की आदिकालीन शृंखला में गोरख का योगदान

हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहासों में हिन्दी और उसकी बोलियों की उत्पत्ति एवं विकास १० वीं शताब्दी से मानते हुए भी विद्वानों ने उसका साहित्य में

१ गोरखनाथ और उनका युग--डा० रामेय रायव, पृष्ठ १७७

२ सुरति=मन की उलटी गति अर्थात् आत्म स्मृति।

प्रयोग वाद में ही स्वीकार किया है। खड़ी बोली साहित्यिक हिन्दी के भूतकाल में झाँकने पर तो वे भलीभाँति अपनी दृष्टि दक्खिनी हिन्दी तक ही ले जा सकें हैं। दक्खिनी हिन्दी से पूर्व यदा कदा कतिपय रचनाओं में खड़ी बोली के प्रयोग का उल्लेख किया जाता रहा है, किन्तु गोरखनाथ की भाषा खड़ी बोली शृंखला की वह आदिकालीन कड़ी है, जो हिन्दी भाषा तथा साहित्य के इतिहासों में अब तक टूटी पड़ी थी। इस कड़ी के टूट जाने पर शृंखला की अन्य कड़ियाँ भी प्रायः बिखर ही गयी थीं और परिणामतः अब तक यही कहा जाता रहा है कि खड़ी भाषा तथा साहित्य अधिक पुराना नहीं है।

इन पंक्तियों के लेखक ने अपने शोध प्रबन्ध 'गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन' में बिखरी हुई इन कड़ियों को जोड़कर खड़ीबोली-शृंखला को पूर्ण करने का प्रयास किया है। इस शृंखला की प्रथम कड़ी है 'राउलवेल की टक्की' और दूसरी शक्तिशाली कड़ी है 'गोरखनाथ की बानियाँ'। तीसरी कड़ी खुम्बो की 'हिन्दवी', चौथी कबीर की भाषा, पांचवीं कुतुबशतक की हिन्दुई और छठी कड़ी है दक्खिनी हिन्दी। इस प्रकार ११ वीं शताब्दी से १७ वीं शताब्दी तक की खड़ीबोली शृंखला तैयार होती है।

राउलवेल (११वीं शती) में सात नायिकाओं का नख-शिख वर्णन है। भाषा के अध्ययन से विदित होता है कि इन सात नायिकाओं ने अपना-अपना वर्णन अपनी-अपनी भाषाओं में करने का प्रयास किया है। इन समस्त भाषाओं में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के प्राचीनतम प्रामाणिक रूप विद्यमान हैं। ये भाषाएँ हैं—राउली (वर्तमान पश्चिमी राजस्थानी), मालवी, मराठी, टक्की, गौड़ी (बंगला), ब्रज तथा अवधी।¹

इस रचना के चौथे नख-शिख में एक टक्किणी नायिका का टक्की भाषा में जो वर्णन है, उसके सम्बन्ध में डा० माताप्रसाद गुप्त की टिप्पणी द्रष्टव्य है 'यह वर्णन कुछ पंक्तियों का ही होते हुए भी खड़ीबोली का प्राचीनतम रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है, और इससे ज्ञात होता है कि खड़ीबोली केवल दिल्ली-मेरठ की ही भाषा नहीं थी, वह टक्की की भी भाषा थी, जो पहले पंजाब और अब हरियाणा में प्रवेश पाता है, और इससे यह भी प्रमाणित होता है कि खड़ीबोली और साहित्य का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना उत्तर भारत की अन्य आधुनिक भाषाओं का है।'²

हिन्दी साहित्य में गोरखनाथ का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, जो भुलाया नहीं जाना चाहिए था। इतिहास ने गोरख को भुलाने का प्रयत्न किया, यह देश का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है। उनके सम्बन्ध में इतिहासकार एक मत नहीं हैं। विभिन्न मतों के आधार पर ही उनका समय ७ वीं शती से १२ वीं शती के मध्य निर्धारित होना

1 कुतुबशतक और उसकी हिन्दुई--डा० माता प्रसाद गुप्त, प्रस्तावना।

2 कुतुबशतक और उसकी हिन्दुई--डा० माता प्रसाद गुप्त, प्रस्तावना।

है।^१ जबकि गोरखनाथ की रचनाओं में हस्तलिखित प्रतियाँ १५ वीं शती से पूर्व की नहीं मिलती। इस लम्बी अवधि में गोरखनाथ की कविताएँ उनके शिष्यों की वाणियों से मुखरित हुई होंगी। यहाँ यह शंका होना स्वाभाविक है कि गोरखनाथ की मूल रचनाओं में इतनी लम्बी अवधि में क्या भाषाई परिवर्तन नहीं हुए होंगे? गोरख के नाम से मिलनेवाली रचनाओं में यत्र-तत्र अन्य नाथ सिद्धों की छाया मिल रही है, हस्तलेख प्रतियों में बहुत पाठ-भेद मिलता है, भाषा में विभिन्न व्याकरणिक रूपों का मिश्रण सुस्पष्ट है। इस विभिन्नता में गोरख की भाषा को खोजना दुस्साध्य है, किन्तु जहाँ शिष्यों द्वारा परिवर्तन की संभावना की जा सकती है वहाँ दूसरी ओर अपने गुरु में प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास के कारण शिष्यों ने गोरख की रचनाओं को जैसा का तैसा रखने का प्रयत्न किया होगा। गोरख की रचनाओं में प्रामाणिकता के सम्बन्ध में डा० बड़थवाल का निम्न कथन पर्याप्त होगा।

“नाथ-परम्परा में इसके कर्त्ता प्रसिद्ध गोरखनाथ से भिन्न नहीं समझे जाते। मैं अधिक संभव यह समझता हूँ कि गोरखनाथ विक्रम की ११ वीं शती में हुए। ये रचनाएँ जैसी हमें उपलब्ध हो रही हैं ठीक वैसी ही उस समय की हैं, यह नहीं कहा जा सकता परन्तु इसमें भी प्राचीनता के प्रमाण विद्यमान हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि संभवतः इसका मूलोद्भव ग्यारहवीं शती में हुआ हो।”^२ इसलिए गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओं को लेकर डा० पीताम्बर दत्त बड़थवाल ने ‘गोरखबानी’ का सम्पादन किया।

गोरखबानी को ही आधार मानकर प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने गोरखनाथ की रचनाओं का भाषाशास्त्रीय अध्ययन किया है। अपने शोध द्रव्य में लेखक का नद्देश्य गोरख की रचनाओं का स्वरूप प्रस्तुत करना मात्र नहीं है, वरन वर्णनात्मक स्वरूप-विश्लेषण के पश्चात् इस तथ्य का निरूपण करना रहा है कि गोरख की अपनी मूल भाषा का क्षेत्र कौनसा है, गोरखबानी में निहित भाषा किस काल की है, उसमें संगृहीत रचनाओं में कितनी गोरख की हैं और कितनी प्रक्षिप्त हैं तथा हिन्दी भाषा के विकास में गोरख की भाषा का योगदान क्या है?

क्षेत्र-निर्धारण के अध्ययन से लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि आदिका-

१ ७ वीं शती डा० भवानी शंकर त्रिवेदी—हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार पृष्ठ ३८।

८ वीं शती-डा० शहीदुल्ला (डा० रामकुमार वर्मा के हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास के आधार पर, पृष्ठ १०७)

९ वीं शती पं० किशोरी दास वाजपेयी—हिन्दी शब्दानुशासन, पृष्ठ १२।

श्री राहुल सांकृत्यायन—पुरातत्व निबन्धावली पृष्ठ १६१।

डा० रामेय राघव—गोरखनाथ और उनका युग, पृष्ठ २६।

१० वीं शती डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ १०८।

२ गोरखबानी—डा० बड़थवाल, भूमिका, पृ० २०।

लीन खड़ीबोली केवल दिल्ली-मेरठ की बोलियों पर ही आधारित नहीं थी। वस्तुतः वह पूर्वी पंजाब, मेवात, दिल्ली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की बोलियों के मिश्रण का एक परिनिष्ठित रूप है। काल-निर्धारण के लिए गोरख बानी के भाषा-रूपों की तुलना पूर्वापर भाषा रूपों से की गई है। काल-निर्धारण के अन्तर्गत ही खड़ीबोली-शृंखला की टूटी हुई कड़ियों को जोड़ा गया है। प्रस्तुत शोध से ऐसा निष्कर्ष निकलना है कि खड़ीबोली की पूर्व परम्परा में ही गोरख की भाषा दसवीं शती की ठहरती है।

अमीर खुसरो को अनेक विद्वानों ने हिन्दवी भाषा का पहला कवि स्वीकार किया है।¹ वे १३वीं शताब्दी के कवि थे। अतः गोरख नाथ की भाषा के रूप निश्चित रूप से खुसरो के पूर्वगामी हैं और खुसरो की भाषा गोरख के बाद की है। खुसरो की पहेलियों को जो आधुनिकता के रंग में रंगा हुआ मानते हैं उन्हें खुसरो की ही 'खालिक बारी' के, जो विद्वानों में एक प्रामाणिक रचना मानी जाती है, उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा कि खुसरो के समय खड़ी बोली का वही रूप था जो उनकी पहेलियों में है।² खुसरो की भाषा वर्तमान साहित्यिक हिन्दी से एकदम मिलती है। "यदि अमीर खुसरो के बाद ब्रज-भाषा के बजाय खड़ीबोली हिन्दी में नियमित और अविरत रूप से रचनाएँ होती रहतीं तो आज की खड़ीबोली हिन्दी-कविता कितनी परिमार्जित हो गयी होती, इस बात का सहज ही अनुमान किया जा सकता है"³

कबीर पंद्रहवीं शताब्दी के कवि थे। उनकी भाषा के दो महत्वपूर्ण अध्ययन हुए हैं। डा० माता बदल जायसवाल ने कबीर की भाषा को इसी शृंखला की एक कड़ी नियुक्त किया है।⁴ किन्तु डा० भगवत प्रसाद दुवे ने कबीर की भाषा को ब्रज भाषा निर्धारित किया है।⁵ ब्रज और खड़ी बोली के निर्धारण के साथ ही साथ डा०

- 1 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १३६।
ब्रज भाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन —डा० कैलाश चन्द्र भाटिया, पृ० ६२।
दक्खिनी हिन्दी—डा० बाबू राम सक्सेना, पृ० ३०।
- 2 हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृष्ठ १०६।
हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार—डा० भवानी शंकर त्रिवेदी पृ० ६४
- 3 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १३६
- 4 'गोरखनाथ तथा अमीर खुसरो की भाषा कबीर की हिन्दवी की पूर्वगामी कड़ी तथा दक्खिनी कवियों की हिन्दवी कबीर की भाषा की एक समसामयिक कड़ी कही जा सकती है।'
—कबीर की भाषा—डा० माता बदल जायसवाल पृष्ठ २३१
- 5 "स्पष्ट है कि 'कबीर ग्रन्थावली' की भाषा ब्रज है, जिसमें पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी की बोलियों के रूपों का सहायक रूप में प्रयोग हुआ है।"
—कबीर काव्य का भाषा शास्त्रीय अध्ययन डा० भगवत प्रसाद दुवे, पृ० २६१।

दुबे का एक कथन द्रष्टव्य है—“यह स्पष्ट है कि १५ वीं १६ वीं शती के काव्य भाषाओं में प्राप्त मिश्रित और अमिश्रित रूपों का अलग अलग निर्णय करना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि एक तो मिश्रण बहुत ही अद्भुत ढंग से हुए हैं, हमारे भाषा में अनेक रूपता है, तीसरे अभी तक इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक अध्ययन भी नहीं हो पाया है।”¹

कबीर की भाषा में अनेक रूपता और विभिन्न बोलियों का मिश्रण जो अद्भुत ढंग से दिखाई पड़ता है, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। प्रारम्भिक खड़ीबोली मध्यदेश के विभिन्न भाषा रूपों पर आधारित है। उसमें पंजाबी, बांगरू, ब्रज तथा राजस्थानी के कुछ तत्त्व मूल या परिवर्तित रूप में समाहित हैं।

गोरख के समय की जनभाषा का यह मिश्रित रूप निर्गुण परम्परा के साथ ही साथ कबीर तक चलता आया है।² जनता की जिस भाषा में गोरख ने लिखा है, ठीक उसी भाषा में कबीरदास ने भी लिखा है।³

कुतुबशतक १५ वीं शताब्दी की रचना है।⁴ उसमें जिस भाषा को अपनाया गया है उसे दक्षिणी भारत की मुसलमानी रियासतों में साहित्यिक भाषा के रूप में स्वीकार किया जा चुका था। बाद में उगी भाषा का विकसित रूप दक्खिनी कहलाया।⁵ डा० माता प्रसाद गुप्त ने ‘कुतुबशतक और उसकी हिन्दुई’ की प्रस्तावना में यह स्पष्ट किया गया है कि राउलबेल और दक्खिनी के बीच की जनभाषा कुतुबशतक की भाषा है तथा राउलबेल और कुतुबशतक के बीच की जनभाषा की कड़ी गोरखनाथ की बानियाँ हैं। इसका तात्पर्य यह है कि कुतुबशतक की भाषा गोरखनाथ की भाषा से बाद की कड़ी प्रस्तुत करती है।

दक्खिनी का मूलाधार १४ वीं और १५ वीं शती की वह खड़ी बोली है जो अपने मूल क्षेत्र में दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, मेरठ, मुरादाबाद आदि में बोली जाती थी। जब १५ वीं-१६ वीं शताब्दी में उत्तर भारत से मुसलमान शासक तथा जनता दक्षिणी भारत में (बीजापुर, गोलकुण्डा, गुलबर्गा, बीदर, बरार) पहुँची तो अपने साथ अपनी खड़ीबोली को भी ले गयी और वहाँ जाकर इसका नाम कालान्तर में दक्खिनी हिन्दी पड़ गया। दक्खिनी हिन्दी के भाषा-रूपों से उत्तरी हिन्दी के भाषा-रूपों का प्राचीन स्वरूप सामने आ जाता है। उत्तरी भारत की पुरानी ‘हिन्दुई’ का वास्तव में वही स्वरूप था, जो हमें गोरख बानी की भाषा में देखने को मिलता है।

1 कबीर काव्य का भाषा शास्त्रीय अध्ययन डा० भगवत प्रसाद दुबे, पृष्ठ ८

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास--आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ २१।

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास--डा० लक्ष्मी सागर वाण्येय, पृष्ठ ८२।

भारत की भाषाएँ और भाषा-सम्बन्धी समस्याएँ--ड० सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय पृष्ठ ६७।

4 कुतुबशतक और उसकी हिन्दुई--डा० माता प्रसाद गुप्त भूमिका, पृष्ठ ५।

5 वही, पृष्ठ २६।

इस आधार पर हम 'गोरखबानी' की भाषा को 'उत्तरी हिन्दुई' कह सकते हैं। इस भाषाई स्वरूप के सम्बन्ध में डा० माता प्रसाद गुप्त की एक टिप्पणी द्रष्टव्य है— 'उत्तरी भारत की पुरानी 'हिन्दुई' की जानकारी यथेष्ट रूप में न होने के कारण 'दक्खिनी' का अध्ययन प्रस्तुत करनेवाले लेखकों ने दक्खिनी शब्द रूपों के इतिहास के सम्बन्ध में कभी-कभी भ्रान्तियाँ भी की हैं, और अनेक ऐसे रूपों को उन्होंने पंजाबी, राजस्थानी और अवधी तक बताया है जो कि पुरानी खड़ी बोली के थे।'¹

खड़ीबोली के इस स्वरूप को आ० शुक्ल जी ने 'सधुक्कड़ी' इसलिए कहा था कि एक लम्बे समय तक विस्तृत क्षेत्र में खड़ीबोली की धारा केवल साधु संतों में ही प्रवाहित देखी गई। अब इस खड़ीबोली शृंखला के प्रकाश में आने पर हम सरलता से कह सकते हैं, कि शुक्ल जी की 'सधुक्कड़ी' और खड़ीबोली के प्रारम्भिक रूप में कोई अन्तर नहीं है। आचार्य शुक्ल जी की ही एक टिप्पणी द्रष्टव्य है:—

'खड़ीबोली मुसलमानों की भाषा हो चुकी थी। मुसलमान भी साधुओं की प्रतिष्ठा करते थे, चाहे वे किसी दीन के हों। इससे खड़ीबोली दोनों धर्मों के अनपढ़ लोगों की साथ लगाने वाले और किसी एक के भी शास्त्रीय पक्ष से सम्बन्ध न रखने वाले साधुओं के बड़े काम की हुई जैसे इधर अंग्रेजों के काम की 'हिन्दुस्तानी' हुई।'²

१. ४ हिन्दी के सबसे पहले कवि

अब तक हिन्दी-साहित्य के आदिकाल का पर्याप्त मंथन-विवेचन हुआ है, अनेक समस्याओं का समाधान हुआ है और विद्वानों ने अपने-२ मतों की स्थापना भी की है किन्तु नये-नये शोध-कार्य होने के कारण तथा नवीन कवि एवं उनकी रचनाएँ प्रकाश में आते रहने के कारण आदिकाल के प्रारम्भ एवं प्रथम कवि के सम्बन्ध में पूर्व मान्यताएँ कभी भी पूर्ण एवं स्थिर नहीं कही जा सकती। आदिकाल से संबंधित ये दोनों प्रश्न आज भी यथावत् बने हुए हैं। इस काल के नामकरण का प्रश्न भी पर्याप्त विवादास्पद रहा है किन्तु यहाँ वह अभीष्ट नहीं है।

आदिकाल के प्रारम्भ का प्रश्न हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति से जुड़ा है—जब से हिन्दी की उत्पत्ति, तभी से हिन्दी-साहित्य के आदिकाल का प्रारम्भ। प्रश्न तो यही है कि हिन्दी-भाषा की उत्पत्ति कब से हुई? उसका प्रथम कवि कौन है?

ठा० शिवसिंह सेंगर सातवीं शताब्दी के 'पुष्प' या 'पुण्ड' को हिन्दी का प्रथम कवि मानते हैं किन्तु इनकी कोई भी रचना उपलब्ध न होने से यह कहना कठिन है कि वे हिन्दी के कवि थे या अपभ्रंश के।

अनेक विद्वानों ने अमीर खुसरो को हिन्दी का पहला कवि स्वीकार किया

1 कुतुबशाह और उसकी हिन्दुई--डा० माता प्रसाद गुप्त, भूमिका, पृष्ठ ६२

2 बुद्ध चरित--आ० रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका पृष्ठ १६ [भाग ६१ संख्या १]

है।^१ खुसरो की भाषा वर्तमान साहित्यिक हिन्दी के एकदम निकट है। भाषा का इतना विकसित रूपा देखकर यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि खुसरो की भाषा-शृंखला की पूर्व की कड़ियाँ अवश्य विद्यमान रही होंगी।

राहुल जी ने सातवीं शताब्दी के सरहपाद को हिन्दी का प्रथम कवि माना है किन्तु वे अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी में कोई भेद ही नहीं करते—“आपने सुन रखा होगा कि इस भाषा को अपभ्रंश कहते हैं। शायद इसे आप समझने लगे होंगे कि तब तो हिन्दी से जरूर अलग भाषा होगी। लेकिन नाम पर न जाइए, इसका दूसरा नाम ‘देशी’ भाषा भी है। अपभ्रंश इसे इसलिए कहते हैं कि इसमें संस्कृत—शब्दों के रूप भ्रष्ट नहीं अपभ्रष्ट—बहुत ही भ्रष्ट हैं। इसलिए संस्कृत पंडितों को ये जाति-भ्रष्ट शब्द बुरे लगते होंगे। लेकिन शब्दों का रूपा बदलते-बदलते नया रूप लेना, अपभ्रष्ट होना, दूषण नहीं भूषण है।”^२

डा० नगेन्द्र के ‘हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ में सरहपाद को हिन्दी का प्रथम कवि सिद्ध करने के लिए तीन प्रमाण दिये गए हैं—(१) सिद्ध-साहित्य से नाथ-साहित्य को, तथा नाथ-साहित्य से सन्त साहित्य को प्रेरणा मिली। (२) सरहपाद का हठयोग कबीर में बहुत अधिक मिलता है। (३) सरहपाद का दोहा और पदशैली बाद के सभी हिन्दी-कवियों ने अपनायी।^३

किन्तु इन तीनों ही प्रमाणों का भाषा से कोई संबंध नहीं है। अगर परम्परा और प्रेरणा के आधार पर ही हिन्दी के प्रथम कवि की खोज करने लगे तो राम काव्य की परम्परा और प्रेरणा को खोजते-खोजते बाल्मीकि रामायण को भी हिन्दी की प्रथम रचना ठहराया जा सकता है। सरहपाद की भाषा के दर्शन अभी आगे करेंगे।

डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने शालिभद्र सूरि को हिन्दी का प्रथम कवि निर्धारित किया है किन्तु शालिभद्र सूरि की भाषा तो सरहपाद की भाषा से भी अधिक अपभ्रंशयुक्त है।^४

हिन्दी-साहित्य के प्रथम कवि के निर्धारण में उलझनें हिन्दी के प्रारम्भिक स्वरूप की अस्पष्टता से हुई हैं। अगर हिन्दी को ही हिन्दी माना जाए और आदिकाल की सीमा रेखाएँ खींचने के लोभ में अपभ्रंश में भी हिन्दी के दर्शन न किए जाएँ तो हिन्दी के प्रथम कवि का निर्धारण करना सरल हो जाएगा। इस सम्बन्ध में हज़ारी

१ (क) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—रामकुमार वर्मा, पृ. १३६

(ख) व्रजभाषा और खड़ी बोली का तुलनात्मक अध्ययन—डा० कैलाश चन्द्र भाटिया, पृ. ६२

(ग) दक्खिनी हिन्दी—डा. बाबूराम सक्सेना, पृ. ३०

२ हिन्दी-काव्य-धारा—राहुल सांकृत्यायन, पृ. ५

३ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—डा. नगेन्द्र, पृ. ३२

४ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—डा. नगेन्द्र, पृ. ३०

प्रसाद द्विवेदी का निम्न मत द्रष्टव्य है—

“अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहने का विचार भाषाशास्त्रेय और वैज्ञानिक नहीं है । भाषा-शास्त्र के अर्थ में जिसे हम हिन्दी कहते हैं वह इस साहित्यिक अपभ्रंश से सीधे विकसित नहीं हुई । अपभ्रंश को अब कोई भी पुरानी हिन्दी नहीं कहता ।¹

जब अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी नहीं कहना चाहिए तो अपभ्रंश के कवि को हिन्दी का प्रथम कवि कैसे कहा जा सकता है ?

प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक के अनुसार हिन्दी-साहित्य का प्रथम कवि गोरखनाथ माना जाना चाहिए ।² अपने मत-निर्धारण से पूर्व सिद्धों, नाथों तथा गोरख की भाषा से सम्बन्धित विभिन्न मत द्रष्टव्य हैं—

(१) “पीतांबरदत्त बड़थवाल तथा श्री राहुल सांकृत्यायन ने नाथपंथ तथा वज्रयानी सिद्धसाहित्य की ओर हिन्दी पाठकों का ध्यान पहले पहल आकर्षित किया तथा बहुत-सी नवीन सामग्री भी ये विद्वान् प्रकाश में लाए । इस सामग्री की प्राचीनता तथा प्रामाणिकता की अभी पूर्ण परीक्षा नहीं हो पाई है । इन कवियों का समय ७०० ई० से १३०० ई० के बीच में माना जाता है किन्तु इनकी रचनाओं का वर्तमान रूप भी उसी समय का है, यह विचारणीय है । प्रारंभिक सिद्धों की कृतियों की भाषा स्पष्टतया अपभ्रंश (मागधी) है ।”³

(२) “जिन कवियों की कविताओं को मैं यहाँ हिन्दी की प्राचीनतम कविता कहकर उद्धृत करने जा रहा हूँ, उन्हें बंगाल के दिग्गज ऐतिहासिक बंगला की कविता कहते हैं । सर्व-पुरातन सिद्ध सरहपाद नालन्दा से सम्बन्ध रखते थे, इसलिए उनकी भाषा का मगही होना स्वाभाविक ठहरा । अन्य सिद्धों ने भी इसी भाषा की कविता की भाषा बनाया । चौरासी सिद्ध नालन्दा और विक्रमशिला से सम्बन्ध रखते थे ।”⁴

यहाँ राहुल जी ने गोरखनाथ की कविता तो उद्धृत नहीं की है किन्तु चौरासी सिद्धों में गोरखनाथ को नवें स्थान पर उद्धृत किया है । चौरासी सिद्धों में गोरखनाथ का चित्र भी दिया हुआ है । (देखिए, पुरातत्त्व निबन्धावली के पृष्ठ १४४ तथा १४८ ।)

(३) “सिद्धों की भाषा जन-समुदाय की भाषा का आश्रय लेकर अपभ्रंश की उस अवस्था का संकेत करती है जिसमें आधुनिक भाषा के चिह्न विकसित होने

- 1 हिन्दी साहित्य का आदिकाल—आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रथम प्रवचन
- 2 लेखक ने अपने शोध-प्रबन्ध ‘गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन’ में गोरख की भाषा का विस्तार से विवेचन करते हुए आदिकालीन भाषा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए गोरख को हिन्दी का प्रथम कवि निर्धारित किया है ।
- 3 हिन्दी भाषा का इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ७८
- 4 पुरातत्त्व निबन्धावली—पं० राहुल सांकृत्यायन, पृ० १६७

लगे थे। इसलिए कि ये सिद्ध अधिकतर नालन्दा और विक्रमशिला में रहे उनकी भाषा बिहार की जनता द्वारा बोली जानेवाली अर्ध-मागधी अपभ्रंश के निकट की भाषा है। अतः उनकी भाषा में जन-बोली 'मगही' का आभास देखा जाता है।¹

(४) "गोरखनाथ अधिकतर पूरब और उत्तर के निवासी थे, अतः उन्हें साधारणतः पूरबी गद्य का प्रयोग करना चाहिए था। एक पूरब का निवासी अपने प्रान्त की भाषा में न लिखकर सुदूर ब्रज-भाषा के अप्रचलित गद्य में अपना ग्रन्थ लिखे, यह बात विश्वसनीय नहीं जान पड़ती।"²

(५) "गोरख, नामदेव आदि की मिली-जुली बोलियोंवाली भाषा से कबीर आदि सन्तों की 'सधुक्कड़ी' भाषा का विकास हुआ जिसमें पश्चिमी हिन्दी का ही बाहुल्य था।"³

(६) "उन्होंने (सिद्धों ने) भरसक उसी सर्वमान्य व्यापक काव्य भाषा में लिखा है जो उस समय गुजरात, राजपूताने और ब्रजमंडल से लेकर बिहार तक लिखने-पढ़ने की शिष्ट भाषा थी।.....पुरानी हिन्दी की व्यापक काव्य-भाषा का ढाँचा शौरसेनी-प्रसूत अपभ्रंश अर्थात् ब्रज और खड़ीबोली (पश्चिमी हिन्दी) का था।"⁴

(७) "आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के पूर्वी तथा पश्चिमी, इन दोनों अंचलों के भाषा-रूपों के उदाहरण इन रचनाओं में मिल जाते हैं।"⁵

(८) "गोरखनाथ की भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मतभेद है जिनके कारण उनके समय की निश्चित करना भी बहुत कठिन दिखाई देता है। निम्नलिखित बातें भाषा के सम्बन्ध में प्रकट हैं —

(१) भाषा अन्य सिद्धों की कविता वाली नहीं है।

(२) संस्कृत का प्रयोग अपने भ्रष्ट रूप में भी है।

(३) अनेक बोलियों का उसमें पुट मिश्रित है।

(४) कहीं-कहीं उर्दू फारसी के भी भ्रष्टरूप मिलते हैं।

(५) भाषा सधुक्कड़ी है।"⁶

(६) "निचली पंक्तियों में हिन्दी (राष्ट्र भाषा, खड़ीबोली) की भी कुछ जनक है।.....गोरख सहज जनभाषा में सब कुछ कहते हैं और दूसरे 'कवि' प्राकृत-व्याकरण टटोलते हैं।"⁷

1 हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६५

2 हिन्दीसाहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १११

3 हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, डा० हरदेव बाहरी, पृ० २३०

4 हिन्दी-साहित्य का इतिहास—आ० रामन्द्र शुक्ल, पृ० १६, २०

5 हिन्दी-साहित्य का इतिहास—डा० दयानन्द श्रीवास्तव, पृ० २०३

6 गोरखनाथ और उनका युग-रांगेयराव, पृ० १६१

7 हिन्दी शब्दानुशासन-पं० किशोरीदास बाजपेयी, पूर्वापीठिका, पृ० १३

(१०) “गोरखनाथ की वानियों और उनकी भाषा का रूप सन्दिग्ध मानने के कारण ही कदाचित् उनकी ऐसी उपेक्षा हुई है। किन्तु विश्लेषण से यह निश्चित रूप से प्रमाणित हुआ है कि गोरखनाथ की वानियों की भाषा पूर्वीय हिन्दी न होकर जैसा सामान्यतः माना जाता है—पुरानी खड़ीबोली है।”¹

गोरखनाथ की भाषा के सम्बन्ध में उपर्युक्त विरोधी निष्कर्षों का एक मूल कारण यह रहा है कि गोरख की भाषा का अध्ययन अभी तक पृथक् रूप से नहीं किया गया था।² अन्य सिद्धों अथवा नाथों की भाषा में मिलाकर एक सामान्य कथन कहा जाता रहा है। कारण, नाथपंथ का सम्बन्ध सिद्ध-संप्रदाय से जोड़ना है।³ पं० राहुल सांकृत्यायन ने जो सन्त और सिद्ध-कविता-प्रवाह को जोड़ने वाली बात कही है⁴ वह भाषा की दृष्टि से नहीं बरन् साम्प्रदायिकता की दृष्टि से कही है। वे लिखते हैं—“चौरासी सिद्धों का काल ८००-११७५ ई० है, किन्तु सिद्ध उसके बाद भी होते रहे हैं। इसलिए सिद्धकाल उसके बाद तक भी रहा है, तो भी भाषा के ख्याल से हम उसे महाराज जयचन्द्रगुरु मित्रयोगी (१२००) के साथ समाप्त करते हैं।”⁵

समसामयिक सिद्धों की भाषा से गोरख की भाषा विलकुल मेल नहीं खाती। इस सम्बन्ध में आ० किशोरीदास वाजपेयी का निम्न कथन द्रष्टव्य है—“आश्चर्य आप करेंगे, इनमें से कितने ही समसामयिक कवियों की भाषा में आकाश-पाताल का अन्तर है। कुछ कवियों या सन्तों की भाषा तो ऐसी है, जिसे हम बहुत सरलता से ग्रहण कर लेते हैं और जो उच्चारण में भी हमें उद्विजित नहीं करती। सन्त गोरख की वाणी ऐसी ही है। परन्तु दूसरे विद्वान् कवियों की भाषा बड़ी विचित्र है। गोरख पुष्पदन्त से एक शताब्दी पहले और भाषा उनकी ऐसी कि आज भी

- 1 कुतुब शतक और उसकी हिन्दुई—डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रस्ता०, पृ. ५
- 2 गोरखनाथ की रचनाओं का प्रथमवार भाषा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने अपने शोध-प्रबन्ध ‘गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन’ में किया है।
- 3 “इस संप्रदाय के लिए अनेक नामों का उल्लेख मिलता है। उदाहरण स्वरूप इस पंथ के लिए ‘नाथमार्ग’ या ‘सिद्ध सम्प्रदाय’ आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इस संप्रदाय की मूल वृत्ति योगमूलक है। इसके लिए ‘सिद्धमार्ग’ की संज्ञा के कारण इसका सम्बन्ध सिद्धों से भी स्थापित किया जाता है। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि नाथ संप्रदाय में प्रचलित अनेक नाम सिद्धों की सूची में भी मिलते हैं।” —हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० दयानन्द श्रीवास्तव, पृ. १५८
- 4 “यदि बारहवीं शताब्दी के अन्त से चौदहवीं शताब्दी के अन्त का कविता-प्रवाह जोड़ा जा सके, तो सिद्ध और सन्त-कविता-प्रवाह के एक होने में आपत्ति नहीं हो सकती। यह जोड़ने वाली शृंखला नाथपंथ की कविताएँ हैं।” —पुरातत्व निबन्धावली—सांकृत्यायन पृ. १६१
- 5 पुरातत्व निबन्धावली—राहुल सांकृत्यायन, पृ. १६१

हम लोग सरलता से समझ लेते हैं। यही कारण है कि गोरख की वाणी समझाने के लिए राहुल जी को प्रतिरूप पंक्तियाँ नहीं देनी पड़ी हैं।¹

आदिकाल के प्रथम कहे जाने वाले कवियों तथा गोरख की रचनाओं के कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

शालिभद्र सूरि—

तं जि पहिय पिकखेविणु पिअ उक्कं खिरिय ।

मन्थर गय सरलाइवि उत्तावलि चलिय ॥

तुह मणहर चल्लतिय चंचल रमण भरि ।

छुड़वि खिमिय रसणावलि किंकिण रव पसरि ॥

सरहपाद—

(अ) पण्डित सअल सन्त वक्खाणइ । देहहि रुद्ध बसन्त न जाणइ ॥

अमणागमण ण तेन विखण्डिअ । तोवि णिलज्ज भणइ हउं पण्डित ॥

(आ) काअ णाबडि खण्टि भण के डुआल । सतगुरु वअणे धर पतवाल ॥

चोअ थिर करि महुरे नाहीं । अन उपाये पार ण जाई ॥

गोरखनाथ—

(अ) गगन मंडल मैं ऊँधा कृपा तहाँ अमृत का बासा ।

सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै, निगुरा जाइ पियासा ॥

(आ) सबदहि ताला सबदहि कूँची, सबदहि सबद जगाया ।

सबदहि सबद सूँ परचा हुआ, सबदहि सबद समाया ॥

(इ) सीषि सापि विसाह्या बुरा । सुपिनैं मैं धन पाया पड़ा ।

परषि परषि लँ आगँ घरा । नाथ कहै पूता घोटा न बरा ॥

(ई) गोरप कहै सुणहु रे अवधू जग मैं ऐसे रहणों ।

आपें देषिवा काँनै सुणिबा मुप थैं कछु न कहणों ॥

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शालिभद्र सूरि एवं सरहपाद की भाषा अपभ्रंश है जबकि गोरखनाथ की भाषा पूर्णतया हिन्दी है।

जहाँ तक गोरखनाथ के समय का प्रश्न है सो यद्यपि विद्वानों के विभिन्न मतों के आधार पर इनका समय सातवीं शती से तेरहवीं शती के मध्य निर्धारित होता है। किन्तु आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी को नवीनतम खोजों के आधार पर उनका समय १० वीं शताब्दी ही अधिक तर्कसम्मत है।

उक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर गोरखनाथ को हिन्दी का प्रथम कवि माना जा सकता है और इस प्रकार हिन्दी साहित्य के आदिकाल का प्रारम्भ १० वीं शती से माना जाना चाहिए।

१.५. गोरख रचनाओं की प्रामाणिकता

गोरखनाथ की रचनाओं में हिन्दी का आदिकालीन स्वरूप निहित है। उनके

काल-निर्धारण के सम्बन्ध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं, फिर भी विभिन्न मतों के आधार पर इनका समय सातवीं शती से बारहवीं शती के मध्य निश्चित किया जाता रहा है^१, जबकि गोरख-रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ पन्द्रहवीं शती पूर्व की नहीं मिलतीं।^२ इस अन्तराल में गोरख की रचनाएँ उनके शिष्यों की वाणियों से ही मुखरित हुई होंगी। यहाँ यह शंका होना स्वाभाविक है कि गोरखनाथ की मूल रचनाओं में इतनी अवधि में भी क्या भाषाई परिवर्तन नहीं हुए होंगे? गोरखनाथ के नाम से मिलने वाली रचनाओं में यत्र-तत्र नाथ-सिद्धों की छाप मिल रही है; हस्त-लेख-प्रतियों में बहुत अधिक पाठ-भेद मिलता है, भाषा में विभिन्न व्याकरणिक रूपों का मिश्रण सुस्पष्ट है। इस विविधता में गोरख की मूल रचनाओं को खोजना दुस्साध्य है किन्तु जहाँ एक ओर शिष्यों के द्वारा परिवर्तन की संभावना की जा सकती है, वहाँ दूसरी ओर अपने गुह में प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास के कारण शिष्यों ने गोरख की रचनाओं को जैसा-का-तैसा रखने का प्रयत्न किया होगा। द्रष्टव्य है कि गोरख-रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियों में जो भाषाई भिन्नता दृष्टिगत होती है वह कालावधि से कम प्रभावित जान पड़ती है, स्थान-भेद से अधिक। उदाहरण के लिए १५ वीं शती के उन चार पद्यों को उद्धृत किया जा रहा है, जो अठारहवीं-उन्नीसवीं शती के हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर संपादित 'गोरखबानी' की मूल

१ सातवीं शती—डा. भवानो शंकर त्रिवेदी-हमारा हिन्दी-साहित्य और भाषा--परिवार, पृ. ३८।

आठवीं शती—डा. शहीदुल्ला (डा. रामकुमार वर्मा के हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के आधार पर, पृ. १०७)

नवीं शती—पं. किशोरीदास वाजपेयी-हिन्दी शब्दानुशासन, पृ. १२

श्री राहुल सांकृत्यायन-पुरातत्व निबंधावली, पृ. ६१।

डा. रांगेय-राघव-गोरखनाथ और उनका युग, पृ. २६।

दसवीं शती—डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी-नाथ संप्रदाय, पृ. १०८।

ग्यारहवीं शती—डा. पीताम्बर दत्त बड़धवाल--गोरखबानी, भूमिका, पृ. २०।

बारहवीं शती—आ० रामचन्द्र शुक्ल

डा. रामकुमार वर्मा--हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,

पृ. १०७, १०८।

२ डा. बड़धवाल को गोरख-रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ अधिक-से अधिक अठारहवीं शती की ही मिल सकी थीं किन्तु श्री अगरचन्द नाहटा ने योगवाणी, के 'गोरख-विशेषांक' (जनवरी १९७७ ई०) में गोरख-रचनाओं के हस्तलिखित ऐसे चार पद्यों का उल्लेख किया है जो पंद्रहवीं शताब्दी के शुभशीलरचित 'विक्रमचरित' में उद्धृत हैं। इसके अतिरिक्त श्री अगरचन्द नाहटा जी ने १७ वीं शताब्दी के जैन कवि बनारसीदास कृत 'बनारसीविलास' में उद्धृत सात चौपाइयों का भी उल्लेख किया है।

भाषाई प्रकृति से मेल खाते हैं^१—

सूता मित्ता हुई अनेरा, नर ही नारि अनेरी ।
मोहइ मोहियों मुड जपई मुहईआं मोरी मोरी ॥१॥
अतिहि गहना अतिह अपारां संसार सायर खारा ।
बुझउ बुझ गोरख बोलई सारा धम्म विचारा ॥२॥
कवण केरा तुरंग हाथी, कवण केरी नारी ।
नरकि जांता कोई न राखअे हियडई जोई विचारी ॥३॥
क्रोध परिहरि मान मनकरि माया लोभ निवारे ।
अवरं वैरटि जनम आपे केवल आपु तारे ॥४॥

गोरखनाथ की रचनाओं की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में डा० बड़वाल का निम्न कथन भी द्रष्टव्य है—‘नाथ-परम्परा में इनके कर्ता प्रसिद्ध गोरखनाथ से भिन्न नहीं समझे जाते । मैं अधिक संभव यह समझता हूँ कि गोरखनाथ विक्रम की ११ वीं शती में हुए । ये रचनाएँ जैसी हमें उपलब्ध हो रही हैं, ठीक वैसी ही उस समय की है, यह नहीं कहा जा सकता । परन्तु इसमें भी प्राचीनता के प्रमाण विद्यमान हैं, जिससे यह कहा जा सकता है कि संभवतः इनका मूलोद्भव ग्यारहवीं शती में हुआ हो ।’^२

इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए डा० बड़वाल ने गोरखनाथ की रचनाओं का संपादन ‘गोरखबानी’ नाम से हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित कराया । इससे पूर्व डा० मोहनसिंह ने ‘गोरखबोध’ तथा कुछ फुटकर पदों की अंग्रेजी-अनुवाद तथा टिप्पणियों के साथ छपवाया था । गोरखबानी में यह सामग्री भी समाहित है ।

डा० बड़वाल को नाथ योगियों की हस्तलिखित दस प्रतियाँ मिली थीं । इन दस प्रतियों के आधार पर डा० बड़वाल ने गोरखनाथ के नाम से मिलने वाली चालीस रचनाओं की खोज की । विभिन्न प्रमाणों के आधार पर डा० बड़वाल ने इन चालीस रचनाओं में से १४ रचनाओं को असंदिग्ध माना है । ‘ग्यानचौतीसा’ को छोड़कर तेरह प्रामाणिक रचनाओं को उन्होंने ‘गोरखबानी’ के मूल भाग में संपादित किया है और शेष संदिग्ध रचनाओं को परिशिष्टों में रखा है ।^३

फिर भी, क्योंकि, एक तो, विभिन्न काल एवं स्थान की प्रतियों के द्वारा प्रस्तुत ग्रंथ का संपादन किया गया है और दूसरे, सन् १९४२ ई० के इस संपादन के

१ प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने अपने शोध-प्रबंध “गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन” (आगरा विश्वविद्यालय, १९७५ ई०) में गोरख की मूल भाषाई प्रकृति खड़ीबोली को प्रमाणित किया है । प्रस्तुत पद्य तीन सौ वर्ष पुराने होते हुए भी भाषाई समानता की दृष्टि से ‘गोरखबानी’ की रचनाओं से तुलनीय हैं । साथ ही खड़ीबोली का रूप भी द्रष्टव्य है ।

२ गोरखबानी—सं. पीताम्बर दत्त बड़वाल, भूमिका, पृ. २० ।

३ गोरखबानी—सं. पीताम्बर दत्त बड़वाल भूमिका, पृ. १४-१५ ।

पश्चात् विगत ४१ वर्षों में हजारों हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज हुई और उनमें गोरख की रचनाएँ भी संग्रहीत हैं^१ अतः बड़श्वाल द्वारा संपादित 'गोरखबानी' की रचनाओं की प्रामाणिकता पर विचार करना इस समय अत्यावश्यक हो गया है। परिशिष्ट की रचनाओं की संदिग्धता के संबंध में यहाँ कुछ नहीं कहना। केवल बड़श्वाल जी द्वारा असंदिग्ध और प्रामाणिक मानी जाने वाली तेरह रचनाओं के मूलत्व एवं क्षेप-कत्व के सम्बन्ध में भाषाई विचार करना ही अभीष्ट है।

गोरखनाथ की प्रामाणिक कही जाने वाली रचनाओं में भी अन्य सन्तों की बानियाँ मिली हुई हैं। वज्रायानी सिद्धों से लेकर कबीर और उनके अनुयायियों तक में एक ही कविता-प्रवाह चला आ रहा है।^२ विषयवस्तु के साथ-ही-साथ इन सन्त कवियों ने अपने पूर्ववर्तियों की शैली और प्रतीक योजनाओं को भी ज्यों-का-त्यों अपनाने का प्रयत्न किया है। कहीं-कहीं तो वाक्य अथवा उपवाक्य तक भी समान रूप से मिल रहे हैं।

'गोरखबानी' में कुछ बानियाँ ऐसी हैं जिनमें किसी अन्य नाथसिद्ध का नाम स्पष्ट रूप से उल्लिखित है, कुछ ऐसी हैं जो गोरखबानी के अतिरिक्त अन्यत्र भी संग्रहीत हैं, कुछ बानियाँ आंशिक रूप से एकाधिक बार आ गई हैं। इस प्रकार के सभी स्थलों को क्षेपक अंश कहें अथवा न कहें, यही यहाँ विवेच्य है।

सर्वप्रथम गोरखबानी के ऐसे चार पदों को उद्धृत किया जा रहा है, जो गोरखनाथ को मूल भाषाई प्रकृति से कतिपय भिन्न हैं और अन्य भाषाई प्रकृति से मेल खाते हैं। अतः हम भाषा तथा अन्य दृष्टियों से इन पदों का विवेचन कर रहे हैं—

“छांटै तजौ गुरु छांटै तजौ लोभ मोह माया ।

आत्मा परचै राषो गुरुदेव सुन्दर काया ॥

कान्हीपाव भेटीला गुरु, विद्यानग्र सैं ॥

ताथैं मैं पाइला गुरु, तुम्हारा उपदेसैं ॥

एतैं कछु कथीला गुरु, सबैं भेला भोले ।

सर्व रस षोईला गुरु, बांधनी चैं पोले ॥

नाचत गोरखनाथ घूंघरी चैं घातैं ।

सब कमाई षोई गुरु, बांधनी चैं राचैं ॥”

रस-कुस बहि गईला, रहि गई छोई ।

भगत मछिद्रनाथ पूता, जोग न होई ॥

१ द्रष्टव्य है “योगेश्वर गोरखनाथ की हिन्दी वाणी और दो जैन ग्रन्थों में उद्धृत उनके पद”—अगरचन्द नाहटा (योगवाणी-गोरख विशेषांक, जनवरी १९७७ ई०)

२ “नाथपन्थ के चौरासी सिद्धों का उत्तराधिकारी सिद्ध हो जाने पर फिर कबीर से सावधान जोड़ने में दिक्कत नहीं रहती। कबीर स्वयं चौरासी सिद्धों को भूले न थे।”—पुरातत्व निबन्धावली—पृ० राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ १६४।

रस-कुस बहि गईला रहि गईला सारं ।

बदंत गोरपनाथ गुरु जोग अपारं ॥

आदिनाथ नाती मछिद्रनाथ पूता ।

षट्पदी भणीलै गोरष अवधूता ॥

(—गोरखबानी, पद २)

“कैसे बोलों पंडिता देव कौनों ठाई,

निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें नाहीं,

पपांण ची देवली पपांण चा देव,

पपांण पूजिला कैसें फटीला सनेह ।

सरजीव तेड़िया निरजीवी पूजिला,

पाप ची करणों कैसें दूतर तिरीला ।

तीरथि तीरथि सनान करीला,

बाहर धोये कैसें भीतरि भेदीला

आदिनाथ नाती मछिद्रनाथ पूता,

निज तत निहारै गोरष अवधूता ।”

(—गोरखबानी, पद ३७)

“थान दे गोरीए गोरष बाला माई बिन प्याले प्याला ।

गिगान ची डालहीला पालंषु, गोरषबाला पोड़िला ।

देव लोक ची देव कन्या, मृत लोक ची नारी,

पाताल लोक ची नाग कन्या, गोरषबाला भारी ।

माया मारिली मावसी तजीली, तजीला कुटंव ब्रन्धु,

सहंसर कवन तहां गोरषबाला जहां मन मनसा मुर संधू ।

आसा तजीला तूसनां तजीला तजीला मनसा माई,

नौ षंड पृथ्वी फेरिले आलों गोरष रहीला मछिद्र ठाई ॥

(गोरखबानी, पद ४६)

“गुर कीजै गहिला निगुरा न रहिला,

गुर बिन ग्यान न पायला रे भाईला ।

दूधैं धोया कोइला उजला न होइला,

कागा कटें पटुप माल हंसला न भेला ।

अभाजै सी रोटली कागा ले जाइला ।

पूछी म्हारा गुरु नैं कहां बैसि पाइला ।

उतर दिस आबिला, पछिम दिस जाइला ।

पूछी म्हारा सत गुरु नैं, तिहां बैसि पाइला,

चीटी केरा नेत्र मैं गज्येंद्र समाइला,

गावड़ी के मुख मैं बाघला बिवाइला ।

बारै बरसैं बंडा व्याई हाय पाव टूटा,
बदंत गोरखनाथ मछिंद्र ना पूता ।

—गोरखब नी, पद ३४

इन चार पदों में से प्रथम तीन पदों में १२ बार संबंधकारक के लिए चा, ची, चै, चिह्न का प्रयोग हुआ है। पुरी गोरखबानी में इन १२ प्रयोगों के अतिरिक्त कहीं भी ये चिह्न प्रयुक्त नहीं हुए हैं। गोरखबानी की मूल भाषा के सम्बन्धकारक के चिह्न तो का, की, के हैं। ना, नी, नै राजस्थानी के प्रभाव से प्रयुक्त हुए हैं। ना, नी, नै वाले स्थलों पर यहाँ विचार इसलिए नहीं किया जा रहा, क्योंकि ये चिह्न गोरखबानी में बिखरे पड़े हैं और ऊपर से मिलाये हुए नहीं लगते। चा, ची, चै कारकीय चिह्न मराठी के हैं और गोरखबानी की भाषा के क्षेत्र में कहीं नहीं बोले जाते।

इन कारक-चिह्नों के अतिरिक्त इन चारों पदों में ईला प्रत्यय की भरमार है। गोरखबानी में यद्यपि भविष्यत् काल के लिए प्रयुक्त-ईला प्रत्यय राजस्थानी के प्रभाव से आ गया है किन्तु यह प्रत्यय उसकी भाषा की मूल प्रवृत्ति नहीं है। मराठी में यह प्रत्यय भूतकाल के लिए प्रयुक्त होता है। वर्तमानकाल और भविष्यत् काल के लिए भी प्रयुक्त होता है।¹ गोरखबानी में प्रयुक्त कुल-ईला प्रत्यय के दो तिहाई प्रयोग इन चार पदों में ही आ गये हैं। इस प्रत्यय की इतनी अधिक भरमार इन पदों को गोरखबानी की भाषा से सजह ही अलग कर देती है।

इन पदों की शब्दावली भी हिन्दी-क्षेत्र के लिए विचित्र है, जैसे-छांट, भोलें, एतैं, षोलैं, घातैं, राचैं, रस-कुस, पषाण, देवली, फटीला, तेड़िया, दूतर, भेदीला, डाल्हीला, पालषू, मावसी आदि।²

अतः हम प्रथम तीन पदों को तो मराठी भाषा के निकट कह सकते हैं और चौथा पद मराठी और राजस्थानी का सम्मिलित रूप है। चारों पद गोरख की मूल भाषा से भिन्न हैं। इन पदों पर क्षेत्र विशेष का तथा लिपिकार का प्रभाव स्पष्ट है।

गोरखबानी में संग्रहीत एक सबदी इस प्रकार है—

“इस औजुदा में मारिलें गोता, कछु मगज भीतरि प्याल रे।

पंच कटार है भीतरि निमस करि बेहाल रे।”—सं० २३६

संपूर्ण गोरखबानी में अरबी-फारसी के कुल ७० शब्द हैं जबकि इस एक ही

1 शास्त्रीय मराठी व्याकरण-महोदय के शब्द दामले, पृष्ठ २२८।

2 कुछ शब्द तो आज भी मराठी में बहुप्रचलित हैं, जैसे-छांट=संन्यासी के वस्त्र, भोलें=भोलैपन में, षोल=शोली, रसकुस=कीमायां चा बहार, भेदीला=छेदना, पालषू=पालकी, पट्टुड=निद्रा, मावसी=मोसी आदि। (दे० मराठी शब्द रत्नाकार—के बाबुदेव गोविंद आपटे)। कुछ गुजराती में प्रचलित हैं, जैसे-घात=आवाज, राचना=प्रसन्न होना, रसकुस=तार, फटीला=खुलेगा, तेड़ना=साथ ले चलना आदि। (दे० गुजराती-हिन्दी कोश-प्रका० रामलाल डाह्याभाई परीख)।

सबदी में ५ शब्द अरबी-फारसी के आ गए हैं। गोरखनाथ की भाषा से मेल न खाने के कारण हम इसे प्रक्षिप्त ही कहेंगे। इसकी भाषा अपेक्षाकृत सरल है और यह बहुत परवर्ती जान पड़ती है।

एक सबदी इस प्रकार है—

“मांन्यां सबद चुकाया दंद । निहचै राजा भरथरी परचै गोपीचन्द ।

निहचै नरवै भए निरदंद । परचै जोगी परमानन्द । स० १५

शब्द की उपासना करने पर राजा भट्टहरि तथा राजा गोपीचन्द के निश्चिन्त हो जाने अथवा ब्रह्मसाक्षात्कार करने की बात कही गई है। उक्त दोनों राजा नाथ-परम्परा में गोरख के परवर्ती माने जाते हैं। शिष्य होने के कारण गोरख के समसामयिक मानने पर भी गोरख द्वारा इनका उदाहरण देना तर्क सम्मत नहीं है। यह सबदी न राजा भट्टहरि की है और न राजा गोपीचन्द की। नाथ-परम्परा के किसी परवर्ती सिद्ध की कही हुई जान पड़ती है।

गोरखबानी की निम्नलिखित चार सबदियाँ द्रष्टव्य हैं—

अवधू अहार तोड़ो निद्रा मोड़ो कबहु न होइगा रोगी ।

छठे छ मासै काया पलटिबा ज्यूं को को बिरला बिओगी । स० ३३

×

×

×

अवधू अहार कूं तोड़िवा पवन कूं मोड़िबा ज्यं कबहु न होयगा रोगी ।

छठे छमासि काया पलटंत नाग वंग बनासपती जोगी । स० २१५

×

×

×

निहचल घरि वंसिवा पवन निरोधिबा कदे न होइगा रोगी ।

बरस दिन में तीनि बर काया पलटिबा नाग वंग बनासपती जोगी । स० ६२

×

×

×

सास उसास बाइ कौं भषिबा, रोकि लेहु नव द्वारं ।

छठे छमासि काया पलटिबा, तब उनमंनों जोग अपारं । स० ५२

इन सबदियों में एक ही बात की पुनरुक्तियाँ हैं। तीन सबदियों में तो ‘छठे छमासे’ काया पलटने की बात है किन्तु एक में, वर्ष में तीन बार काया पलटने की बात कही है। ‘छठे छमासै’ के हिसाब से तो साल में दो ही बार पलटी जा सकती है। हो सकता है कि तीन बार काया पलटने की बात नाथपंथ में बाद में चल पड़ी हो और सबदी ६२ बाद के किसी सिद्ध की रची हुई हो। सबदी २१५ केवल ‘ग’ और ‘घ’ प्रतियों में ही मिल रही हैं। इन चारों में गोरख की मूल सबदी तो ३३ वीं ही लगती है अन्य तीन उसके आधार पर बाद में रची हुई लगती हैं। किन्तु भाषा की दृष्टि से अधिक परवर्ती कोई नहीं है।

गोरखबानी में संग्रहीत निम्नलिखित सबदी ‘बीजक’ में कबीर की मानी गई है १

कदे न सोभै सुन्दरी सनकादिक के साथि ।

जब तब कलंक लगाइसी काली हांडी हाथि । स० २५०

निम्नलिखित सबदियों को अन्य नाथ सिद्धों की वानियों से मिलाइए—

गोरख—जिभ्या इंद्री एकै नाल । जो राषं सो वंचै काल ।

पंडित ग्यांती न करसि गरब । जिभ्या जीती जिन जीत्या सरब ।¹

महादेव—जिह्वा इंद्री येकै नाल । जे राषं ते वंचै काल ।

बोलंत ईस्वर सति सरूप । तत बिचारै तो रेष न रूप ॥²

गोरख—अधिक तत्त ते गुरु बोलिए हीण तत ते चेला ।

मन मोनै तो संगि रमी नहीं तो रमी अकेला ॥³

बालगुंदाई—अधिक तत्त ते गुरु बोलाए । सम तत गुरभाई ।

हीन तत्त ते चेला बोलाए । सत्ति सत्ति भाषै बाल (गुं) दाई ।⁴

गोरख—घन जीवन को करै न आस । चित्त न राघे कामनि पास ।

नाद बिद जाकै घटि जरै । ताकी सेवा पारबती करै ॥⁵

पारबती जी—घन जीवन को करै न आस । चित्त न राषै कामनि पास ।

नाद बिद जाकै घटि जरै । ताकी सेवा पारबती करै ॥⁶

गोरख—सूरां का पंथ हार्यां का बिसराम सुरता लेहु बिचारी ।

अपरचै पिंड भिष्या पात है अंति कालि होयगी भारी ॥⁷

इत्तजी—सूर्यां का पंथ हार्यां का विश्राम, सुरता लेखु बिचारी ।

अण परचै प्यंड भिष्या मांगै, अंतकाल होइगी भारी ॥⁸

गोरख—पाया लो भल पाया लो सरब थान सहेती थीति ।

रूप सहेती दीसण लागा, तब सर्व भई परतीति ॥⁹

गोपीचंद—पाया लो भल पाया लो सबद थान सहेती थीति ।

रूप सहेती दीसण लागा । पिंड भइ प्रतीति ॥¹⁰

गोरख—पंथ चले चलि पवनां तूटै । तन छोड़ै तन जाई ।

काया तैं कछु अगम बतावै ताकी मूडूं माई ॥¹¹

-
- 1 गोरखबानी-सं० डा० बड़धवाल, सबदी २१६
 - 2 नाथसिद्धों की वानियां-सं० आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ११५ (५/६८६)
 - 3 गोरखबानी-सं० डा० बड़धवाल, सबदी १६१
 - 4 नाथसिद्धों की वानियां-सं० आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ६६ (२३/५८८)
 - 5 गोरखबानी-सं० डा० बड़धवाल, सबदी १६
 - 6 नाथसिद्धों की वानियां-सं० आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, ६८ (५/४३४)
 - 7 गोरखबानी-सं० डा० बड़धवाल, सबदी २१६
 - 8 नाथसिद्धों की वानियां-सं० आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ५५ (६/३७०)
 - 9 गोरखबानी-सं० डा० बड़धवाल, सबदी ८०
 - 10 नाथसिद्धों की वानियां-सं० आ० द्विवेदी, पृ० १६ (२१/१०६)
 - 11 गोरखबानी-सं० डा० बड़धवाल, सबदी २२४

हणवतजी-पंथ चलै चलि पवनां टूटै । तन छोड़ै तत जाई ।

काया तैं कछु दूरि बतावै । तिसकी मूढ़ी माई ॥¹

गोरख— अजपा जपै सुनि मन धरै । पांचौ इन्द्रो निग्रह करै ।

ब्रह्म अग्नि मैं होमैं काया । तास महादेव बंदै पाया ॥²

महादेवजी-अजपा जपै सुनि मन धरै । पांचू इन्द्रो निग्रह करै ।

ब्रह्म अग्नि मैं होमैं काया । तास महादेव बंदै पाया ॥³

गोरख— स्वामी बन पंडि जाउं तो घुध्या व्यापै नग्री जाउं त माया ।

भरि भरि पाउं त बिद बियापै क्यों सौझति जल व्यंद की काया ॥⁴

जलान्धोपाव-गोपीचन्द कहे स्वामी वस्ती रह्युं तो कंदप व्यापै ।

जंगलि रह्युं घुघा संतारै ।

आसणि रह्युं तो व्यापै माया ।

पंथि चलूं तो छोड़ै काया ।

मोठा धाऊं तो व्यापै रोग ।

कहौ किसी परि साधू जोग ॥⁵

गोरख— एकाएकी सिध नाउं दोइ रमति ते साधवा ।

चारि पंच कुटुम्ब नाउं दस बीस ते लसकरा ॥⁶

दत्तात्रे— एकाएकी सिध्या नाउं । दुतीए नाम साधवा ।

चारि पांच कैटू बा नाऊं । दस बीस ते लसकरा ॥⁷

इनके अतिरिक्त कुछ सबदियाँ ऐसी हैं जिनकी एक-एक पंक्तियाँ मिलती हैं और दूसरी बिलकुल भिन्न हैं। समान रूप से पाई जाने वाली इन सबदियों के सम्बन्ध में यह कहना कठिन है कि ये गोरख की हैं अथवा अन्य सिद्धों की, जिनके नाम से संग्रहों में संग्रहीत हैं। भाषा की दृष्टि से अधिकांशतः गोरख की भाषा से मेल खा रही हैं किन्तु अन्य सिद्धों की रचनाओं में इनका पाया जाना इनकी संदिग्धता ही प्रकट करता है। कुछ सबदियों में, जैसे, महादेव का नाम पाया जाता है, उनको हम महादेव की कह सकते हैं किन्तु महादेव कौन थे, कब हुए, कुछ पता नहीं।

गोरखबानी में कुछ सबदियाँ ऐसी हैं जिनमें अन्य किसी सिद्ध अथवा संत का नाम कवि के स्थान पर आ रहा है। ऐसी सबदियों को हम निश्चित रूप से उन्हीं

- 1 नाथसिद्धों की वानियां-सं० द्विवेदी, पृ० १२७ (१०/७४७)
- 2 गोरखबानी-सं० डा० बड़धवाल, सबदी १८
- 3 नाथसिद्धों की वानियां-सं० आ० द्विवेदी, पृ० ११५ (६/६८७)
- 4 गोरखबानी-सं० डा० बड़धवाल, सबदी ३०
- 5 नाथसिद्धों की वानियां-सं० आ० द्विवेदी, पृ० ५२ (५/३५६)
- 6 गोरखबानी-सं० डा० बड़धवाल, सबदी १७६
- 7 नाथसिद्धों की वानियां-सं० आ० द्विवेदी, पृ० ५६ (१०/३६१)

की कहेंगे जिनके कि नाम उनमें उल्लिखित हैं। यथा—

लाल बोलंतौ अम्हे पारि उतरिया, मूढ रहै उर वारं ।

थिति बिहूणां झूठा जोगी न तसवार न पारं ॥^१

यह सबदी लालनाथ की संभव है।

ॐ लीहा पीर । तांवा तकबीर ।

रूपा महंमद सोना पुदाई । दुहुं बिचि दुनिया गोता पाई ।

हम तो निरालंभ बंठे देखते रहें ऐसा एक सुषन बाबा रतन हाजी कहै॥^२

इस सबदी के सम्बन्ध में डा० बड़वाल लिखते हैं—“यह सबदी प्रायः सब प्रतियों में मिलती है परन्तु स्पष्ट ही बाबा रतननाथ की है, गोरख की नहीं।^३

हंड ब्रह्मण्ड चहोड़िया मानू वेस्या अंग ।

कोई कोई कोरड़ रह गया यूं भाष नाथ रतनं ॥^४

यह सबदी भी रतननाथ की ही है। इन सबदियों की भाषा भी अपेक्षाकृत परवर्ती विदित होती है।

यों तो ‘गोरखबानी’ के सम्पादन के पश्चात् गोरख-रचनाओं की बहुत सारी हस्तलिखित प्रतियों के प्राप्त होने के कारण गोरख-रचनाओं की प्रामाणिकता जानने के लिए उनके पुनः सम्पादन की आवश्यकता है किन्तु फिर भी यदि उक्त अध्ययन के आधार पर ‘गोरखबानी’ की रचनाओं में से प्रक्षिप्त अंशों को अलग करके अवशिष्ट रचनाओं को देखा जाए तो निश्चित रूप से गोरख की रचनाओं में प्रामाणिकता एवं प्राचीनता के तत्त्व दृष्टिगत होने लगेंगे और उन विद्वानों का भ्रम भी दूर हो सकेगा, जिन्हें गोरखनाथ की रचनाओं में सदैव अप्रामाणिकता ही दिखाई दी है।

□

१ गोरखबानी-सं. डा. बड़वाल, सबदी १०४

२ गोरखबानी-सं. डा. बड़वाल, सबदी ११८

३ गोरखबानी-सं. डा. बड़वाल, पाद टिप्पणी, पृ. ४२

४ गोरखबानी-सं. डा. बड़वाल, सबदी २११

२. गोरखनाथ की योग-साधना

२.१ शिवोपदिष्ट योग का संकेत

महायोगेश्वर आदिनाथ शिव योगदर्शन के आदिप्रवर्तक माने जाते हैं। नाथ-परम्परा अथवा नवनाथों की विभन्न सूचियों में चाहे कितना ही अन्तर क्यों न हो, किन्तु आदिनाथ के रूप में योगिराज शिव सर्वत्र विद्यमान हैं। चाहे शास्त्रसम्मत कथन हो और चाहे लोक-प्रचलित धारणाएँ, सर्वत्र आदिनाथ शिव ही योगशास्त्र के मूल प्रेरणास्रोत एवं योगज्ञान के आदि उपदेष्टा कहे जाते हैं। पार्वती ने अपनी वन्दना में शिव को महायोगी के रूप में ही देखा है—

योगमार्गकृते तुभ्यं महायोगीश्वराय ते ।

नमस्ते परिपूर्णाय जगदानन्दहेतवे ॥^१

महायोगी गोरखनाथ ने 'गोरक्षपद्धति' में कहा है कि योगशास्त्र आदिनाथ शिव के मुखकमल से निर्गत हुआ। केवल उसी योगशास्त्र को नित्य पाठ करना चाहिए, अन्य शास्त्रों के विवेचन से कोई लाभ नहीं—

योगशास्त्र पठेन्नित्यं किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।

यत्स्वयं चादिनाथस्य निर्गत वदनाम्बुजात् ॥^२

शिवसंहिता शिवजी द्वारा उपदिष्ट योगमार्ग का ग्रन्थ है। उन्होंने भक्तों पर अनुरक्त होकर ही योग का उपदेश दिया है—

अथ भक्तानुरक्तोऽहं वक्ष्ये योगानुशासनम् ।^३

शिवजी ने जब भगवती पार्वती को योगोपदेश-नाथ-योगज्ञान प्रदान किया, तब दैवयोग से उसका श्रवण योगीन्द्र मत्स्येन्द्रनाथ ने किया और उनके द्वारा महायोगी गोरखनाथ ने उसे ग्रहण किया। इस तरह आदिनाथ शंकर द्वारा उपदिष्ट योग-ज्ञान-परम्परा अद्यपर्यन्त नाथ-सम्प्रदाय में ग्रहीत होती आ रही है।^४

१ योगबीज-३

२ गोरक्षपद्धति २/१००

३ शिवसंहिता १/२

४ महायोगेश्वर आदिनाथ-शिव—श्रीरामलाल श्रीवास्तव, 'योगवाणी' का नाथसिद्धचरितामृत' विशेषांक पृ० ७

श्रीगोरखनाथ ने अपने संस्कृत ग्रन्थों में—विशेष रूप से गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह में महायोगेश्वर शिव को योगसाधना का आदि प्रवर्तक एवं परम उपास्य आदि-गुरु स्वीकारते हुए उनकी योगपद्धतियों का विस्तार से निरूपण किया है, साथ ही अपनी हिन्दी रचनाओं में भी उन्होंने भगवान शिव को ही आदिगुरु स्वीकार करते हुए उनके उपदिष्ट योग सिद्धांत का ही निरूपण किया है। उनका कहना है कि जब योगी घट-घट में आदिनाथ शिव की समान रूप से अनुभूति कर लेता है, तभी वह योग का प्रारंभ कर सकता है।

जोगारम्भ की याही वाणी सब घटि नाथ एक करि जाणी ।^१

‘गोरखबानी’ में श्री गोरखनाथ ने आदिनाथ शिव को २२ नामों अथवा प्रतीकों से सम्बोधित किया है। पुरिष, परमपुरुष, महापुरिष, अलखपुरिष, प्राणपुरिष, नाथसतगुरु, जगन्नाथ, सीव, सदासिव, अच्यन्त, सेतफटकमनि, दीपक, अदिष्टि, अधर, निरंजन आदि शब्द परमशिव के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। योगसाधना में यह शिव निर्विकार निरंजन है। इसी निरंजन परमेश्वर की उपासना नाथयोग का परम लक्ष्य है। श्रीगोरखनाथ इस निरंजन का निरूपण इस प्रकार करते हैं।

उदै न अस्त रात न दिन सरबे चराचर भाव न भिन्न ।

सोई निरंजन डाल न मुल, सर्वव्यापीक सुषम न अस्थूल ॥^२

‘यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे’ के अनुरूप भगवान् शिव का कहना है कि इस शरीर में सात द्वीपों के सहित सुमेरु पर्वत विद्यमान है। सरिता, सागर, पर्वत, क्षेत्र, क्षेत्रपाल, ऋषि—मुनि और सभी नक्षत्र, ग्रह, पुण्यतीर्थक्षेत्र एवं पीठ और पीठदेवता, सभी की इस शरीर में विद्यमानता है।

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः ।

सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकः ॥

ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।

पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः ॥^३

इसी प्रकार प्राणसंकली में गोरखनाथ ने पिण्ड के आध्यात्मिक रहस्य का निरूपण रूपक शैली में किया है—

तीस पौल तेरह प्रवांणी । तीन गुप्त दस प्रकट जाणी ।

नौ नाटिका कोठड़ी बहतरि । चोर पचास पचीस पंच घटि ।

चौरा लगा तीन सैं साठी । नौ से घाई नाटिक गांठी ।

नदी अठारह गंडिक बहई । मगरमच्छ जल पंरत रहई ॥^४

शिवसंहिता के आधार पर पुरुष का परम लक्ष्य योगसाधना है, भोग नहीं—स्थिते देहे जीवति च योगं न श्रियते भूषम् ।

- १ गोरखबानी-दयाबोध
- २ गोरखबानी-सबदी-११
- ३ शिवसंहिता २/१-२
- ४ गोरखबानी, प्राणसंकली

इन्द्रियार्थोपभोगेषु स जीवति न संशयः ॥^१

श्रीगोरखनाथ ने बार-बार शुक्र-रक्षा पर बल दिया है जो योगी कामवृत्ति का नाश कर देता है, शुक्र को ऊर्ध्वगामी बनाकर कामिनी के भोगास्वादनपरक सेवन का परित्याग कर देता है, उसका सम्मान विष्णु भी करते हैं—

अरघै जाता ऊरघै धरै । कामदगध जे जोगी करै ।

तजे अल्यंगन काढै माया । ताका बिसनु पखालै पाया ॥^२

शिवसंहिता में प्राणायाम से योगसिद्धि का विधान किया गया है । पद्मासन के बारे में कहा गया है कि योगी एकान्त में पद्मासन में स्थित होकर दोनों विज्ञान-नाड़ियों—इड़ा और पिंगला को अंगुलियों से बन्द करे और इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करे । जो साधक इस प्रकार का अभ्यास करता है, उसके लिये योगसिद्धि दूर नहीं है । इस प्रकार क्रमपूर्वक अभ्यास से वायु की सिद्धि प्राप्त हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं है ।

पद्मासनस्थितो योगी जनसंगविवर्जितः ।

विज्ञाननाडीद्वितीयमंगुलीभ्यां निरोधयेत् ॥

यः करोति सदाभ्यासं तस्य सिद्धिर्नदूरतः ।

वायुसिद्धिर्भवेतस्य क्रमादेव न संशयः ॥^३

गोरखबानी में पद्मासन को गोरखनाथ ने प्राणायाम का सहायक माना है । इससे चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है और परिणामस्वरूप योगी ब्रह्मरन्ध्र में ज्ञान-ज्योति का दर्शन करता है ।

ऊ आसण करि पदम आसण बंधि । पिछलै आसण पवनं संधि ।

मन मुछावै सावै ताली । गगन सिपर में होई उजाली ॥^४

शिवसंहिता में मात्र योगशास्त्र पर ही बल दिया है । अगर योगशास्त्र का अध्ययन कर लिया जाय और उसे अपने जीवन में चरितार्थ कर लिया जाय तो अन्य शास्त्रों की कोई आवश्यकता नहीं रहती—

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।

इदमेकं सुनिष्पन्नं योगशास्त्रं परं मतम् ॥^५

गोरखनाथ ने अनेक स्थानों पर अन्य शास्त्रों के पढ़ने का निषेध किया है । उनका कहना है कि परम शिव का ठीक-ठीक निर्वचन न वेद कर पाये हैं, न किताबी धर्मों की पुस्तकें और न चारों खानि की वाणी । ये सब तो उसे आच्छादित कर देते हैं । ब्रह्मरन्ध्र में समाधि द्वारा जो शब्द प्रकाश में आता है, उसमें विज्ञानरूप अलक्ष्य

१ शिवसंहिता ५/२१८

२ गोरखबानी सबदी-१७

३ शिवसंहिता ५/५१-५२

४ गोरखबानी-आत्मबोध

५ शिवसंहिता १/१७

का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए—

बेद कतेब न पाणी वाणी । सब ढंकी तलि आंणी ।

गगन सिषर महि सबद प्रकास्या । तहं वूजै अलप विनारिणीं ॥¹

नाथसम्प्रदाय में गुरु को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है । गुरु ही पिता, माता और देवता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । कर्म, मन और वाणी से गुरु की अच्छी तरह सेवा करनी चाहिए । आत्मा गुरु की प्रसन्नता से समस्त शुभ की प्राप्ति कर लेता है । इसलिए गुरु सदा सेव्य है, अन्यथा शुभ-श्रेय की सिद्धि नहीं हो सकती—

गुरुः पिता गुरुमाता गुरुदेवो न संशयः ।

कर्मणा मनसा वाचा तस्मात् सर्वैः प्रसेव्यते ।

गुरुप्रसादतः सर्वं लभ्यते शुभमात्मनः ।

तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यमन्यथा न शुभं भवेत् ॥²

श्रीगोरखनाथ ने सद्गुरु को सर्वोपरि महत्त्व दिया है—

प्रथमे प्रणऊँ गुरु के पाया । जिन मोहि आत्मब्रह्म लषाया ।

सतगुरु सबद कह्यां तैं बूझ्या । तूहुं लांक दीपक मनि सूझ्या ॥³

जब पूर्ण गुरु मिल जाये, तभी योगाभ्यास के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए । ऐसा न हो कि कुल से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाये और तपस्या भी पूर्ण न हो । अपूर्ण गुरु के सम्पर्क में आकर न तो मृत्युंजय हो सकते हो और न उलझनों से ही मुक्त हो सकते हो । ऐसी अधूरी तपस्या से कोई साधक शूर नहीं हो सकता है ।

काल न मिट्या जंजाल न छुट्या तप करि हुवा न सूरा ।

कुल का नास करै मति कोई जै गुरु मिलै न पूरा ॥⁴

शिवसंहिता में योगी के आहार-विहार का नियमन किया गया है । बुद्धिमान् साधक को योगाभ्यास की सिद्धि जब तक पूर्ण रूप से न हो जाय, तब तक आहार अल्प मात्रा में ही ग्रहण करना चाहिए । इसके विपरीत अधिक मात्रा में भोजन ग्रहण करने से साधन में सफलता नहीं मिलती है । बुद्धिमान् साधक को साधु-बुद्धि से यथा-वश्यक बातचीत करनी चाहिए । शरीर की रक्षा के लिए अल्प भोजन और अल्प संलाप करना चाहिए, क्योंकि अधिक बोलने से शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है—

अभ्यासपाकपर्यन्तं मितान्नं स्मरणं भवेत् ।

अन्यथा साधनं घोमान्कर्तुं पारयतीह न ॥

अतीवसाधुसंलापं साधुसम्मतिबुद्धिमान् ।

करोतिपिण्डरक्षार्थं बद्दालापविवर्जितः ॥⁵

1 गोरखबानी, सबदी-४

2 शिवसंहिता ३।१४-१५

3 गो० ब्रा० प्राणसंकली

4 गोरखबानी, पद २२।२

5 शिवसंहिता ५।२१६-२०

गोरखबानी में संयमित जीवन-निर्वाह के लिए अनेक उपदेश दिये गये हैं। गोरखनाथ का कहना है कि शीघ्रता से अल्पाहार का लेना ही शरीर रक्षा का उपाय है, क्योंकि प्राणवायु उसी शरीर में ठीक तरह से संचरित होती है, जो कम बोलता है और कम खाता है।

फुरतं भोजन अल्प अहारी। नाथ कहै सो काया हमारी।¹

X X X

थोड़ा बोलें थोड़ा खाइ। तिस घट पवनानां रहै समाइ ॥²

भोजन में फुरती से तात्पर्य जल्दबाजी से नहीं है, श्रीगोरखनाथ तो प्रत्येक काम को सोच-समझकर करने का उपदेश देते हैं। उनका कहना है कि बिना सोचे समझे अचानक नहीं बोल पड़ना चाहिए। जिस मार्ग पर चलना है, उस पर सोच-समझकर धीरे-धीरे कदम रखना चाहिए। अहंकार न करते हुए सहज सामान्य स्थिति में रहना चाहिए—

हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरै धरिबा पावं।

गरब न करिबा सहज रहिबा भणंत गोरख रावं ॥³

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओं में शिवोपदिष्ट योगज्ञान का पूर्ण अनुसरण किया गया है। नाथयोग प्रकारान्तर से शिवयोग ही है और इसके मूल प्रचारक महायोगी गोरखनाथ हैं।

२.२ सिद्ध-सिद्धान्त

सिद्ध-सिद्धान्त से हमारा तात्पर्य है—नाथ सिद्धों द्वारा अनुभूत महायोग ज्ञान अथवा श्री गोरखनाथ-संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त। यहाँ गोरखबानी के दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण श्री गोरखनाथ द्वारा विरचित “सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति” के परिप्रेक्ष्य में करना ही हमारा अभीष्ट है। “सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति” के दार्शनिक सिद्धान्त गोरखबानी में भी निरूपित हैं। “सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति” का परम तात्पर्य है पिण्ड में अखिल ब्रह्माण्ड-नाथक की देशकालातीत व्यापकता की अनुभूति। और यही परम तात्पर्य श्री गोरखनाथ की हिन्दी बानियों में भी मिलता है।

“सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति” में छह उद्देश (अध्याय) हैं। प्रथम उपदेश में ब्रह्माण्ड और पिण्ड की उत्पत्ति का वर्णन है। परम सत्ता के स्वरूप का पूर्ण विवेचन किया गया है। शाश्वत परम सत्ता ही स्वरूपभूता शक्ति के द्वारा ब्रह्माण्ड और पिण्डों के रूपा में व्यक्त होती है। वह परम सत्ता ही प्रत्येक पिण्ड में अन्तर्गामी के रूप में निहित रहती है।

ब्रह्माण्ड और पिण्ड की उत्पत्ति तथा परस्पर संबद्धता की श्री गोरखनाथ ने ‘महोन्द्र गोरख बोध’ में प्रश्नोत्तर शैली के माध्यम से अति सरल रूप में समझाया है।

1 गो० वा० सवती २०

2 गो० वा० सवती ३२

3 गो० वा० सवती २३

गोरखनाथ प्रश्न करते हैं कि जब साकार रूप पिण्ड समाप्त हो जाएगा, पवन, जल आदि पंच तत्त्व भी नहीं रहेंगे, चन्द्र-सूर्य भी नहीं रहेंगे, तब हंस की क्या पहचान होगी ?

स्वामी अकार छूटिसी निराकार होइसी, पवन न होसी पाणी
चंद सूर दोऊ न होसी, तब हंस की कौन सहनांणी ।¹

मछीन्द्रनाथ समाधान करते हैं कि जब यह सब कुछ नहीं रहेगा तो साकार निराकार में सहज ही समाहित हो जाएगा और हंस का निवास परम-ज्योति में होगा—

“अवधू सहज हंस का घेल भणीजै, सुनि हंस का वास ।

सहज ही आकार निराकार होइसी,

परम ज्योति हंस का निवास ।²

यह पूछे जाने पर कि शरीर रचना कैसे होती है, क्या-क्या, कहाँ-कहाँ रहता है, मछीन्द्र नाथ उत्तर देते हैं—

अवधू अनोलमूह अत्रिगत बास

अतीत गरभि रहता दस मास

मनमुषि पांणी बवन मुषि अस्तुति पौर,

ओंकार उत्पति शरीर ॥³

मिद-सिद्धान्त-पद्धति के दूसरे उपदेश (अध्याय) में पिण्ड विचार है। पिण्ड की आन्तरिक रचना का बड़ा विस्तृत विवेचन है। शरीर के अन्तर्गत नव चक्रों, सोलह आधारों, तीन लक्षों तथा पाँच आकाशों के सम्बन्ध में विशिष्ट मान्यताओं का निरूपण किया गया है। इन चक्र इत्यादि के ज्ञान पर श्री गोरखनाथ ने विशेष बल दिया है। इनके ज्ञान के लिए गुरु के निर्देश को महत्त्व दिया गया है क्योंकि—

“साच का सबद सोना का रेख निगुरां कौं चाणक सगुरा कौं उपदेश ।

गुर का मुंडया गुंठा में रहै । निगुरा भ्रमै औगुण गहै ॥

सबदी, १४६

सत्य का शब्द सोने की रेखा के समान है, जो सब कसौटियों पर खरा उतरता है, किन्तु इस सत्य शब्द का उपदेश उन्हीं को होता है, जिन्होंने योग्य गुरु को धारण किया है। गुरुहीनों को तो चालबाजो ही मिलती है, क्योंकि उसे बिना गुरु के कुछ आ तो नहीं सकता, केवल सिद्धि का घोखा देकर प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहता है। जिसे गुरु ने मूढ़ कर चेला बनाया वह गुण ग्रहण करता है। जिसने गुरु की शरण नहीं ली वह भ्रम में पड़ जाता है और अवगुण धारण कर लेता है।

पिण्ड-रचना का तथ्य “रोमावली” में कुछ इस प्रकार दिया गया है—

“सत पिता रज माता तम कार गाड़ी पाई,

1 मछीन्द्र गोरख बोध ३६

2 मछीन्द्र गोरख बोध, ४०

3 मछीन्द्र गोरख बोध, १८

लोह मातृ तुचा नाड़ी ये चारि धात माता को, बोलिये
बीरज हाड़ गूद ये तीन धात पिता की बोलिये,
ए सप्त धात का शरीर बोलिये ।

द्वे हाथ द्वे पैर छाती लिलाट घाट अष्टांग योग बोलिये
बंद भेद मुद्रा तीन्युं साधंति ते सिद्धा बोलिये ।¹

पिण्ड के आध्यात्मिक रहस्य का निरूपण रूपक-शैली में 'प्राण संकली रचना' में बहुत ही आकर्षक ढंग से किया गया है ।

“तीस पोलि तेरह प्रबांणी । तीनि गुप्त दस प्रकट जाणीं ।
नौ नाटिका कोठड़ी बहत्तरि । चोर पचास पचीस पंचधरि ।
चोरा लगा तीनि सं साठी । नौ सं पाई नाटिक गांठी ।
नदी अठारह गंडिक बहई । मगरमच्छ जल पैरत रहई ।
अहठ कोटि बनासपती माला । सहज कमल दल पद्मनी नाला ।
भेदि षट चक्र बसै नांगणीं । कोटणीं सत मोहि फणीं ।”²

मानव शरीर के तेरह प्रामाणिक फाटक हैं जिनमें दस प्रकट और तीन गुप्त हैं । प्रकट दस द्वार तो ब्रह्मरंध्र सहित नवरंध्र हैं । तीन गुप्त द्वारों का वर्णन गोपनीय समझकर योगियों ने अपनी वानियों में नहीं किया है । उसमें सौ नाड़ियाँ और बहत्तर कोठें हैं । नाड़ियाँ बहत्तर हजार मानी जाती हैं । उनमें से बहत्तर श्रेष्ठ मानी जाती हैं और उनमें से भी दस प्रधान हैं । ये बहत्तर कोठे बहत्तर नाड़ियाँ ही हैं । यहाँ दस नाड़ियों में से सुषुम्ना को छोड़कर शेष नौ कही हैं । सुषुम्ना में ही ये सब मिलती हैं । नौ नाड़ियों के नाम हैं—इडा, पिंगला, गांधारी, हस्ति, जिह्वा, पूषा, यशास्विनी, अलम्बुषा, कुहु और शखिनी । इस किले में (शरीर में) पचास (षट् चक्रों के ५० दल) पच्चीस प्रकृति और पाँच तत्त्व चोर हैं । जब तक षट् चक्र का बेधन नहीं होता, पच्चीस प्रकृतियाँ वश में नहीं होतीं । पंच तत्त्वों से ऊपर नहीं उठा जाता तब तक अध्यात्म योग में सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती । शरीर की ३६० हड्डियाँ पत्थर हैं जिनसे गढ़ बना है । शरीर में प्रधान नव नाड़ियाँ खाई हैं । कुल ७२ करोड़ नाड़ियाँ हैं । असंख्य नाड़ियों का अन्त रोमकूपों में हुआ है । उनसे उठने वाले रोम वनस्पति-माला हैं । इन्हीं नाड़ियों का एक-दूसरे से ऊपर उठ जाना ऊपर कोठड़ी कहा गया है । इनमें से प्रधान ग्रन्थियाँ कमल-दल के समान हैं । ये ही षट् चक्र हैं । कुण्डलिनी शक्ति इनसे परे बसती है । उसे जागरित करने के लिए षट्-चक्रों का भेदन आवश्यक है । कुण्डलिनी अपने मोह रूपी फनों से वहाँ सत्य की रक्षा करती है । सत्य के पास किसी को पहुँचने नहीं देती ।

“सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति” के तीसरे उपदेश (अध्याय) में श्रीगोरखनाथ ने ‘यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे’ पर बल देते हुए यह समझाया है कि जो कुछ बाहर ब्रह्माण्ड में है,

1 गोरखबानी, रोमावली, पृ. २०३

2 गोरखबानी प्राण, संकली, ५-५

वह सब व्यष्टि-पिण्ड में भी है तथा दोनों में मूलभूत एकता भी है। "इम असोम और नश्वर शरीर की अनादि-अनन्त ब्रह्माण्ड के साथ तद्रूपता की अनुभूति का निर्देशन एक अभूतपूर्व एवं महान् आदर्श है जो आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के समक्ष गोरखनाथ और उनके सम्प्रदाय द्वारा प्रस्तुत किया गया है। योगी को न केवल विश्वात्मा से व्यष्टि आत्मा की एकता की अनुभूति करनी होती है वरन् व्यष्टि-पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता का अनुभव करना होता है। योगी विश्व के साथ एकाकार होकर पूर्ण स्वतन्त्रता और आनन्द का अनुभव करता है। श्री गोरखनाथ का कहना है कि 'पिण्ड मध्ये चराचर' यो जानाति स योगी पिण्ड संवित्थिवति' ¹

'गोरखबानी' में श्री गोरखनाथ ने व्यष्टि-पिण्ड में निरंजन की व्याप्ति मन की व्यापकता से कहनी चाही है। इस शरीर में जीव, शक्ति और शिव-तीनों ही मन हैं। इसको समझने वाला तीनों लोकों को समझने वाला होगा। उसी का नाम 'पिण्ड संवति' होगा—

यहु मन सकती यहु मन सीव । यहु मन पांच तत्त्व का जीव ।

यहु मन ले जँ उनमन रहै । ती तीनि लोक की बातों कहै ।²

सुख-दुःख की अनुभूति ही स्वर्ग-नरक है। इन दोनों की स्थिति इस पिण्ड में ही है। जब योगी अपने पिण्ड में ब्रह्माण्ड की विद्यमानता का अनुभव कर लेता है तो वह जीव-मुक्त हो जाता है। यही जीव-मुक्ति की अवस्था परम कैवल्य अथवा मोक्ष है। सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति में श्री गोरखनाथ ने कहा है—

"यत्सुखं, यद् दुःखं तन्नरकं, यत् कर्म, तद्-बन्धनम्, यन्निर्विकल्पं तन्मुक्तिः स्वरूप दशायां, निद्रादौ स्वात्म जागरः शान्तिर्भवति । एवं सर्वं देहेषु विश्वरूप-परमे-श्वरः परमात्माऽब्रह्म स्वभावेन धेहे धेहे चित्त स्वरूपी तिष्ठति । एवं पिण्ड संवत्ति-र्भवति ।"³

गोरखनाथ ने इसी समष्टि-पिण्ड एवं व्यष्टि-पिण्ड की एकात्मकता का संकेत निम्न सबदी में किया है—

'गगन मंडल मैं औंघा कूवा, तहाँ अमृत का वासा ।

सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै, निगुरा जाइ पियासा ।"⁴

'सिद्ध सिद्धान्त-पद्धति' के चौथे उपदेश (अध्याय) में शरीर का अन्तिम आधार एक परम आध्यात्मिक शक्ति को बताया है। यह शक्ति अपने मूल रूप में शिव से अभिन्न है। शरीर शक्ति की आत्माभिव्यक्ति है। समाधि-लोन सिद्ध योगी शक्ति को उसके मूल रूप में समाहित कर शिवशक्ति के पूर्ण एकत्व का आनन्द प्राप्त करता है। अपनी हिन्दी बानियों में श्री गोरखनाथ ने कहा है—

1 सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति, ३/१

2 गोरखबानी, सबदी ५०

3 सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति, ३/१३

4 गोरखबानी, सबदी २३

“अधरा धरे बिचारिया, धर याही मैं सोई ।

धर अधर चरचा हवा, तब उतरि नाहीं कोई ॥¹

ब्रह्मरंध्र में ब्रह्म तत्त्व का विचार होता है। ब्रह्माण्ड में भी वही है। जब मूलस्थ कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रारस्थ शिव से परिचय हो जाता है, तब साधक के लिए अनुभव ज्ञान से बाहर कुछ नहीं रह जाता।

गृहस्थ के घर में व्यष्टि-पिण्ड की उत्पत्ति होने से मानव-शरीर पृथक् दृष्टिगत हो जाता है किन्तु विरक्त महात्माओं की संगति से जब शिव में सकल स्वरूपा शक्ति समाहित हो जाती है, तब जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं।

“गिरही के घरि जनम हमारा, सगति सुरति दिढ़ाणी—

कहै नाथ जीव ब्रह्मैं एकै, जब सिव धरि सकती समांणी ॥²

‘सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति’ के पांचवे उपदेश (अध्याय) में साधना के चरम आदर्श का निरूपण किया गया है। जब व्यष्टि-पिण्ड का समष्टि-पिण्ड के साथ, पिण्डों का परम शक्ति के साथ और शक्ति का परमात्मा शिव के साथ एकत्व हो जाता है, तो साधक समरसता की स्थिति में हो जाता है। इस स्थिति में योगी अपने में और सब में शिव का दर्शन करता है। सारा संसार ही शिवमय अनुभव होता है।

अकेले पिण्ड में भी ईश्वर की खोज नहीं हो सकती। अकेले ब्रह्माण्ड में भी ईश्वर की खोज नहीं हो सकती। पिण्ड और ब्रह्माण्ड का जब एकत्व हो जाता है तभी ईश्वर की खोज होती है—

‘प्यंडे होई तो मरे न कोई, ब्रह्मांडे देय सब लोई ।

प्यंड ब्रह्मांड निरन्तर बास, भर्णत गोरप मछंद का दास ॥³

योगाभ्यास के द्वारा मन को मूर्च्छित करके जो साधक समरस की स्थिति में हो जाता है, उसके ब्रह्म-रंध्र में ज्ञान का उजाला होता है। उसे सारा ब्रह्माण्ड प्रकाशित दिखाई देता है—

“आसण करि पद्मासन बंधि । पिछलै आसण पवनां संधि ।

मन मुछावै लावै ताली । गगन सिषर मैं होई उजाली ॥⁴

‘सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति’ के छठे उपदेश (अध्याय) में अवधूत योगी के चरित्र और आचरण का वर्णन किया गया है। समरसकरण के आदर्श को सिद्ध करने वाला योगी ही अवधूत कहा जा सकता है। इस स्थिति में योगी इच्छाओं, वासनाओं, चिंताओं वन्धनों से मुक्त हो जाता है।

“मतेन शोकं विभवे न वाञ्छा प्राप्तेन हर्षं करोति योगी ।

1 गोरखबानी, सबदी ६८

2 गोरखबानी, ग्यान तिलक ३३

3 गोरखबानी, सबदी ७०

4 गोरखबानी आत्म-बोध १

आनन्दपूर्णों निजबोधलीनो, न बाधते काल यथेन नित्यम् ।¹

गोरखबानी में श्री गोरखनाथ कहते हैं कि जो धन और यौवन की आकांक्षा नहीं करता, श्री में मन नहीं लगाता, जिसके शरीर में नाद और बिन्दु जोर्ण हो जाते हैं, पार्वती उसकी सेवा करती है, क्योंकि वह योगी शिव-रूप हो जाता है—

“धन जोवन की करे न आम, जित न रापै कामनि पास

नाद बिंदु जाके घटि जरै, ताकी सेवा पार्वती करै ।²

अवधूत के चरित्र और आचरण की ओर संकेत करते हुए श्री गोरखनाथ योगी को उपदेश देते हैं—

“नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू दिढ़करि राषहु चीया ।

काम क्रोध अहंकार निवारौ ती सर्व दिसंतर कीया ॥³

योगी को अहंकार समाप्त कर देना चाहिए, निराकार आत्मा को प्रस्फुटित करना चाहिए। जहाँ गंगा (इड़ा) एवं जमुना (पिंगला) का पानी सोख लिया गया अर्थात् दोनों का प्रभाव मिटाकर सुषुम्ना में मिला लिया गया तथा सहस्रारस्थ चन्द्रमा और मूलाधारस्थ सूर्य दोनों का विरोधी स्वभाव मिटाकर सम्मुख कर दिया गया हो उसका लक्षण अवधूत ही जान सकता है। अतः गोरखनाथ ने इस स्थिति की पहचान अवधूत से पूछी है—

अहंकार तूटिबा निराकार फूटिबा, सोषीला गंग जमन का पानी

चंद सूरज दोऊ सनमुषि राषीला, कहो हो अवधू तहाँ कौ सहिणानी⁴

“मछीन्द्र-गोरख-बोध” में शिष्य की शंकाओं का समाधान करते हुए योगी की साधना का विस्तार से विवेचन किया गया है। इस रचना में सारा ‘सिद्ध-सिद्धान्त’ निहित है। ‘सबदी’ में गुरु का महत्व, योगी का चरित्र तथा पिण्ड-ब्रह्माण्ड की एकरूपता के सिद्धान्तों का वर्णन है। ‘आत्म-बोध’ में योग-साधना के सिद्धान्त निहित हैं। ‘रोमावली’ और ‘प्राण संकली’ में पिण्ड की आन्तरिक रचना का निरूपण है, ‘ग्यान-तिलक’ में योग-सिद्धि के अनेक सिद्धान्त निहित हैं और पदों में उलट बाँसियों के द्वारा गूढ़ सिद्ध-सिद्धान्तों का निरूपण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री गोरखनाथ ने जिन सिद्धान्तों को अपने ‘सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति’ ग्रन्थ में अथवा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में निहित किया है, वे ही सिद्धान्त न्यूनाधिक रूप में उनकी हिन्दी बानियों में भी प्रकारान्तर से मिल जाते हैं।

२.३ हठयोग प्रक्रिया

योग का सामान्य अर्थ है सम्बन्ध। दर्शन में जीव-आत्मा और परमात्मा के

1 सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति ६/६८

2 गोरखबानी, सबदी १६

3 गोरखबानी, सबदी २६

4 गोरखबानी, सबदी ११३

सम्बन्ध को ही योग कहा जाता है। पतंजलि ने अपने योगसूत्र में चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहा है— योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। योग-शिखोपनिषद् में चार प्रकार के योगों का उल्लेख है—

मंत्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग।

नाथ पंथ की साधना-पद्धति का नाम हठयोग है। यद्यपि पतंजलि ने राजयोग को हठयोग से भिन्न बताया है फिर भी बिना हठयोग के राजयोग की प्रक्रिया असंभव है। हठयोग वास्तव में प्राणवायु के निरोध पर आधारित है और राजयोग मन के निरोध पर, किन्तु मन को निरोधने के लिए प्राणवायु का निरोधना आवश्यक है। नाथपंथ में हठयोग को राजयोग से अलग करके नहीं देखा गया। हठयोग मंत्रयोग और लययोग में भी सहायक है। दूसरे हठयोग के ग्रन्थों में अष्टांग योग और षडंग-योग-दोनों का उल्लेख मिलता है—गोरक्ष शतक में षडंगयोग और सिद्ध-सिद्धान्त-संग्रह में अष्टांग योग। अतः हठयोग में अष्टांग योग और षडंगयोग दोनों ही विधियाँ आती हैं।

हठयोग में 'ह' और 'ठ' के योग की बात है। 'ह' और 'ठ' के विभिन्न अर्थ किये जाने के कारण हठयोग की विभिन्न व्याख्याएँ की गयी हैं—

ह + ठ + योग = सूर्य + चन्द्र + योग

ह + ठ + योग = प्राण + अपान + योग

ह + ठ + योग = दक्षिण + वाम + योग

ह + ठ + योग = यमुना + गंगा + योग

ह + ठ + योग = पिंगला + इडा + योग

ह + ठ + योग = रजस् + रेतस् + योग

नाथ-संप्रदाय में उक्त सभी व्याख्याएँ प्रकारान्तर से एक ही अर्थ रखती हैं और वह है—इडा और पिंगला का योग। इडा और पिंगला को ही प्रतीकात्मक शैली में चन्द्र और सूर्य, वाम एवं दक्षिण, अथवा गंगा एवं यमुना कहा गया है। इडा और पिंगला के योग से ही अपान और प्राण का योग होता है। रेतस् और राजस् का योग होता है। इडा और पिंगला-योग ही हठयोग है।

मानव-शरीर में तीन शक्तियाँ ऐसी हैं, जिन्हें साध लेने पर योगी इडा और पिंगला का योग कर सकता है। वे हैं—मन, वायु एवं शुक्र। इन तीन शक्तियों की साधना से इडा और पिंगला का योग होता है, हठयोग होता है। इन तीनों की साधना से कुण्डलिनी शक्ति का उद्बोधन होता है। गोरखबानी में मन, वायु एवं शुक्र को संयत करने में तथा इडा और पिंगला के समन्वय से कुण्डलिनी शक्ति के उद्बोधन के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है।

सबसे पहले हठयोगी के लिए मन को संयमित करना नितान्त आवश्यक है। मानव-शरीर में मन एक अनुपम शक्ति के रूप में निहित है, उसका स्थान हृदय में होता है।

‘अवधू हिरदै बसै मन नाभी बसै पवन ।’¹

और उसका स्वरूप शून्य के समान है ।

अवधू मन का मुनि रूप ।²

मन दो प्रकार से प्रयुक्त होता है अच्छा और बुरा । आशा, इच्छा और वास-नाओं में लिप्त मन मानव को पतन की ओर ले जाता है और गुरु की शरण में गया हुआ सांसारिक वासनाओं से विरक्त मन योगी की साधना को सफल बना देता है ।

कै मन रहे आशा पास, कै मन रहे परम उदास ।

कै मन रहे गुरु के ओलै, कै मन रहे कामनि के पोलै ॥³

मन की शक्ति को समझना साधक के लिए परमावश्यक है, उसकी चंचलता को संयमित करके उन्मनी अवस्था वाला बनना चाहिए । ऐसा करने पर मन साधक की साधना में सहयोग देता है और योगी त्रिलोकदर्शी एवं त्रिलोकज्ञाता हो जाता है:—

यहु मन सकती यह मन सीव, यह मन पांच तत्त्व का जीव ।

यहु मन ले जै उनमन रहै, तो तीन लोक की बातें कहै ॥⁴

मन की विश्वास में लेने से शरीर तर जाता है । मन में ही वह कुम्भ अथवा कलश है, जो अमृत रस से भरा हुआ है । इस अमृत रस को पहचानने वाला साधक मन में ही अलक्ष्य परमात्मा से साक्षात्कार करता है ।

मन माँहैं तेणैं तन तरयाँ मन विसबासे मिलणां ।

मन में कुम्भ कलस रस भरिया तेणैं मनवै अलख लाषाया मेरे ज्ञानी ॥⁵

मन को मारने के लिए, संयत करने के लिए अथवा उन्मन बनाने के लिए गुरु के ज्ञान रूपी बाण की आवश्यकता पड़ती है, देवताओं और राक्षसों को भी वश में करने वाला मन गुरुज्ञान के वश में हो जाता है ।

जिनि मन ग्रसे देव दाण ।

सो मन मारिले गह गुरु ज्ञाण वाण ॥⁶

मन को संयत करने के लिए प्राणवायु का निरोधना आवश्यक है, प्राणवायु और मन का सम्बन्ध है, नाथ योगी गोपीचन्द ने भी कहा है:—

पवन थिरंता मन थिर मन थिरंता ब्यंद ।

ब्यंद थिरंता कंध थ्यर यूं भाषै गोपीचन्द ॥

सार तत्त्व को वही योगी जान सकता है, जो मन और वायु दोनों को उन्मनी अवस्था में कर लेता है ।

1 गोरखबानी, मछीन्द्र-गोरखबोध, पृ० १८६

2 गोरखबानी, मछीन्द्र-गोरख बोध, पृ. १८७

3 गोरखबानी, सबदी, १७२

4 गोरखबानी, सबदी ५०

5 गोरखबानी, पृ० ८६

6 गोरखबानी, सबदी २२६

मन पवना लै उनमनि धरिबा तैं जोगी ततसार ॥¹

मन और पवन के संयत होने से शुक्र ऊर्ध्वगामी बनता है, किन्तु साधना के लिए ही मन और पवन को उन्मन किया जाता है।

मेरुदण्ड के मूल में सूर्य और चन्द्र के बीच योनि में स्वयंभू लिंग हैं, जिसे पश्चिमी लिंग भी कहते हैं। यही पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रजः स्खलन का मार्ग है। यही काम-विषहर और निरंजन का स्थान है, वीर्य स्खलन की दो अवस्थाएँ होती हैं, इन दोनों के पारिभाषिक नाम प्रलयकाल और विष-काल हैं। इन दोनों अवस्थाओं में जो आनन्द होता है, वह घातक है। एक का अधिष्ठाता काम है और दूसरे का विषधर। तीसरी अवस्था नाना भाव विनिर्मुक्त सहजानन्द की अवस्था है, इसमें बिन्दु ऊर्ध्वमुख-होकर ऊपर उठता है, तब यह सहज समाधि प्राप्त होती है, जिसमें मन और प्राण अचंचल हो जाते हैं।²

शुक्र के लिए श्री गोरखनाथ ने बिंद, ब्यंद, जल ब्यंद, रस, अमोरस, महारस, रसकुस, पारा पीर, रतन आदि शब्दों का प्रयोग किया है। शुक्र को स्वाभाविक गति अधोमुखी है। उसे ऊर्ध्वमुखी करना ही योगी का लक्ष्य है। शुक्र भोग की भी वस्तु है और योग की भी। उसके योग रूप को जाननेवाला ब्रह्म-निष्ठ बन जाता है।

ब्यंद ही जोग ब्यंद ही भोग। ब्यंद ही हरे चौसठि रोग ॥

या बिंद का कोई जाणै भेव। सो आपैं करता आपैं देव ॥³

श्री गोरखनाथ जी ने शुक्र-साधना पर अधिक बल इसलिए भी दिया था कि उनके समय में वामाचार साधना के कारण शुक्र का भोग पक्ष प्रबल हो गया था। इसी कारण श्री गोरखनाथ ने योगियों को दो श्रेणियों में विभाजित कर दिया—झरणा योगी तथा जरणा योगी। जरणा योगी ही अमरत्व को प्राप्त होता है।

जरणा जोगी जुगि जुगि जीवे झरणा मरि मरि जाय।⁴

इसलिए गोरखनाथ जी का कहना है कि अधोगामी शुक्र को जिस साधक ने ऊर्ध्वगामी बना लिया है, उसके चरणों को विष्णु भी धो-धोकर पीता है।

उरधैं जाता अरधैं धरै, काम दगध जे जोगी करै।

तजे अल्यंगन काटे माया, ताका बिसनु पषाले पाया ॥⁵

मन, पवन और शुक्र को साध लेने के पश्चात् इड़ा और पिगला का परस्पर संयोग हो जाता है। शरीर में सुषुम्ना, इड़ा और पिगला तीन नाड़ियाँ सर्वांत्रिक

1 गोरखबानी, सबदी ३४

2 नाथ-संप्रदाय-डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. १३६-१४०

3 गोरखबानी, सबदी १४८

4 गोरखबानी, सबदी २५२

5 गोरखबानी, सबदी १७

महत्वपूर्ण हैं। सुषुम्ना नाड़ी को ही ब्रह्म-नाड़ी कहते हैं।¹ यह मेरुदण्ड में स्थित है। साधक कुण्डलिनी शक्ति को इस सुषुम्ना नाड़ी में होकर ही ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचाता है। इड़ा मेरुदण्ड में सुषुम्ना के बायीं ओर होती है जो नाक के बांये छेद में समाप्त होती है। प्राण वायु की संचालिका होने के कारण इसे गंगा भी कहा गया है। पिंगला मेरुदण्ड में सुषुम्ना के दायीं ओर होती है, जो नाक के दांये छेद में समाप्त होती है। इसे काली गंगा अथवा यमुना भी कहा गया है। प्राणवायु को संयत कर इड़ा और पिंगला में प्रवाहित होने से साधक को रोकना होता है और सुषुम्ना के माध्यम से ऊपर को उठाना होता है। इस स्थिति में इड़ा और पिंगला का समन्वय हो जाता है तथा वे दोनों अपनी प्राणवायु को सुषुम्ना के लिए समर्पित कर देती हैं। श्री गोरखनाथ का कहना है—

सूर माहि चंद चंद माहि सूर। चंपि तीनि तेहुड़ा बाजल तूर।

भणन्त गोरखनाथ एक पद पूरा। भाजत भौंदू साधति सूर।²

प्राणवायु को उलटकर (अर्थात् इड़ा और पिंगला से रोककर) सुषुम्ना में प्रवाहित करने से शुक्र का जरण होता है। इड़ा और पिंगला का सुषुम्ना के घर में करने वाला योगी स्वयं अलक्ष्य और विज्ञानी (ब्रह्म) हो जाता है।

उलटिया पवन षट बेधिया, तातें लोहै सोषिया पाणी।

चंद सूर दोऊ निज धरि राख्या, ऐसा अलष विनाणी ॥³

इड़ा और पिंगला को अवरुद्ध कर सुषुम्ना के मार्ग से प्राणवायु को प्रवाहित करने से कुण्डलिनी शक्ति का उद्बोधन होता है। हठयोग के क्षेत्र में कुण्डलिनी शक्ति का महत्त्व सर्वोपरि है। मेरुदण्ड जहाँ सीधे आकर पायु और उपस्थ के मध्य-भाग में लगता है, वहाँ एक स्वयंभू लिंग है, जो एक त्रिकोण चक्र में अवस्थित है, इसे अग्नि-चक्र कहते हैं। इसी त्रिकोण या अग्निचक्र में स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन बज्यों में लपेट कर सर्पिणी की भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है। यह कभी-कभी आठ बज्यों में लपेटकर सोई हुई बतायी गयी है। यह ब्रह्माण्ड में व्याप्त महा-कुण्डलिनी

1 जिस प्रकार उंगली, अंगूठा, हथेली, पहुँचा, कुहनी, कन्धा आदि अंग मिलकर भुजा अथवा बांह का रूप धारण करते हैं उसी प्रकार वज्रा, चित्रिणी और ब्रह्मनाड़ी से मिलकर सुषुम्ना बनी है। इन तीन नाड़ियों का संयोग ही सुषुम्ना है। सुषुम्ना अलग से कोई नाड़ी नहीं है। कुण्डलिनी का मार्ग ब्रह्मनाड़ी में होकर ही है। जिस प्रकार तलवार हथेली और उंगलियों में होते हुए भी 'हाथ में तलवार है।' कहा जायेगा उसी प्रकार सुषुम्ना सशक्त नाड़ी होने से उसे ब्रह्मनाड़ी कह दिया है। कुण्डलिनी सुषुम्ना में होकर ऊपर उठती है ऐसा बहुत से हठयोगी कहते आये हैं। वहाँ सुषुम्ना से अभिप्राय ब्रह्मनाड़ी ही है। वस्तुतः सबसे ऊपर वज्रा, उसके अन्दर चित्रिणी और उसके अन्दर ब्रह्मनाड़ी होती है। तीनों का सम्मिलित नाम ही सुषुम्ना है। (हिन्दी साहित्यकोश, भाग १, पृष्ठ ६६० के आधार पर)

2 गोरखाबानी, सबदी १८५

3 गोरखबानी, सबदी १०५

रूपी शक्ति का ही व्यष्टि में व्यक्त रूप है। यह शक्ति ही है, जो ब्रह्मद्वार का अवरोध करके सोई हुई है। इसे जगाकर शिव में समरस कराना योगी का चरम लक्ष्य है।¹

षट् चक्रों को वेधकर कुण्डलिनी शक्ति जब ब्रह्मरंध्र में पहुँचती है तो साधक अमृत-रस-पान करता है। ब्रह्मरंध्र में ही अमृत-रस कुण्ड है किन्तु उसकी प्राप्ति बिना गुरु के नहीं हो सकती अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति को ब्रह्मरंध्र तक पहुँचाने की हठयोगी-प्रक्रिया बिना मार्ग-दर्शक अथवा बिना गुरु के असंभव है—

गगन मंडल मैं ऊधा कूवा तहाँ अमृत का बासा ।

सगुग होई सु भरि भरि पीवै, निगुरा जाई पियासा ।²

कुण्डलिनी-शक्ति के ऊपर उठते ही योगी कुछ विशेष प्रकार का शब्द सुनने लगता है। यह शब्द योगी का सर्वस्व है। शब्द ही ताला है, वही परम तत्त्व को बन्द किये रहता है। शब्द की धारा ही सूक्ष्म परम-तत्त्व पर स्थूल आवरणों को बांधकर सृष्टि का निर्माण करती है, इसलिए मूल अधिष्ठान तक पहुँचनेके लिए शब्द की धारा पकड़कर वापस आना पड़ता है, इसीलिए यही कुंजी भी है, जिससे ताला खोला जाता है। गुरु के शब्द में भी परमतत्त्व रहता है, जो उसी के मनन-चिन्तन में खुलता है। अन्तर शब्द का जागरण इसी शब्द (गुरु उपदेश) के कारण होता है। जब इस प्रकार स्थूल शब्द के द्वारा सूक्ष्म शब्द से परिचय हो जाता है, तब स्थूल शब्द सूक्ष्म शब्द में समा जाता है।

‘सबदहि ताला सबदहि कूँची, सबदहि सबद जगाया ।

सबदहि सबद सूँ परचा हुआ, सबदहि सबद समायो ॥’³

इसीलिए श्री गोरखनाथ का कहना है कि—

‘सबद बिन्दी अवधू सबद बिंदी सबदे सीझत काया ।

निनाणवे राजा मस्तक मुडाइले प्रजा का अंत न पाया ॥’⁴

यह शब्द साधक को पहले तो समुद्र-गर्जन, मेघ-गर्जन, भेरी झंझर का-सा, फिर मृदंग, शंख घण्टा का-सा और फिर मृदंग का-सा अन्त में किकिणी, वांशी तथा वीणा का-सा सुनाई पड़ता है। ये अन्तिम ध्वनियाँ ही साधक को सहज समाधि में लीन कर देती हैं, तभी उसे ब्रह्मानुभूति, सहजानुभूति, आत्मानुभूति अथवा अमृतानन्द प्राप्त होता है और यही साधक का अन्तिम लक्ष्य है—यही हठयोग का अन्तिम लक्ष्य है।

२.४ योगासन

‘योगासन’ में दो शब्द हैं—योग और आसन। योग शब्द संस्कृत की युज् धातु से बना है। चाहे वह समाधि-बोधक हो, चाहे संयोग बोधक और चाहे संयमन-बोधक। योग

1 नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २०

2 गोरखबानी, सबदी २३

3 गोरखबानी, सबदी २१

4 गोरखबानी, सबदी १२६

की परिभाषा पंतजलि ने अपने योग दर्शन में की है—‘योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः ।’ आगे चलकर योग के चार प्रकार बताये गये—मंत्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग । पंतजलि का योग राजयोग कहलाया । यद्यपि गुरु गोखनाथ का सम्बन्ध राजयोग और हठयोग—दोनों ही से है—फिर भी नाथ-पंथियों को हठयोगियों के नाम से ही अधिक जाना जाता है । हठयोग में शारीरिक शुद्धि एवं कायाकल्प पर अधिक बल दिया गया है, जबकि राजयोग में मोक्ष-प्राप्ति पर । योगदर्शन में योग के आठ अंग कहे गये हैं, इसलिए इसे अष्टांग योग भी कहते हैं । आठ अंग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । प्रथम पाँच बहिरंग साधन हैं और अन्तिम तीन अंतरंग । यम, नियम, व्यावहारिक आचार-विचार कहे जाते हैं । आसन शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओं के माध्यम से आध्यात्मिक जागरण का कार्य करते हैं । प्राणायाम का सम्बन्ध शरीर से कम, मन और अध्यात्म से अधिक है । प्रत्याहार का सम्बन्ध शरीर से कम है, जबकि धारणा, ध्यान एवं समाधि शुद्ध आध्यात्मिक प्रक्रियाएँ हैं । श्री गोरखनाथ ने षडंग योग का प्रतिपादन किया, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और समाधि के रूप में ।

योगासन में दूसरा शब्द है आसन । आसन का शाब्दिक अर्थ है—स्थिति या बैठने की विधि । अष्टांग योग में से तीसरा और षडंगयोग का पहला अंग (चौथा ही प्रकार की शारीरिक मुद्राओं अथवा अभ्यास को) आसन कहा गया है । यद्यपि योगासनों का महत्त्व केवल शरीर की शुद्धता ही समझा जाने लगा है, तथापि उनका उपयोग शरीर, मन और अध्यात्म तीनों ही के लिए महत्त्वपूर्ण है । शरीर एवं आत्मा के बीच की कड़ी है मन । मन को केन्द्र-बिन्दु मानकर आसनों के द्वारा एक ओर तो शारीरिक शुद्धि एवं स्वास्थ्य लाभ किया जा सकता है और दूसरी ओर आध्यात्मिक उपलब्धि । अपनी भाषा (हिन्दी) रचनाओं में श्री गोरखनाथ ने योगासनों का विवेचन ठीक इसी अर्थ में किया है । मन की महत्ता का निरूपण है—

यहु मन सकती यहु मन सीव । यहु मन पंचतत्व का जीव ।

यहु मन ले जै उनमन रहै । तो तीन लोक की बातों कहै ।¹

योग आसन एवं प्राणायाम योगी के लिए सिद्धि के साधन हैं किन्तु जब अवधूत चित्त-वृत्तियों को बहिर्मुखी बनाकर भोग-सुख एवं आलस्य-निद्रा में लीन रहता है, तो वह जीवित भी मरे हुए के समान है और जो अवधूत अपनी योग-शक्ति से प्रलाप-भाषणों के द्वारा सबको चमत्कृत करता है, वह रिजड़े में बन्द तोते की तरह है । सही स्थिति तो उस अवधूत की है, जो चित्तवृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाकर योगासन करता है । उस आसनसिद्ध योगी को सांसारिक प्रलोभनादि उसी प्रकार विचलित नहीं कर सकते, जिस प्रकार लोहे की खूँटी को उखाड़ना कठिन है । प्राणायाम के द्वारा आसन-सिद्ध योगी पवन-वेग के समान स्थान कालातीत हो जाता है—

बैठा अवधू लोह की घूँटी । चलता अवधू पवन की मूँठी ।

सोवता अवधू जीवता मूवा । बोलता अवधू प्यंजरे सूबा ॥¹

योगासन का अर्थ केवल आसन नहीं, योगपूर्ण आसन है और योग का अर्थ है चित्तवृत्तियों का निरोध । वृत्ति-निरोध के अभाव में किये गये आसन, प्राणायाम शरीर में उपद्रव कर सकते हैं । ऐसे ही बहिर्मुखी आसनों का गोरखनाथ ने विरोध किया ।

पंडित ग्यांन मरौ क्या झूझि । औरे लेहु परम पद वृद्धि ।

आसन पवन उपद्रव करै । निसि दिन आरम्भ पचि पचि मरै ॥²

किन्तु जब आसन और उसके साथ-साथ आहार एवं निद्रा के नियमों का दृढ़ता से पालन किया जाता है तो योगी अजर-अमर हो जाता है ।

आषण दिढ़ आहार दिढ़ जे न्यंद्रा दिढ़ होई ।

गोरष कहै सुणी रे पूता मरे न बूढ़ा होई ॥³

दृढ़ता का विधान इसलिए किया गया है कि तिरछे, सोते, सोचे, खड़े सामान्य आसनों से अग्नि, बिन्दु एवं वायु की रक्षा नहीं जा सकती । इन तीनों की रक्षा तभी हो सकती है जब आसन, पवन एवं ध्यान तीनों को निश्चल कर दिया जाय ।

सोवत बाँडा ऊंभा ठाँढा अगनीं ब्यंद न बाई ।

निश्चल आपण पवनां ध्यानं अगनीं ब्यंद न जाई ॥⁴

इसका तात्पर्य यह नहीं कि आसनों की प्रक्रिया दुरुह है । दुरुह तो शरीर, मन एवं प्राणवायु का संतुलन है । इनका संतुलन हो जाने पर तो आसन अति सुगम हो जाते हैं ।

सहज जुगति ले आषण करो ।

तन मन पवनां दिढ़ करि धरो ॥⁵

गोरखबानी में कतिपय प्रमुख आसनों की ओर भी संकेत किया गया है । वज्रासन से शरीर के सभी रोग, व्याधि एवं क्षुधा का नाश हो जाता है ।

बजर कछौटा आषण करै ।

रोग व्याधि षुध्या हरै ॥⁶

पद्मासन प्राणायाम का सहायक है । इससे चित्तवृत्तियों का निरोध होकर मन स्थिर हो जाता है और परिणामस्वरूप योगी ब्रह्मरंध्र में ज्ञान-ज्योति का दर्शन करता है ।

1 गोरखबानी, सबदी ७१

2 गोरखबानी, सबदी १३४

3 गोरखबानी, सबदी १२५

4 गोरखबानी, सबदी १५८

5 गोरखबानी, नरवै बोध ३

6 गोरखबानी, आत्मबोध १६

ॐ आसण करि पदम आसण बँधि । पिछले आसण पवना संधि
मन मुछाबै लावै ताली । गगन सिषर मैं होइ उजाली ॥¹

प्राणायाम का योगासन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इससे काया-कल्प होता है। योगी को सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसकी प्रक्रिया श्री गोरखनाथ ने इस प्रकार दी है—

अवधू नव घाटी रोकिलैं बाट । बाई बणिजैं चौसठि हाट ।

काया पलटे अविचल विध । छाया बिबरजित निपिजैं सिध ॥²

योगासनों का ब्रह्मचर्य से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। बिना वीर्य, बिन्दु की रक्षा के योगासन सफल नहीं हो सकते। इसलिए श्री गोरखनाथ ने बार-बार शुक्र-रक्षा पर बल दिया है। जो योगी काम-वृत्ति का नाश कर देता है, शुक्र को ऊर्ध्वगाभी बनाकर कामिनी के भोगास्वादनपरक सेवन का परित्याग कर देता है, उसका सम्मान विष्णु भी करते हैं।

अरघैं जाता ऊरघैं धरैं । काम दगध जे जोगी करैं ।

तजै अल्यंगन काटे माया । ताका बिसनु पखालैं पाया ॥³

यों तो योग की प्रक्रियाओं में आसन एक अंग मात्र है, किन्तु प्राणायाम आदि योग के सभी अंगों में आसनों का योग अनिवार्य है। और नाथ-पंथ में इन सभी योगांगों का उपयोग कुण्डलिनी-जागरण के द्वारा ब्रह्मरध में योगामृत-पान के लिए किया गया है, अर्थात् योगासनों का लक्ष्य भी शिवशक्ति का समागम ही है। विभिन्न योगासनों के लिए और शिव शक्ति के समागम के लिए एक जानकार गुरु को नितान्त आवश्यकता है। बिना गुरु के योग-क्रियाएँ सफल नहीं हो सकतीं।

गगन मण्डल मैं औंधा कूवा, तहाँ अमृत का बासा ।

सगुरा होई सु भरि भरि पौवै, निगुरा जाई पियासा ॥⁴

अतः गोरखबानी के आधार पर हम कह सकते हैं कि श्री गोरखनाथ योगासनों के महत्त्व को तो निर्विवाद रूप से मानते हैं, किन्तु किसी गुरु की देख-रेख में उनके शुद्ध प्रयोग पर अधिक बल देते हैं। योगासनों का उपयोग शरीर, मन और अध्यात्म के समन्वयात्मक संतुलन के साथ ही किया जाना चाहिए। तीनों शक्तियों का संतुलन न होने से योगासनों का लाभ नहीं होता, कभी-कभी उल्टा अनर्थ भी हो जाता है। इसलिए श्री गोरखनाथ ने केवल शरीर-शुद्धि और स्वास्थ्य के लिए किये गये आसन आदि को निरर्थक ब्राह्म्याचार कहा है। पूर्ण लाभ तभी प्राप्त होगा जब मन की वृत्तियों को अंतर्मुखी बनाकर आत्मतत्त्व को स्वच्छ जल में चन्द्रमा की भाँति देखा जायेगा।

1 गोरखबानी : आत्मबोध १

2 गोरखबानी : सबदी ५०

3 गोरखबानी, सबदी १७

4 गोरखबानी, सबदी २३

बदत गोरपनाथ आत्मां विचारंत ज्यूं जल दीसै चंदा ।¹

और तभी आज के युग में बढ़ता हुआ मानसिक तनाव दूर हो सकेगा । योगासनों से शरीर, मन, हृदय और आत्मा में क्रमशः स्वास्थ्य, स्थिरता, आंतरिक शक्ति और साक्षात् सिद्धि का दर्शन होता है ।

२.५ योगसाधना में आहार-विहार

नाथ-पंथ के विस्तृत प्रचार एवं प्रसार का रहस्य एक ओर तो गोरखनाथ के योग-सिद्धान्तों की उत्कृष्टता-अलौकिकता एवं चमत्कृति है तो दूसरी ओर है उनकी योग-साधना में निरूपित आहार-विहार-सम्बन्धी संयमन । यह ठीक है कि प्रत्येक कवि समसामयिक परिस्थितियों से प्रेरित होता है और गोरखनाथ ने भी तात्कालिक आहार-विहार-सम्बन्धी विकृतियों को लक्ष्य करके ही शिष्य समुदाय के समक्ष नियम-संयम निर्धारित किये थे, फिर भी गोरखनाथ जैसे युग-द्रष्टा की पहुँच देश कालातीत होती है । उनकी शाश्वत संयमित बानियाँ इस भौतिक मचगेचिका में संतृप्त एवं तृप्ति प्राणियों के लिए निरन्तर नैतिक प्रेरणा, बल एवं विश्वास की अजस्र धारा बहाती रही हैं, जिससे जीवन में पूर्णता एवं समरसता का संचार होता रहा है और आज के अति भौतिकतावादी युग में गोरखनाथ के आहार-विहार सम्बन्धी उपदेश और भी आवश्यक एवं उपादेय हो गये हैं ।

गोरखनाथ की हिन्दी रचनाओं में आहार-विहार के उन्हीं शाश्वत संयमों का निरूपण यहाँ द्रष्टव्य है ।

२.५.१. संयमित आहार

ज्ञानेन्द्रियों में जिह्वा इन्द्रिय सर्वप्रबल है, इसलिए सर्वप्रथम—‘जिभ्या इन्द्रो दीजै बन्ध’ (गो० बा० सबदी २२०) नियन्त्रण का उपाय यह है कि उसे सुस्वादु पदार्थों की आसक्ति से हटाकर भगवान के स्मरण में लगा दीजिए । जिसने जिह्वा इन्द्रिय पर विजय पा ली, उसने सब कुछ जीत लिया, काल पर भी विजय प्राप्त कर ली ।

जिभ्या इन्द्रो एकै नाल । जो राखै सो बचै काल ।

पंडित ग्यानी न करसि गरब । जिभ्या जीती जिन जित्या सरब ॥²

जिह्वा के इस संयमन का अर्थ निराहारा नहीं है । सामान्य अन्न-जल तो योग-साधना में भी आवश्यक है । गोरख ने तो जिह्वा इन्द्रिय के क्षणिक तृप्ति हेतु नमकीन, खट्टे एवं मोठे आदि से विमुखता का विधान किया है । नमकीन पदार्थों से शुक्र का क्षरण होता है, खट्टे पदार्थों से मधुमेह इत्यादि तथा मोठे पदार्थों से विभिन्न प्रकार के पेट के रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

अवधू पारै पिरै षाठे झरै मोठे उपजै रोग ।

1 गोरखबानी, सबदी ४२ ।

2 गोरखबानी, सबदी २१६ ।

गोरप कहै सुणौ रे अवधू अणं पाणीं जोगं ॥¹

अतिशय आहार से इन्द्रियाँ प्रबल हो जाती हैं, इन्द्रियों की प्रबलता से ज्ञान नष्ट हो जाता है, अज्ञानी व्यक्ति के चित्त को विलासता घेर लेती है। परिणास्वरूप निन्द्रा की व्याप्ति, काल का आच्छादन और हृदय में निरन्तर उलझनों की उत्पत्ति होती है।

अति अहार यंत्री बल करै नासौ ग्यांन मैथुन चित घरै ।

व्यापै न्यंदा झंपै काल ताके हिरदै सदा जंजाल ॥²

अधोगामी शुक्र को अध्वंगामी बनाना ही शरीर-रक्षा का परम उपाय है किन्तु इस साधना में निन्द्रा एवं मैथुन बाधक बन जाते हैं और निद्रा एवं मैथुन की उत्पत्ति आहार की अनियमितता से ही होती है।

अवधू निद्रा के घरि काल जंजाल अहार के घरि चोरं ।

मैथुन के घरि जुरा गरासं अरघ उरघ लै जोरं ॥³

इसीलिए गोरखनाथ का उपदेश है कि जो आसन-आहार एवं निद्रा के नियमों का दृढ़ता से पालन करता है, वह वृद्धावस्था एवं मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेता है।

आसण दिढ़ अहार दिढ़ जे न्यंदा दिढ़ होई ।

गोरप कहै सुणौ रे पूता मरै ना बूढ़ा होई ॥⁴

२.५.२ मांस मदिरादि का परित्याग

मानव ने बड़े-बड़े चमत्कार कर लिये, मस्तिष्क बढ़ा लिया, हृदय को संकुचित कर लिया। मिला क्या? ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता, अशान्ति.....। यही देखकर गोरखनाथ को कहना पड़ा कि अगर आप जीव-हत्या करते हैं, आपके हृदय में दयाभाव नहीं, तो आपका सब धर्म कर्म असफल है। किन्तु मांस-मदिरादि में रमे हुए प्राणियों को उनसे विमुख करना कोई सरल कार्य नहीं। केवल निषेधात्मक उक्तिधों से गोरख को सफलता मिलने वाली नहीं थी। प्रश्न तो यह है कि मांस मदिरा को त्याग कर क्या ऐसा आनन्द अन्यत्र भी उपलब्ध है? इसी के उत्तर में गोरख को लौकिक आनन्दानुभूतियों से भी अधिक आनन्द की स्थापना अपने योगसिद्धान्तों में करनी पड़ी—जीवधारियों को मत मारो, उन्होंने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा। मारने के लिए तुम्हारे पास मन एवं पंच इन्द्रिय रूरी मृग हैं, जो तुम्हारी बुद्धिरूपी बाड़ी को चरे जा रहे हैं। एक तो मन तुम्हारा शत्रु है दूसरे उसके शरीर, वर्ण, मांस एवं रक्त नहीं है। फिर इन सभी से युक्त जीवधारियों को मारकर दया का शमन करने से क्या लाभ? दया तो सम्पूर्ण योग-साधनाओं का मूल है।

1 गो० बा०, सबदी १४०

2 गो० बा०, सबदी ३६

3 गोरखबानी, सबदी ३५

4 गोरखबानी, सबदी १२५

जीव क्या हतिये रे प्यंड धारी ।
मारिले पंचभू भ्रगला । चरै थारो बुधि बाड़ी ।
जोग का मूल है दया दाण ।
कथंत गोरख मुक्ति रे मानवा मारि लै रे मन द्रोही ।
जाके बप बरण मास नहीं लोही ।¹

और फिर जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर भी तो नहीं । जब ब्रह्मा का एक ही रूप सबमें व्याप्त है तो आपमें, पशु में भी कोई अन्तर नहीं फिर पशु-हत्या का अनौचित्य और असंगति स्पष्ट है—

जीव सीब संगे बासा । बधि न पाइवा हध्रं मासा ।
हंस घात न करिवा गोतं । कथंत गोरख निहारि पोतं ॥²

जिस प्रकार मांस खाने से दया धर्म का नाश होता है, उसी प्रकार मद्यपान करने से आत्मशक्ति क्षीण हो जाती है और भांग खाने से ज्ञान ध्यान नष्ट हो जाता है । इनका प्रयोग करने वाले प्राणियों को नरक में अशान्ति मिलती है ।

अवधू मांस भपतं दया धरम का नास मद पीवत जहाँ प्राण निरास ।
भांगि भपतं ग्यान ध्यान पीवत । जम दरबारी त प्राणी रोवत ॥³
घतूरे के पीने से और भांग के खाने से शरीर न तो संयमित रहता है और न सुरक्षित ही—

घोतरा न पीवो रे अवधू भांगि न पावो रे भाई ।

गोरख कहै सुणी रे अवधू या काया होयगी पराई ।⁴

अफीम एवं भांग इत्यादि मादक वस्तुओं के प्रयोग से बुद्धि नष्ट होती है, पित्त-विकार एवं वात-विकार का प्रकोप बढ़ जाता है, गला शुष्क हो जाता है, भूख संतप्त हो जाती है शरीर चेतनाहीन हो जाता है, निद्रा व्याप्त हो जाती है और ऐसा व्यक्ति बुद्धिहीनता की बातें करता है, अतः गोरख का कथन है—

आफू पावै भांगि भसकावै । तामै अकलि कहाँ ते आवै ।

चढ़तां पित्त उत्तरंता बाई । तातै गोरख भांगि न पाई ॥

×

×

×

सूकं कंठ अरु भूख संतापै । देह बिसर कर निद्रा व्यापै ।

बुधि बिन बकै विकल होइ जाय । तातै गोरख भांगि न पाय ॥⁵

२.५.३ संयमित आचार-विचार

आचार-विचारों की शुद्धि का विचार आते ही मनुष्य को सबसे पहले काम,

- 1 गोरखवानी, सबदी २२८
- 2 गो० बा०, सबदी २२७
- 3 गो० बा०, सबदी १६५
- 4 गो० बा०, सबदी २४१
- 5 गो० बा०, सबदी २०८, २१३

क्रोध, अहंकार, मन-माया, विषय-विकार, तृष्णा और लोभ का त्याग कर देना चाहिए और किसी भी जीव को पकड़ कर नहीं मारना चाहिए ।

पहले आरम्भ छाड़ों काम क्रोध अहंकार । मन माया विषय विकार
हंसा पकड़ि घात जिनि करो तृष्णां तजो लोभ परहरी ॥¹

चित्त को दृढ़ करके रखो, काम, क्रोध, अहंकार को दूर कर दो, फिर समझ लो कि सभी देश-देशान्तरों में भ्रमण हो गया ।

नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू दिढ़ करि रापहु चीया ।

काम क्रोध अहंकार निवारौ तो सबै दिसंतर कीया ॥²

सबसे प्रबल तो यह मन है । इसके अनेक रूप हैं । यही शिव है, यही शक्ति है यही पंचतत्त्वों से निर्मित जीव है । जो इस मन के सहयोग से उन्मनावस्था में लीन हो जाते हैं वे तीनों लोकों के रहस्य को जान लेते हैं :

यहु मन सकती यहु मन सीव । यहु मन पाँच तत्व का जीव ।

यहु मन ले जै उनमन रहै । तो तौनि लोक की बातां कहै ॥³

२.५.४ संयमित जीवन-निर्वाह

हँसने, खेलने और मनोरंजन करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है । वस इतना ध्यान रखना चाहिए कि इन क्रियाओं के माध्यम से काम-क्रोध का आगम न हो जाये । अतः हँसो, खेलो एवं मनोरंजन करो, किन्तु साथ-ही साथ चित्त को दृढ़ता से संयमित रखो ।

हसिबा षेलिबा रहिबा रंग । काम-क्रोध न करिबा संग ।

हसिबा खेलिबा गाइबा गीत । दिढ़ करि राषि आपना चीत ॥⁴

हँसो, खेलो, किन्तु ब्रह्म को मत भूलो । रात हो, चाहे दिन, ब्रह्म-ज्ञान की ही चर्चा होनी चाहिए । हँसते-खेलते जो अपने मन को भंग नहीं करते, वे सदैव ब्रह्म के साथ रहते हैं ।

हँसिबा षेलिबा धरिबा ध्यान । अह निशि कथिबा ब्रह्म गियांन ।

हँसे षेले न करै मन भंग । ते निहचल सदानाथ के संग ॥⁵

शीघ्रता से अल्पाहार कर लेना ही शरीर-रक्षा का उपाय है, क्योंकि प्राणवायु उसी के शरीर में ठीक तरह से संचरित होती है जो कम बोलता है और कम खाता है ।

फुरतै भोजन अल्प अहारी । नाथ कहै सो काया हमारी ॥⁶

1 गो. बा., नरवै बोध २

2 गो. बा., सबदी २९

3 गो. बा., सबदी ५०

4 गो. बा., सबदी ७

5 गो. बा., सबदी ८

6 गो. बा., सबदी २०

थोड़ा बोले और थोड़ा पाई । तिस घट पवनां रहै समाई ।¹
भोजन में फुर्ती से तात्पर्य जल्दबाजी नहीं है । गोरख तो प्रत्येक काम को सोच-समझ कर करने का उपदेश देते हैं । उनका कहना है कि बिना सोचे-समझे अचानक नहीं बोल पड़ना चाहिए और न अचानक ही चल ही पड़ना चाहिए । जिस मार्ग पर चलना है उस पर सोच-समझ कर धीरे-धीरे कदम रखना चाहिए। अहंकार न करते हुए सहज सामान्य स्थिति में रहना चाहिए ।

हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरे धरिबा पायं ।

गरब न करिआ सहजै रहिबा, भणंत गोरष रावं ।²

ज्ञान-प्राप्ति और आत्म-शक्ति के लिए मानव को एक अच्छा वक्ता नहीं, एक अच्छा श्रोता होना चाहिए । देखते रहो, इस जगत् में क्या-क्या हो रहा है । सुनते रहो, इस जगत् में क्या-क्या हो रहा है । स्वयं कुछ कहने की आवश्यकता नहीं ।

गोरष कहै सुणी रे अवधू जग में ऐसे रहणां—

आँषे दैषिबा कानै सुणिबा मुष थै कछ् न कहणां ॥³

२.५.५ संयमित व्यवहार

वाद-विवाद करने वाले बहुत होते हैं, किन्तु एक योगी को वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए, उसे तो अपने को गुरु वचनों में इस प्रकार तल्लीन कर लेना चाहिए, जिस प्रकार सभी तीर्थमयी नदियों का जल समुद्र में समाहित हो जाता है ।

कोई वादी कोई विवादी जोगी को वाद न करना ।

अठसठि तीरथ संमदि समावै यूं जोगी को गुरमुषि जरनां ॥⁴

आत्मा को सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि खंडन—मंडन की प्रवृत्ति में न पड़ा जाये, यह संसार काँटे की बाड़ी के समान है, यहाँ पर प्रत्येक पग देखभाल कर रखना चाहिए ।

नाथ कहै तुम आपा रापौ, हठ करि वाद न करणां ।

यहु जुग है काँटे की बाड़ी, देषि देषि पग धरणां ॥⁵

सामाजिक परिवेश में मूर्खों का समागम नहीं करना चाहिए । धार्मिक परिवेश में विद्वानों से वाद-विवाद नहीं करना चाहिए । राजनीतिक परिवेश में राजा से युद्ध नहीं करना चाहिए । इन सभी बातों के करने से योग-साधना में बाधा पड़ती है । असावधानी से नाद नष्ट होता है ।

मूरिष सभा न वैसिबा अवधू पंडित सौ न करिबा वादं ।

1 गो० बा०, सबदी ३२

2 गो० बा०, सबदी २७

3 गो० बा०, सबदी ७२

4 गो० बा०, सबदी १३

5 गो० बा०, सबदी ७३

राजा संग्रामें झुझ न करवा हेनै न सोइवा न नादं ॥^१

२.५.६. सत्संग

परिस्थितियाँ और वातावरण मनुष्य को कुछ से कुछ बना देते हैं, यदि वह किसी पथभ्रष्ट के सम्पर्क में आ गया तो उसका पतन अवश्यभावी है। यही कारण है कि गोरखनाथ ने सतगुरु को सर्वोपरि महत्त्व दिया है।

प्रथमें प्रणऊं गुरु के पाया। जिन मोहि आत्म ब्रह्म लपाया।

सतगुरु सबद कह्यां तैं बुझ्या तूहें लोक दीपक मनि सुझ्या ॥^२

जब पूर्ण गुरु मिल जाये, तभी योगाभ्यास के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए ऐसा न हो कि कुल से संबंध-विच्छेद हो जाये और तपस्या भी पूर्ण न हो (घोबी का कृत्ता, घर का रहे न घाट का) अपूर्ण गुरु के सम्पर्क में आकर न तो मृत्युञ्जय हो सकते हो और न उलझनों से ही मुक्त हो सकते हो। ऐसी अधूरी तपस्या से कोई साधक शूर नहीं हो सकता।

काल न मिट्या जंजाल न छुट्या, तप करि हुवा न सूर।

कुल का नास करे मति कोई, जै गुरु मिले न पूरा ॥^३

सत्संग के लिए जाति-पाँति के भेद की अपेक्षा नहीं। जातिगत एवं धर्मगत विभेदों को भूलकर सर्व-समत मार्ग पर मिल जुलकर चलना ही सच्चे धर्म का अनुसरण करना है।

२.५.७. मध्यम मार्ग का अनुसरण

गोरखनाथ अतिवादी नहीं, मध्यमार्गी थे। संयम मध्यम मार्ग का ही साधन है। खाने-पीने में अति कर देने से मृत्यु तक हो जाती है। कुछ भी न खाने से भी मृत्यु निश्चित है। इस भव सागर को तो संयम द्वारा ही पार किया जा सकता है। मध्यम मार्ग का अनुसरण करके मन को अटल कर लेना चाहिए कि प्राणवायु स्थिर हो सके।

पांये भी मरिये अणपांये भी मरिये। गोरख कहै पूता संजमि ही तरिये।

मधि निरंतर कीजै बास। निहचल मनुवा थिर होइ सास ॥^४

जहाँ तक मन के संयमन का प्रश्न है, उसे न तो कुचल कर मारना ही चाहिए और न उसे स्वच्छन्द ही छोड़ देना चाहिए। मन के संयमन से ब्रह्माग्नि का रहस्य जाना जा सकता है।

दाबि न मारिबा पाली न रापिबा जानिबाँ अगनि का भेवं।

बूढ़ी ही थै गुरबानी होइगी, सति सति भाषंत श्री गोरप देवं ॥^५

1 गो० बा०, सवदी १२१

2 गो० बा०, प्राणसंकली १

3 गो० बा०, पद २२/२

4 गो० बा० सवदी ३१

5 गो० बा०, सवदी १७३

निद्रा में अत्यन्त आसक्त रहने से स्वप्न के द्वारा वीर्य-पात होता है। अधिक भ्रमण करने से आत्मिक शक्ति कम होती है। ठाली बँठे खट-पट सूझती है। खड़े रहने से अनेक उपाधियाँ उत्पन्न होती हैं। अतः गोरखनाथ ने सहज समाधि (मध्यम मार्ग) का विधान किया।

निद्रा सुषणं बिंदू कू हरै । पंथ चलंता आतमां भरै ।

बँठा पट पट ऊभाँ उपाधि । गोरख कहे पूता सहज समाधि ॥¹

गोरखनाथ का आहार-विहार संबंधी विधि-विधान परतर पांडा अवश्य है किन्तु है सत्य और उपादेय। तपस्या की चरम स्थिति गृहस्थ एवं बस्तियों को त्यागकर घोर काननों में विचरण करने एवं समाधि लगाने में नहीं है। सच्चा योगी तो वही है, जो सांसारिक मोहमाया की विकृतियों के मध्य रहते हुए भी अपने मन को विकृत नहीं होने देता।

नौ लष पातरि आगं नाचे, पीछे सहज अषाड़ा ।

ऐसे मन लै जोगी बँले, तब अंतरि बसै भंडारा ॥²

गोरख की इन पंक्तियों में गृहस्थ एवं समाज के प्रति आस्था एवं आदर का भाव लक्षित होता है। आहार-विहार के उपर्युक्त संथमों के पश्चात् जब ज्ञान का संचार हो जाता है तो साधक को संसार में अपना विरोधी ही दिखाई नहीं देता। जब कोई विरोधी ही नहीं, तो युद्ध किससे? सब आत्मरूप ही हैं। वही मछली है, वही जाल है, वही धीवर है, वही काल है।

कासौ झूझी अवधू राइ, विषम न दीसे कोई ।

जासौ अब झूझौ रे आतमा राम सोई ॥

आपण ही मछ कछ आपण ही जाल ।

आपण ही धीवर आपण ही काल ॥³

वैमनस्य एवं अलगाव से पूर्ण आज के इस युग में गोरखनाथ द्वारा उपदिष्ट आहार-विहार (खान-पान) के संथमों के साथ-साथ प्राणीमात्र के प्रति दया एवं प्रेम के व्यवहार की नितान्त आवश्यकता है। यही आहार-विहार की सार्थकता है।

२.६. नारी भावना

गोरखनाथ ने अपने सिद्धान्तों में नारी के प्रति कठोर दृष्टिकोण अपनाया है। नारी के योनिरूप का उन्होंने घोर विरोध किया है। उनके अनुसार योग और स्त्री का कोई मेल नहीं है। योगी के लिए शुक्र की साधना नितान्त आवश्यक है—‘मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।’ बिन्दुसाधन अथवा ब्रह्मचर्य पालन की महत्ता

1 गो० बा०, सबदी २१२

2 गो० बा०, ग्यानतिलक ३६

3 गो० बा०, पद ४१/१

इसलिए और अधिक है, क्योंकि बिन्दु का सम्बन्ध वायु और मन से होता है। योग-साधना में प्राण वायु-साधना, प्राणवायु-साधना में मन की साधना और मन की साधना में शुक्र की साधना—ये तीनों अन्योन्याश्रित हैं। मन का निरालम्ब रहना दुस्साध्य है। वह या तो आशा के फन्दे में फँसा रहेगा या फिर विरक्त अवस्था में रहेगा, या तो स्त्री की गोद में रहेगा या फिर गुरु की शरण में रहेगा।

कै मन रहै आसा पास। कै मन रहै परम उदास।

कै मन रहै गुरु के ओले। कै मन रहे कार्मनि के पीले ॥¹

किन्तु लोग हैं कि विषय के लोभ में तत्त्व को ही भूल गये हैं और घर में बाधिन रूपी स्त्री को पाले हुए हैं। वह दिन में सोती हैं और रात में शरीर का शोषण करती हैं। वह ऐसी राक्षसी है, जो बिना दाँतों के ही संसार को खाती रहती है। लोग मिथ्या संसर्गानन्द में ही शरीर को क्षीण करते रहते हैं—

भग राकसि लो भग राकसि लो, बिणदन्ता जग पाया लो।

ग्यानी हुता सु ग्यानमुषं रहिया, जीव लोक आपे आप गंवाया लो॥

दिन दिन बाधिनी सोया लागी, राति सरीरं पोषं।

विषं लुबधौ तत न बूझै, घरि ले बाधिनी पोषं ॥

×

×

×

चामें चाम घसंता लोई, दिन दिन छोड़ै काया।

आपा परचे गुरुमुषि न चीन्है, फाडि फाडि बाधिनी पाया ॥²

रात के चारों पहर स्त्री के आलिंगन एवं निद्रा में बिताकर संसार विषयों में बहा जा रहा है, इसलिए गोरखनाथ भुजा उठा-उठाकर पुकार रहे हैं कि भाइयो! अपने मूल तत्त्व (शुक्र) को इस प्रकार नष्ट न करो।

चारि पहर आलिंगन निद्रा, संसार जाइ विषया बाहो।

ऊभी बाँह गोरख नाथ पुकारै, मूल न हारो म्हार भाई ॥³

स्त्री-पुरुष के संसर्ग का आकर्षण ही कुछ ऐसा है कि स्त्री के बिना पुरुष नहीं रहता और पुरुष के बिना स्त्री नहीं रहती, किन्तु संसार-सागर को तरने के लिए ब्रह्म-साक्षात्कार करने के लिए यह माध्यम छद्मपूर्ण है और इसीलिए दोनों नष्ट होते जा रहे हैं।

रांडी तज्या न षसिया जीवै, पुरुष तज्या न नारी।

कहै नाथ ये दोन्यूं विनसे धोपा की असवारी ॥⁴

स्त्री के साथ सोना मृत्यु को बुलावा देना है। उसके साथ तो पानी भी नहीं पीना चाहिए—

1 गो. वा. सबदी १७२

2 गो. वा., पद ४८

3 गो. वा., पद १

4 गो. वा., ग्यानतिलक १२

बामा अंगे सोइबा जम को भोगिवा ।

संगे ना पीवणां पांणीं ॥¹

स्त्री चाहे दीक्षित हो या अदीक्षित, वह योगी के पास बँठी हुई भी शोभा नहीं देती—

पासि बँठी सौभे नहीं साथि रमाई मुंड़ि ।

गोरप कहै असतरी कहा सलह कह भुंड़ि ॥²

जिस प्रकार अग्नि के ऊपर पारे की रक्षा नहीं की जा सकती, उसी प्रकार योनि-मुख में शुक्र की रक्षा नहीं की जा सकती है । अगर ऐसा कोई करने का दावा करता है तो गोरखनाथ उसे गुरु बनाने के लिए तैयार हैं—

भग मुषि ब्यंद अगनिमुषि पारा, जो पावै सो गुरु हमारा ।³

गोरख जानते हैं कि शुक्र की सफलता कामुकता अथवा स्त्री-संसर्ग में नहीं है । उसकी सफलता तो ऊर्ध्वगामी बनाने में है, जो लोग स्त्री के योनि-रूप में आसक्त हैं, वे इस वाधिन के द्वारा बिना दाँतों के खाये जा रहे हैं—माया से विकृत किये जा रहे हैं और फलतः अन्तर्गामी ब्रह्म का रहस्य प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं—

बिंद और भग बाधिणी औरै, बिन दन्त्या जग पाया ।

प्राण पुरुष का मर्म न पाया, छोड़ि बिगूते माया ॥⁴

दूसरी ओर जिन्होंने अधःगामी शुक्र को ऊर्ध्वगामी बनाकर काम को दग्ध कर दिया है, स्त्री-आलिंगन का परित्याग कर माया के बन्धन को काट दिया है, उनके पैर तो विष्णु भी पखारने के लिए तत्पर हो जाते हैं ।

अरघै जाता ऊरघै घरै, काम दग्ध जे जोगी करै ।

तजे अत्यंगन काटे माया, ताका बिसनु पपालै पाया ॥⁵

आज के बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक युग में, अति भौतिकवादी संसार में और नारी के समान अधिकारों की मांग करने वाले समाज में ये प्रश्न उठने स्वाभाविक हैं कि आखिर गोरख ने अपने पंथ को इतना खरतर क्यों बनाया, नारी के प्रति इतना कठोर और निर्मम दृष्टिकोण क्यों अपनाया, योग-साधना में बाधक बताकर नारी का इतना अपमान क्यों किया ? इन सब प्रश्नों के लिए गोरखनाथ जी की समसामयिक परिस्थितियाँ संक्षेप में जान लेना नितान्त आवश्यक है ।

गोरखनाथ का जिस समय आविर्भाव हुआ था, वह काल भारतीय धर्म-साधना में बड़े उथल-पुथल का है । एक ओर मुसलमान भारत में प्रवेश कर रहे थे और दूसरी ओर बौद्ध-साधना क्रमशः तंत्र-मंत्र और टोटे टोटे की ओर अग्रसर हो रही थी ।

1 गो. वा., पद १

2 गो. वा., सबदी २५२

3 गो. वा., सबदी १४२

4 गो. वा., स्थान त्रितक १०

5 गो. वा., सबदी १७

दसवीं शताब्दी में यद्यपि ब्राह्मण धर्म सम्पूर्ण रूप से अपना प्राधान्य स्थापित कर चुका था तथापि बौद्धों, शाक्तों और शैवों का एक बड़ा भारी समुदाय ऐसा था जो ब्राह्मण और वेद को नहीं मानता था ।¹

बौद्ध मत में हीनयान, महायान, मंत्रयान, वज्रयान और कालचक्रयान जैसे भेद हो गये थे और गोरखनाथ के समय तक ये सभी शाक्तों में अन्तर्भुक्त हो चुके थे । बौद्ध साधना में योनि-पूजा और योनि-भोग चरम सीमा को पहुँच गया था । महा-निर्वाण-तंत्र में शिव ने पार्वती से कहा है—हे आद्या ! शक्ति पूजा की पाँच आवश्यकताएँ ये हैं—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा² तथा मैथुन । यह ही पाँच तत्त्व हैं । इसके बिना शक्ति-पूजा केवल अभिचार है । वज्रयान में भी इन पाँच तत्त्वों का उल्लेख है । वहाँ यह नितान्त आवश्यक है । बोधिसत्व तो इनके बिना नितान्त अपूर्ण हैं । चक्र-पूजा में इन सबकी आवश्यकता है ।³

शैव कापालिकों में मद्य और स्त्री का प्रयोग निर्बाध रूप से होता था । यही पद्धति बौद्ध-सिद्धों ने भी अपनायी । शक्ति-तत्त्व केवल योनि तत्त्व बनकर रह गया । (गुह्य समाज तंत्र ६/८७) तदनुसार कोई योगी साधक जहाँ अपनी विविध मुद्राओं बन्धों आदि पर आश्रित रहना अपना कर्तव्य समझा करता था, वहाँ तांत्रिक साधकों का विश्वास था कि यदि प्रज्ञा पारमिता को ललनारूप देकर उसका सेवन योगिनी महामुद्रा की भाँति किया जाय तथा इसके लिए डोम या चाण्डाल जैसे जुगुप्सित कुल की कन्या के साथ रमा जाये तो सिद्धि और भी शीघ्र मिल सकती है ।⁴

उस समय बिना योनि-पूजा के सारे कृत्य निरर्थक थे—योनि पूजा बिना पूजा कृतमप्यवृत्तम् भवेत् (देवी यामल) इसीलिए स्वतंत्र तंत्र में निर्द्वन्द्व होकर कहा गया है —

- 1 नाथ-सिद्धों की बानियाँ-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, भूमिका पृष्ठ ११
- 2 यों तो मुद्रा के अर्थ विभिन्न साधना-पद्धतियों में अलग-अलग हैं किन्तु बौद्ध-साधक के योनि भोग अर्थात् तांत्रिक गुह्य साधना में मुद्रा का अर्थ वह रमणी है, जो तांत्रिक अनुष्ठानों में सह-साधिका रहती है । मुद्रा का अर्थ है मोद देने वाली (मुद्र + रा) 'श्री सम्पुट' में भगवान् बुद्ध को चार चक्रों में अपनी चार कायाओं से क्रमशः लोचना, मामकी, पाण्डरा और तारा से संभोग करते हुए बताया गया है । (दे० 'महामुद्रा') बौद्धतन्त्र-ग्रंथों में स्पष्टतः मुद्राओं की (अर्थात् रमणियों की) आयु, जाति, रूप आदि का सांगोपांग विवेचन मिलता है । 'सैकोद्देश टीका' में दीक्षित करते समय मुद्रा की आयु बीस वर्ष तक की बतायी गयी है । 'प्रज्ञोपाय-विनिश्चय सिद्धि' में कहा गया है कि मुद्रा (रमणी) के आलिंगन से साधक में वज्रावेश जागता है किन्तु ये चुम्बन, आलिंगन, समागमादि क्षुब्ध, आसक्त और विषयी मन से नहीं करने चाहिए, अन्यथा ये बन्धन के कारण बन जाते हैं । (हिन्दी साहित्य कोश भाग १, पृ. ६५७ के आधार पर)
- 3 गोरखनाथ और उनका युग—डा० रांगेय राघव, पृष्ठ १०७
- 4 गोरख विश्लेषक—(योग वाणी) (नाथ सिद्ध परम्परा—डा० परशुराम चतुर्वेदी पृ० ५०)

‘ततो नगनां स्त्रियं नग्नो रमन् ।’

‘कुलामृतदीपिका’ के अनुसार—

आदौ बाला समुचायं त्रिपुराये समुच्चरेत् ।

आलिंगने हरेद्रोगात् धनधान्यादि चुम्बने ।

नखदन्तक्षताद्यैश्च तदा मोक्षः प्रजायते ।

सायुज्यसंगमेन स्यात् सत्यमेव न संशय ।

यह योनि-साधना दूसरी शताब्दी में पनपी और छठी शताब्दी में विकसित होकर गोरखनाथ के समय तक अखण्ड रूप से प्रवाहित होती रही। किसी में शक्ति नहीं थी कि कोई इस धारा को रोक सकता। सब इसी में बहने लगे ! उस समय एक मात्र गोरख-चरित्र ही ऐसा था जो इस योनि-साधना के विरुद्ध लोहा लेने को तत्पर हुआ। बौद्धों से टक्कर लेने के लिए शंकर ने ब्रह्म की महत्ता प्रतिपादित की अलख-निरंजन के साक्षात्कार-साधन की दिशा में।

अगर इस युग के गिरते हुए तामसिक जीवन को उठाने के लिए, पारमार्थिक उद्देश्य से विमुख धार्मिक चेतना को सजग करने के लिए, जन-साधारण में शुद्ध जीवन स्रावक वृत्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य की भावना भरने के लिए, सामन्तों के घृणित योनि-वाद को चकनाचूर करने के लिए गोरख ने निर्मम हथोड़े की चोट की, स्त्रियों के प्रति कठोर दृष्टिकोण अपनाया तो कोई आश्चर्य नहीं। आश्चर्य तो यह है कि उस भीषण युग के द्वारा फँसाये जाने पर भी गोरख स्वयं उसमें नहीं फँसे। बंगाली कवि फैजुल्लाह के ‘गोरक्ष-विजय’ में कदली देश की जोगिन गोरख को भुलावा देना चाहती है। ‘तुम जोगी हो, जोगी के घर जाओगे, इसमें भला सोचना-विचारना क्या है ? हमारा तुम्हारा गोत्र एक है। तुम बलिष्ठ योगी हो, मैं जवान योगिन हूँ, फिर क्यों न अपना व्यवहार शुरू कर दें, क्यों हम किसी की परवाह करें—मैं चिकना सूत कात दूँगी, तुम उसकी महीन घोती बुनोगे और हाट में बेचने ले जाओगे और इस प्रकार दिन-दिन सम्पत्ति बढ़ती जायेगी जो तुम्हारी झोली और कंधा में अँटाये नहीं अँटेगी।¹

साधना-पद्धति, राजतंत्र एवं समाज में सभी जगह भोगवाद का बाहुल्य था। तत्कालीन भ्रष्ट ढाँचे का न्युनाधिक चित्रण गोरख की बानियों में भी मिलता है। मदिरापान करना और स्त्रियों के मोह-जाल में फँसे रहना उस समय के सिद्धों के लिए आम बात थी, किन्तु गोरख ने उन मायावी नारियों में भी माता का रूप देखा और स्वयं एक बालक के रूप में संमुख हुए। वे कहते हैं—

‘थान दे गोरिए गोरषबाला माई बिन प्याले प्याला।²

वयस्क स्त्रियों के प्रति उनके हृदय में अत्यंत श्रद्धा थी। वे उनका माता के समान आदर करते थे। गोरक्षनाथ ने स्त्री को केवल माता के ही रूप में देखा है, जो स्नेह से बालक को पालती है, जिसमें वासना नहीं रहती। अत्यंत खेद से उन्होंने एक

1 नाथ सम्प्रदाय से उद्धृत, पृष्ठ २४

2 गो० बा०, पद ४६

स्थान पर कहा है—‘जिन जननी संसार दियाया ताको ले सूते पोले’¹ यही कारण है कि भक्तहरि को योगदीक्षा देने से पहले गोरख ने बारह वर्ष उनकी परीक्षा ली थी। उन्हें अपनी रानियों से माता कहकर भीख मांगनी पड़ी थी।

गोरख गृहस्थ में युवती नारी को पतिव्रता के रूप में देखना चाहते थे। उसके कामी रूप से उन्हें भारी घृणा थी, लड़कियों को शील-युक्त देखना चाहते थे, किन्तु अपने आदर्श के अनुकूल जब समाज में यह सब उन्हें नहीं दीखता था तो वे भावावेश में भ्रष्ट नर-नारियों के प्रति तीखे प्रहार करते थे।

दासी नै नारी अरु घर द्वारी तुम्हें वेस्या करम न कीज्यो रे।

विधवा नारी नौ संग करेस्यो, तो रोमि रोमि नरक षडोस्यो रे ॥

एक बूंद के कारणि आप सवारथि, तुम्हें बाल-हत्या फल लेस्यो रे।

नर-नारी दोन्युं नरक षडोस्यो, घाणी घाली पडेस्यो रे ॥²

हे दामियो नारियो, और गृहणियो ! तुम्हें वेश्या-कर्म में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। अगर तुम विधवा नारी के साथ संसर्ग करोगे तो रोम-रोम करके नरक में पड़ोगे। शुक के झूठे स्वार्थमय आनन्द में पड़कर तुम्हें बाल-हत्या का फल मिलेगा। नर-नारी दोनों नरक में पड़ोगे और एक घान में डाले जाओगे।

दासियों, स्त्रियों और गृहणियों के द्वारा वेश्याकर्म किया जाना, विधवाओं को योगिनियाँ बना, उनके साथ अबाध संसर्ग करना, खाव कर बाल-हत्या करना—सब कुछ कितना घृणित था उस समय, फिर भी साधारण समाज और गृहस्थ इतना दुषित नहीं था, जितना योगी-समाज। गोरख ने यद्यपि अपने उपदेशों में राजाओं और जन-साधारण को भी सचेत किया है, किन्तु नारी के प्रति जो अधिक कटुता है, वह योगी-समाज को लेकर है। उन्होंने धर्म के दावेदारों और ठेकेदारों को करारी फटकार सुनायी है।

गोरख जानते थे कि केवल फटकार सुनाने से ही समस्या हल नहीं होगी। भटके हुए भ्रष्ट योगियों को योनि-साधना से हटाने के लिए उन्होंने मनोविज्ञान का सहारा लिया है और कहा कि एक भोग और भी है, जो, योनि-भोग से कहीं अधिक आनन्ददायक है। मैंने तो अपने योगी को उसी भोग में लीन कर रखा है—

माँहरा तो बैरागी जोगी, अहनिंसि भोगी जोगिणी संग न छाड़ै।

मानसरोवर मनसा झूलती आवैं, गगन-मंडल मठ माँडै रे ॥³

हमारा तो बैरागी जोगी (मन) रात-दिन भोग में निरत रहता है। वह (मन) जोगी कभी भी जोगिन का साथ नहीं छोड़ता। सानसरोवर (मन) में मनसा (इच्छा) झूलती रहती है और गगन-मंडल (ब्रह्म रंघ) में मढ़ी बनाकर रहता है। ‘एक दिन शिव ने काम से युद्ध होने पर उसे भस्म तो कर दिया था, किन्तु काम अनंग फिर भी

1 गोरखनाथ और उनका युग—डा. रामेश राघव, पृष्ठ ५६

2 गो० बा०, पद ५५

3 गोरखबानी, पद १६

रह गया था। युगान्तर में रति ने शक्ति बनकर शिव को शव बना दिया था। अब फिर एक भयानक क्रांति हुई थी। महायोगी शिव अपने भीतर ही स्त्री को आत्मसात् करके पद्मासन लगाकर बैठ गये थे। योनि के रूप में स्त्री शरीर के भीतर चली गयी और सगार के लिए वह माता और वहन के रूप में छूट गयी, सामाजिक नियमों के अनुकूल हो गयी। यह गोरखनाथ की महान् देन थी। हीनत्व अनुभव करने वाले पुरुष में अनन्त शक्ति का सन्निवेश हो गया था। यह व्यक्ति का पूर्ण, व्यक्तिगत, एकांगी स्वरूप, या किन्तु बाहर ब्रह्मचर्य था।¹

पुरुष और नारी के बाह्य शारीरिक चिन्ह भ्रामक हैं। बाह्य भेद मिथ्या हैं अन्तः भाव को परखना चाहिए। केवल घर त्याग देने से ही कोई योगी नहीं बनता। केवल गृहस्थी होने से ही कोई भोगी नहीं बनता। योगी और भोगी तो अपने-अपने कर्मों के आधार पर बनते हैं। योगी बनने के लिए अन्तः मुखी साधना करनी होगी—

जो भग देख भामिनीं मानैं । लिंग देख जो पुरुष प्रमानैं ।

जो बिन चिन्ह नपुंसक जोवा । कह गोरख तीनों घर खोवा ॥

जो घर त्याग कहावैं जोगी । घर वासी को कहैं जू भोगी ।

अन्तर भाव न परवैं जोई । गोरख बोले मूरख, सोई ॥²

‘योगि संप्रदायाविष्कृति में ऐसी कई कहानियाँ हैं जिनसे सिद्ध होता है कि गोरखनाथ और मत्स्येन्द्र दोनों ने मिलकर पहाड़ी प्रदेशों की शासन व्यवस्था में भी सुधार लाना चाहा था। तांत्रिकों आदि की भाँति राजाओं में भी विलासिता की भावना आ गयी थी, अतः राजाओं के लिए भी गोरखनाथ को उपदेश देना पड़ा।

सांभली राजा बोल्या रे अवधू ।

सुणौ अनोपम वाणी जी ।

निरगुण नारी सुँ नेह करंता ।

झबकँ रेंगि बिहाणी जी ।

जब भोग-विलास में झपकियाँ लेते हुए रातें बितायी जायेंगी, तो दिन में जनता का क्या हित किया जा सकता है।

बहुत सम्भव है कि मत्स्येन्द्रनाथ अष्ट राज्यव्यवस्था के सुधार-हेतु ही राज-घरानों के सम्पर्क में आये हों और राजाओं के शरीर में प्रवेश किया हो तथा बाद में रानियों के साथ विहार करने के कारण वे भी अपने मार्ग से गिर गये हों। मत्स्येन्द्र कभी योग मार्ग के प्रवर्तक थे फिर संयोगवश एक ऐसे आचार में सम्मिलित हो गये जिससे स्त्रियों के साथ अबाध ससर्ग मुख्य बात थी संभवतः यह वामाचार साधना थी।³

1 गोरखनाथ और उनका युग, डा० रागेय राघव, पृष्ठ १५३

2 योगवाणी ‘गोरख’ विशेषांक में श्री अगरबन्द नाहाट द्वारा उद्धृत गोरख के वचन से- पृष्ठ ८७

3 गोरखबानी, पद ५७

4 नाथ सिद्धों की वानियाँ-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, भूमिका पृष्ठ ६

महामति विद्यारण्य के 'शंकर-दिग्विजय', फैजुल्ला-कृत 'गोरख-विजय', संत योगी ज्ञानेश्वर-कृत 'योगिसंप्रदायाविष्कृति', जोधपुर के महाराजा मानसिंह जी द्वारा संग्रहीत, नाथचरित्र' आदि ग्रन्थों से यह सिद्ध होता है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने परकाया प्रवेश कर राजसुखोपभोग तथा रानियों के साथ विहार किया तथा उनके शिष्य गोरखनाथ ने उनके शरीर की रक्षा कर उनका उद्धार किया। गोरख की बानियों से भी ऐसा सिद्ध होता है—

कांन्होपाव भेटिला गुरु, विद्यानगर सँ ।

ताथै मैं पाइला गुरु, तुम्हारा उपदेसँ ।

ऐते कछु कथीला गुरु, सबै भँला भोले ।

सर्व रस पोपिला गुरु, बांधणी चै पोले ।

नाचा गोरखनाथ धूँधरी चै घातें ।

सबै कमाई षोई गुरु, बांधणी चै राखे ।¹

विद्यानगर से आये हुए कान्होपाव से भेंट हुई थी। उन्हीं से आपको इस दशा का पता चला कि आप कामनियों के जाल में पड़े हुए हैं। मुझसे यह सब कुछ जब उन्होंने कहा तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आपका पतन भ्रमवश हुआ है। आपने अमृत रस को बाघिनी (स्त्री) की गोद में खो दिया है। स्त्रियों के धुँधरों के साथ ताल मिलाकर नाचते हुए माया के प्रेम से, हे गुरुदेव ! आपने अपनी सारी आध्यात्मिक कमाई खो डाली है।

गोरख-चरित्र का सबसे उत्कृष्टतम बिन्दु यही है कि समाज योगियों और राजाओं को उपदेश देते हुए अपने को सदैव पतन से बचाए ही नहीं रखा, वरन् पथ-भ्रष्ट हुए अपने गुरु को भी सन्मार्ग पर अग्रसर कर दिया। यह नहीं कि गुरु के साथ स्वयं भी बह जाते किन्तु यह कि गुरु को भी अपने साथ ले लिया, गुरु को भी अपने वचन से प्रभावित कर दिया। किन्तु नम्र भाव से, चरणों में नत होकर—

‘रूपे रूपे कुरूपे गुरुदेव, बाघिनी भोले भोलै ।

जिन जननी संसार दिषाया, ताको ले सूते षोलै ।

गुरु षोजी गुरुदेव गुरु पोजी, बदंत गोरख ऐसा ।

मुपते होई तुम्हें बंधन पड़िया, ये जोग है कैसा ।

चाम ही चाम घसंता गुरुदेव, दिन-दिन छीजे काया ।

होठि कंठ तालुका सोषी काढ़ि मिजालू पाया ।

दीपक जोति पतंग गुरुदेव, ऐसी भग की छाया ।

बूढ़े होइ तुम्हें राज कमाया, नां तजि मोह माया ।

बदंत गोरख नाथ सुनहु मछन्दर तुम्हें ईस्वर के पूता,

ब्रह्म-सरंता ते नर रापै, सो बोली अवधूता ।²

1 गोरखवानी, पद २

2 गोरखवानी, पद ४९

गोरख ने नारी के योनि-रूप का विरोध किया और शुक्र की रक्षा का महत्त्व भी प्रतिपादित किया, किन्तु मात्र शुक्र की रक्षा ही गोरख का उद्देश्य नहीं था। गोरख का मूल उद्देश्य था आध्यात्मिक अनुभूति। आध्यात्मिक अनुभूति के बिना जो शुक्र मात्र के अर्थबन्ध क्रिया का आसरा ग्रहण करता है, उसका शरीर स्थिर नहीं होता—

व्यंद व्यंद सब कोई कहे। महा व्यंद कोई बिरला लहे।

इह व्यंद भरोसे जावै बंध। असथिर होत न देपो कंध ॥¹

शुक्र की साधना को जिन्होंने भ्रामक अर्थ दिया, योनि-साधना में उसे नष्ट किया, गोरख उन्हीं के प्रति कटु हुए हैं। गृहस्थ की सामान्य नारी का उन्होंने सदैव सम्मान किया है। वे गृहस्थ जीवन के विरोधी तनिक भी न थे। उन्होंने रांशा को हीर से विवाह की अनुमति दी थी, चौरंगी का विमाता लूना को सन्तान-प्राप्ति के लिए अपनी शोली से चावल और अंगूर दिये थे। उन्हें तो ढोंगियों से चिढ़ थी। जो एक माया को छोड़ दूसरी बदतर माया में फँस जाते हैं। अपना अच्छा-खासा मकान छोड़ देते हैं और कुटिया बनाकर रहने लगते हैं, घर-बार की माया छोड़ देते हैं, पर चेला-चाँटियों से भिक्षा मँगाने का कार्य करते हैं। घर की सुन्दर स्त्री को छोड़कर नकटी के साथ रहते हैं। गोरख इसीलिए अकेले रहते हैं—सब प्रपंचों से अकेले—

म्यंदर छाड़ कुटी बंधावै। त्यागै माया और मंगावै।

सुन्दरि छाड़ि नकटी बासै। तातै गोरप अलगै न्हासै।²

गोरख-रचनाओं का मंथन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गोरख न तो स्त्री के विरुद्ध थे और न गृहस्थ-जीवन के प्रति ही कठोर दृष्टिकोण रखते थे, उन्हें चिढ़ उस वर्ग से थी जो योगी होने का ढोंग करता था किन्तु गृहस्थों से भी अधिक मोह-माया-जाल में फँसकर साधना के नाम पर घृणित कर्म करता था। उन्होंने उस नारी के रूप की आलोचना की है जो योगिनी के रूप में वेश्या कर्म किया करती थी। गोरख के समसामयिक भ्रष्ट समाज ने उन्हें नारी के प्रति कठोर दृष्टि-कोण अपनाने के लिए विवश कर दिया, जो स्वाभाविक था। हमें गोरख के इस दृष्टि-कोण को तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में रखकर ही देखना चाहिए। उन्होंने दलित, शोषित और भ्रमित नारी के उद्धार के लिए समसामयिक दिग्गजों से जो संघर्ष किया था, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

□

1 गोरखबानी, सबदी २३७

2 गोरखबानी, सबदी २०६

६. गोरखनाथ की भाषा

३.१. भाषा-वैज्ञानिक विवेचन

गुरु गोरखनाथ की हिन्दी-रचनाओं का प्रामाणिक संग्रह डा० पीताम्बर दत्त बड़थवाल ने 'गोरखबानी' के नाम से सन् १९४२ ई० में किया था ।

'गोरखबानी' के आधार पर गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन कम ही हुआ है । अब तक तीन विश्वविद्यालयों से पी-एच० डी० के लिए निम्नलिखित शोध-प्रबंध प्रस्तुत किये जा चुके हैं ।—

(अ) हिन्दी नाथ-साहित्य की भाषा ('गोरखबानी' तथा नाथ-सिद्धों की बानियों के आधार पर) डा० लाल बच्चागम, आगरा, १९६५

(ब) 'गोरखबानी' एक भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन—डा० छलबिहारी गुप्त, विक्रम, १९६६

(स) गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन—डा० कमलसिंह, क० मु० विद्या-पीठ, आगरा, १९७५ (सन् १९८४ ई० में प्रकाशित)

पहले दो शोध-प्रबन्धों के आधार पर तथा अन्य हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रंथों में प्राप्त सामग्री के आधार पर गोरखनाथ की भाषा के संबंध में कोई पुष्ट निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते, वरन् विरोधी तथ्य ही सामने आते हैं । प्रस्तुत पक्तियों के लेखक ने अपने शोध-प्रबंध 'गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन' में 'गोरखबानी' का भाषा-शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत करते हुए सिद्ध किया है कि उसकी भाषा खड़ी बोली शृंखला की वह आदिकालीन कड़ी है, जो हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहासों में अब तक टूटी पड़ी थी तथा साथ ही बिखरी हुई इन कड़ियों को जोड़कर खड़ीबोली शृंखला को पूर्ण करने का प्रयास किया गया है । अपने विवेचन से पूर्व गोरखनाथ की भाषा के संबंध में अन्य विद्वानों के मत जान लेना आवश्यक है ।

१- 'प्रारम्भिक सिद्धों की कृतियों की भाषा स्पष्टतया अपभ्रंश (मागधी) है ।'^१

—डा० धीरेन्द्र वर्मा

२- 'सर्व पुरातन सिद्ध सहरपाद नालन्दा से संबंध रखते थे, इसलिए उनकी भाषा का मगही होना स्वाभाविक ठहरा । अन्य सिद्धों ने भी इसी भाषा को कविता

की भाषा बनाया । चौरासी विद्ध नालन्दा और विक्रमशिला से संबंध रखते थे ।' ¹

—पं० राहुल सांकृत्यायन

३- 'अतः उनकी भाषा में जनबोली 'मगही' का आभास देखा जाता है ।' ²

—डा० रामकुमार वर्मा

४- गोरख, नामदेव आदि की मिली-जुली बोलियों वाली भाषा से कबीर आदि संतों की 'सधुक्कड़ी' भाषा का विकास हुआ, जिसमें पश्चिमी हिन्दी का ही बाहुल्य था ।' ³

—डा० हरदेव बाहरी

५- उन्होंने (सिद्धों ने) भरसक उसी सर्वमान्य व्यापक काव्य-भाषा में लिखा है, जो उस समय गुजरात, राजपूताने और ब्रजमंडल से लेकर बिहार तक पढ़ने-लिखने की शिष्ट भाषा थी । पुरानी हिन्दी की व्यापक काव्य-भाषा का ढाँचा शौरसेनी-प्रसूत अपभ्रंश अर्थात् ब्रज और खड़ी बोली (पश्चिमी हिन्दी) का था ।' ⁴

—आ० रामचन्द्र शुक्ल

६- 'आधुनिक भारतीय आर्य भाषा के पूर्वीय तथा पश्चिमी, इन दोनों अंचलों के भाषा-रूपों के उदाहरण इन रचनाओं में मिल जाते हैं ।' ⁵

—डा० दयानन्द श्रीवास्तव

७- डा० रांगेय राघव ने निम्न पाँच निष्कर्ष निकाले हैं— (क) भाषा अन्य सिद्धों की कविता जैसी नहीं है । (ख) संस्कृत का प्रयोग अपने भ्रष्ट रूप में भी है । (ग) अनेक बोलियों का पुट उममें मिश्रित है । (घ) कहीं-कहीं उर्दू-फारसी के भी भ्रष्ट रूप मिलते हैं । (ङ) भाषा सधुक्कड़ी है । ⁶

८- निचली पंक्तियों में हिन्दी (राष्ट्रभाषा, खड़ी बोली) की भी कुछ क्षलक है । गोरख सहज जनभाषा में सब कुछ कहते हैं और दूसरे कवि प्राकृत-व्याकरण टटोलते हैं ।' ⁷

—पं० किशोरीदास वाजपेयी

९- 'गोरखनाथ की बानियों और उनकी भाषा का रूप संदिग्ध मानने के कारण ही कदाचित् उनकी ऐसी उपेक्षा हुई है; किन्तु विश्लेषण से यह निश्चित रूप से प्रमाणित हुआ है कि गोरखनाथ की बानियों की भाषा पूर्वीय हिन्दी न होकर, जैसा कि सामान्यतः माना जाता है, पुरानी खड़ी बोली है ।' ⁸

—डा० माताप्रसाद गुप्त

विद्वानों के उपर्युक्त मतों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा

- 1 पुरातत्व निबन्धावली, पृ०, १६७
- 2 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ०, ६५
- 3 हिन्दी : उद्भव, विकास और स्वरूप, पृ०, २४०
- 4 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०, १२-२०
- 5 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०, २०३
- 6 गोरखनाथ और उनका युग, पृ०, १६१
- 7 हिन्दी शब्दानुशासन, पूर्वपीठिका, पृ०, १३
- 8 कुतुब शतक और उसकी हिन्दुई, प्रस्तावना, पृ० ५

सकते हैं—

(क) गोरखबानी की भाषा पूर्वी हिन्दी है । (ख) गोरखबानी की भाषा पश्चिमी हिन्दी है । (ग) गोरखबानी की भाषा में कई बोलियों का मिश्रण है । (घ) गोरखबानी में भाषा पुरानी खड़ी बोली है ।

गोरखबानी की भाषा के सम्बन्ध में उपर्युक्त विरोधी निष्कर्षों का एक मूल कारण यह रहा है कि गोरख की भाषा का अध्ययन अभी तक पृथक् रूप से नहीं किया गया था—अन्य सिद्धों अथवा नाथों की भाषा के साथ मिलाकर एक सामान्य कथन कहा जाता रहा है । कारण, 'नाथपरम्परा' का सम्बन्ध 'सिद्ध' सम्प्रदाय से जोड़ना है । पं० राहुल सांकृत्यायन ने, जो सन्त और सिद्ध कविता-प्रवाह को जोड़ने वाली बात कही थी, वह भाषा की दृष्टि से नहीं, वरन् साम्प्रदायिकता की दृष्टि से कही थी । वे लिखते हैं—'चौरासी सिद्धों का काल ८००—११७५ ई० है, किन्तु सिद्ध इसके बाद भी होते रहे हैं, इसलिए सिद्धकाल इसके बाद भी रहा है, तो भी भाषा के ख्याल से हम उसे महाराज जयचन्द्र गुरु मित्रयोगी (१२००) के साथ समाप्त करते हैं ।'¹

वस्तुतः समसामयिक सिद्धों की भाषा से गोरखनाथ की भाषा बिल्कुल मेल नहीं खाती । यह निश्चित है कि 'गोरखबानी' में एक से अधिक बोलियों के भाषाई तत्त्व समाहित हैं, किन्तु इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि गोरखनाथ की भाषा का पूर्वी बोलियों (मगही, भोजपुरी, अवधी) से कोई अधिक सम्बन्ध नहीं । गोरखबानी की भाषा को पूर्वी बोली कहने के दो कारण हैं—एक तो, अधिकांश सिद्धों की भाषा पूर्वी रही है, अतः सिद्ध-परम्परा में होने के कारण गोरख की भाषा भी पूर्वी हिन्दी रही होगी—ऐसा अनुमान लगता रहा । दूसरे, गोरखबानी के -इबा तथा -इला प्रत्यय ऊपरी तौर से पूर्वी बोलियों के प्रतीत होते हैं, किन्तु गोरखबानी का -इबा प्रत्यय ऐतिहासिक विकास वाला 'बाहिए' अर्थ देने वाला प्रत्यय है । इसका सम्बन्ध राजस्थानी भाषा से तो है ।² किन्तु भोजपुरी अथवा अवधी के भविष्यत् काल वाले 'ब' प्रत्यय से नहीं । 'इबा' की आकारान्तता पश्चिमीपन प्रकट कर रही है । जहाँ तक 'इला' प्रत्यय का प्रश्न है, गोरखबानी में इसका प्रयोग भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान तीनों कालों के लिए हुआ है । भोजपुरी में यह केवल भूतकाल के लिए प्रयुक्त हुआ है ।³ पश्चिमी राजस्थानी में यह भविष्यत् काल के लिए प्रयुक्त होता है ।⁴ मराठी में भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान तीनों के लिए मिल जायेगा ।⁵ इस प्रत्यय के अधिकांश रूप तीन ही पदों में मिलते हैं और वे तीनों पद भाषा की दृष्टि से मराठी के निकट हैं । जहाँ तक भविष्यत् काल के अन्यत्र विखरे हुए -इला प्रत्यय का प्रश्न है, पश्चिमी

1 पुरातत्व निबंधावली, पं० राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ १६१

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४८०

3 पुरानी राजस्थानी-अनु० डा० तामवरसिंह, पृ० १६४)

4 ए ग्रामर ऑफ दी हिन्दी लैंग्वेज, एम० एच० केलाग, पृ० ३०८, १/२, १३)

5 शास्त्रीय मराठी व्याकरण, मो० के० दामले पृ० ८३८

राजस्थानी से प्रभावित कहे जा सकते हैं।

कहने का तात्पर्य है कि गोरखबानी की भाषा में केवल पश्चिमी हिन्दी के ही रूप समाहित हैं, किन्तु यहाँ प्रयोग-आवृत्तियों के आधार पर हमें यह निश्चित करना है कि पश्चिमी हिन्दी की कौन सी बोली गोरखबानी की मूलधार बोली है।

पश्चिमी हिन्दी की बोलियों को दो वर्गों में विभाजित करके देखा गया है—

- (१) आकार बहुला अर्थात् खड़ी बोली या कौरवी, हरियानी और दक्षिणी हिन्दी तथा
- (२) ओकार बहुला अर्थात् ब्रजभाषा, बुन्देली और कन्नौजी। पहला वर्ग पंजाबी से समानता रखता है और दूसरा वर्ग राजस्थानी से समानता रखता है।

संज्ञा पुंलिंग एक वचन—संज्ञा पुंलिंग एकवचन के आकारान्त शब्द 'गोरख-बानी' में एक सी साठ हैं। जैसे घोड़ा, घागा, उजाला आदि, जबकि ओकारान्त संज्ञा शब्द कुल २६ हैं। जैसे—चौमासो, सुसित्यो आदि।

संबंधकारक—सम्बन्धकारक में एकवचन में 'का' १३३ बार प्रयुक्त हुआ, जैसे—'अमरत का बासा' 'जोग का मूल' आदि जबकि 'कौ' का प्रयोग केवल ७ बार हुआ है, जैसे—'जोग कौ पार' इत्यादि। सम्बन्धकारक के लिए ही गोरखबानी में 'ना' १४ बार तथा 'चा' ३ बार आया है। जबकि 'नी' का प्रयोग दो बार तथा 'चौ' का प्रयोग बिल्कुल नहीं हुआ है। 'ना' और 'चा' क्रमशः गुजराती और मराठी के चिह्न हैं किन्तु खड़ी पाई, यहाँ भी खड़ी बोली की प्रबल है।

पुरुषवाचक सर्वनामों के संबंधकारकीय रूप—मेरा, हमारा, तेरा तथा तुम्हारा जैसे—आकारान्त रूपों की संख्या १५ है जबकि ओ, ओकारान्त रूप एक भी उपलब्ध नहीं है। यहाँ एक बात द्रष्टव्य यह है कि 'मोरा' तथा 'तोरा' जैसे आकारान्त रूप राजस्थानी में चलते हैं, किन्तु उनकी संख्या यहाँ केवल दो है।

विशेषण—आकारान्त गुणवाचक विशेषणों की संख्या ६० हैं। जैसे—घोटा, काला, बूढ़ा, रंगा, चंगा इत्यादि। जबकि ओकारान्त गुणवाचक विशेषण कुल छह हैं, जैसे बड़ो, मोठो इत्यादि।

सार्वनामिक विशेषण—इतना, एता, ऐसा, केता, कंसा आदि आकारान्त सार्वनामिक विशेषणों की संख्या ५० है, जबकि ओकारान्त रूप केवल एक है—आईसो।

क्रिया-विशेषण—कुछ सर्वनाम अथवा विशेषण ऐसे हैं जो क्रिया-विशेषण की भाँति प्रयुक्त हुए हैं। उनमें आकारान्त की कुल संख्या २१ है, जबकि 'ओकारान्त एक भी देखने को नहीं मिलता है। ये आकारान्त अव्यय हैं अपूठा, आड़ा, पहला, परा, घणां, थोड़ा, जितना, अकेला, ऐसा आदि।

भूतकालिक कृदन्त—भूतकालिक कृदन्तों में आ, इया, ईया, या, यां प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं। ये प्रत्यय गोरखबानी की भाषा का क्षेत्र एवं काल-निर्धारण करने में सबसे अधिक सहयोग प्रदान करते हैं। प्रयोग में इनकी संख्या भी बहुत अधिक है। ओकारान्त रूपों की संख्या ४१६ है जबकि ओ, ओकारान्त रूपों की

कुल संख्या २६ है ।

आँ प्रत्यय—विकारी रूप बहुवचन में प्रयुक्त होने वाला यह प्रत्यय 'गोरखबानी' का बहु-प्रयुक्त एवं अतुलनीय है । लगभग सभी पुलिग और स्त्रीलिग संज्ञाओं के विकारी रूपों में यह प्रयुक्त हुआ है । संज्ञा के अतिरिक्त कृदन्तीय रूपों में भी यह दृष्टिगत होता है, जैसे—कह्याँ, सींचतड़ा आदि । सींचताँ, घाताँ आदि में भी आँ है । कौरवी, हरियाणवी और राजस्थानी की मारवाड़ी तथा मेवाती में यह प्रत्यय मिल रहा है । गढ़वाली में भी यह है किन्तु संभवतया कृदन्त रूप में नहीं हैं । पूर्वी पंजाबी में बहुत प्रचलित है । इतने विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित होने के कारण हम इसे उत्तरी हिन्दवी की एक विशेषता मानेंगे ।

भविष्यत् काल के तत्त्व—गोरखबानी में भविष्यत् काल को सूचित करने के लिए तीन प्रकार के रूप मिल रहे हैं—'ग' वाले, 'स' वाले तथा 'ब' वाले । 'स' वाले रूपों की संख्या १७, 'ग' वाले रूपों की संख्या २६ तथा 'ब' वाले रूपों की संख्या (केवल भविष्यत् काल के अर्थ में) १० है ।

'ब' वाले रूपों के सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि यद्यपि पूरी 'गोरखबानी' में यह प्रत्यय २१५ बार प्रयुक्त हुआ है फिर भी भविष्यत् काल के अर्थ में इनका प्रयोग कम हुआ है, यह अर्थ भी हम अपना लगाते हैं । वरन् 'गोरखबानी' 'इबा' प्रत्यय का मूल अर्थ तो 'चाहिए' के भाव वाला है । 'स' वाले रूप पूर्वी पंजाबी, दक्षिणी हिन्दी तथा प्राचीन राजस्थानी में प्राप्त होते हैं । यहाँ यह द्रष्टव्य है कि 'स' वाले रूप इतने नहीं हैं जितने 'ग' वाले रूप । ये कुछ निश्चित पदों में मिल रहे हैं और कुछ के पाठ भेद हैं । इन रूपों के प्रयोग में हम लिपिकार की अपनी बोली का प्रभाव भी कह सकते हैं ।

अब रह गया 'ग' वाला रूप, जो गोरखबानी की भाषा का मुख्य एवं बहु-प्रयुक्त है । यह रूप खड़ी बोली का प्रसिद्ध रूप है । गोरखबानी में यह बिखरा हुआ मिल रहा है । अतः इसके प्रयोग को न तो क्षेपक ही कह सकते हैं और न लिपिकार की मातृ-भाषा का प्रभाव ही ।

प्रयोग आवृत्तियों के आधार पर हम देखते हैं कि गोरखबानी में खड़ी बोली के रूप ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं । अतः गोरखबानी की मूलधार भाषा खड़ी बोली कही जा सकती है, किन्तु इतना कहने मात्र से गोरखबानी की भाषाई प्रकृति स्पष्ट नहीं होती । शुद्ध खड़ी बोली तो गंगा और यमुना के उत्तर दोआब में बोली जाती है, किन्तु यह पंजाबी, राजस्थानी, पहाड़ी और ब्रज भाषाओं से घिरी होने के कारण तथा स्वयं का प्रचार-प्रसार अधिक होने के कारण समीपवर्ती बोलियों से प्रभावित है । गोरखबानी में पंजाबी, राजस्थानी तथा ब्रज के कुछ रूप मिश्रित हैं । यह मिश्रण हिन्दी के उत्पत्ति काल में और भी अधिक संभव था । अतः हम गोरखबानी की भाषा का क्षेत्र दिल्ली, मेरठ, हरियाणा, पूर्वी पंजाब, मेवात और मथुरा निश्चित कर सकते हैं, और उसकी भाषा को 'उत्तरी हिन्दवी' की संज्ञा दे सकते हैं ।

३. २. संधा-भाषा

सहजयानियों की अलौकिक रहस्यात्मक एवं प्रक्रियात्मक भाषा-शैली को 'संध भाषा' अथवा 'संध्या भाषा' कहा गया है। सही शब्द 'संध्याभाषा' या 'सन्धा भाषा' है इस पर विद्वानों में पर्याप्त विवाद रहा है। शब्द की वास्तविकता में ही अर्थ की वास्तविकता निहित है।

'संध्याभाषा' शब्द को ग्रहण करने करने वाले कुछ विद्वान् इसका अर्थ काल एवं सीमा के साथ सम्बन्धित करते हैं। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार 'मेरे विचार से तो 'संध्या भाषा' का सीधा-सादा अर्थ यही है कि वह भाषा जो अपभ्रंश के संध्याकाल या समाप्त होने वाले काल में लिखी गई।'¹ क्षेत्र अथवा सीमा के साथ इसका अर्थ जोड़ने वाले किसी विद्वान् के सम्बन्ध में आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—'एक पंडित ने अनुमान भिड़ाया है कि इस शब्द का अर्थ संधिदेश की भाषा है। संधि देश भी इस पंडित के अनुमान के अनुसार वह प्रदेश है जहाँ बिहार की पूर्वी सीमा और बंगाल की पश्चिमी सीमा मिलती है। यह अनुमान स्पष्ट ही बेबुनियाद है, क्योंकि इसमें मान लिया गया है कि बंगाल और बिहार के आधुनिक विभाग सदा से इसी भाँति चले आ रहे हैं।'²

दूसरी ओर कुछ अन्य विद्वान् 'संध्या भाषा' का अर्थ रहस्यमयी भाषा से जोड़ते हैं। सिद्धों ने भाषा में कविता करके यद्यपि अपने विचारों को जनता के समझने लायक बना दिया तथापि डर था कि, विरोधी उनके आचार-विरोधी कर्म-कलाप का खुलेआम विरोध कर कहीं जनता में घृणा का भाव पैदा न कर दें, इसीलिए वह एक तो विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को ही उन्हें सुनने के अवसर देते थे, दूसरे भाषा भी ऐसी रखते थे, जिसका अर्थ वामाचार और योगाचार, दोनों में लग जाये। इस भाषा को पुराने लोगों ने 'संध्या भाषा' कहा है, और आजकल इसे 'निगुण', 'रहस्यवाद', या 'छयावाद' कह सकते हैं।³ महामहोपाध्याय हरदेव प्रसाद शास्त्री और विनयतोष भट्टाचार्य ने इसका अर्थ 'आलोआंधरी भाषा' किया 'जैसे संध्याकाल में प्रकाश और अन्धकार मिलते हैं उसी प्रकार इस शैली में भी लौकिक एवं अलौकिक अर्थ एक साथ मिलते हैं। इसका बाह्य अर्थ कुछ और तथा आन्तरिक अर्थ कुछ और होता है।'⁴ डा० दयानन्द श्रीवास्तव ने प्रतीकार्थी को संध्या अर्थ कहकर अनेक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है।⁵ डा० गोविन्द त्रिगुणायत के अनुसार 'संध्या भाषा' उस विशेष प्रकार की अभिव्यंजना शैली के लिए

1 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६७

2 कबीर-आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८२

3 पुरातत्व निबंधावली-पृ० राहुल सांकृत्यायन, पृ० १६०

4 साहित्येतिहास (आदिकाल)-डा० गुमान राजे, पृ० १६८

5 हिन्दी साहित्य का इतिहास-डा० दयानन्द श्रीवास्तव, पृ० १६६

प्रयुक्त हुई है, जिसके सहारे तांत्रिकों की भाँति सिद्ध लोग भी वामाचार को उसी प्रकार छिपाने में समर्थ होते हैं, जिस प्रकार संध्या उजियारे को ।¹

‘संधा भाषा’ शब्द को ग्रहण करने वाले विद्वानों में लगभग मतभेद है । पं० विद्युशेखर भट्टाचार्य ने अनेक प्रमाणों द्वारा अपने एक लेख में सिद्ध किया है कि शब्द मूलतः ‘संधा भाषा’ हैं ‘संधा भाषा’ नहीं हैं । अर्थ अभिसंधिरहित या अभिप्राय युक्त भाषा है । आप ‘संधा’ शब्द की संस्कृत ‘संधाय’ (= अभिप्रत्यय) का अपभ्रष्ट रूप मानते हैं ।² बौद्ध शास्त्र के किसी वचन ने सहजयान और वज्रयान में यह रूप धारण किया है । डा. बागची प्रो० स्नेल ग्रोव, मसिया इलिस्ट, डा० बुर्नोफ आदि विद्वान् ‘संधा भाषा’ के इसी न्यूनाधिक रूप से सहमत हैं ।³ इस मंत्रणास्वभाव वाली, गुह्य प्रकृतिवाली भाषा से प्रतीकों के माध्यम से सिद्धगण अपनी अनुभूतियों का अंकन करते थे । अक्सर ग्रन्थों में इनमें बहुत से प्रतीकों का अर्थ अलग से दिया हुआ रहता था, जो केवल संप्रदाय में दीक्षित साधकों को ही प्राप्त होता था ।⁴ इस प्रकार इस भाषा की प्रकृति मंत्रप्रकृति थी । मंत्र सिद्धान्त में प्रत्येक शब्द और अक्षर का गुह्य, दिव्य या परम अर्थ होता था । शब्दों की उसी द्वयार्थक प्रवृत्ति का परिचय ‘संधा भाषा’ में भी मिलता है ।⁵

सिद्धों की यह ‘संधा भाषा’ नाथ संप्रदाय से होती हुई संत-साहित्य तक में देखने को मिलती है । भावभूमि में नाथों तथा संतों का साहित्य वज्रयानी परम्परा से बहुत हट गया था किन्तु जहाँ तक शैली का प्रश्न है, यह परम्परा अविच्छिन्न रूप से रही । यहाँ तक कि वे ही रूपा, वैसे ही प्रतीक, वे ही छन्द और वहीं संधा शैली सिद्धों, नाथों और संतों के साहित्य में मिलती है ।⁶ इस शैली का सबसे अधिक प्रयोग नाथ-संप्रदाय के पोषक प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ ने किया है । डा० पीताम्बर दत्त बड़वाल द्वारा संपादित ‘गोरखबानी’ की रचनाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि गोरखनाथ ने आध्यात्मिक अथवा योगपरक रहस्य की अधिकांशतः इसी शैली में निरूपित किया है ।

यहाँ एक जिज्ञासा का होना स्वभाविक है कि इस आध्यात्मिक रहस्य को समझने के लिए गोरखनाथ ने इतना झमेला खड़ा क्यों किया ? अपनी बात को समझाने के लिए लोक-विपरीत पद्धति क्यों अपनायी ? हमारे विचार से गोरखनाथ ने संधाभाषा का प्रयोग निम्नलिखित कारणों से किया होगा—

(क) ऐतिहास दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि योग-संप्रदाय की और

1 कबीर की विचार धारा—डा० गोविन्द विगुणायात पृ० ३९६

2 कबीर—आ० हजारो प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८२

3 साहित्येतिहास (आदिकाल)—डा० सुमन राजे पृ० १६८

4 हिन्दी साहित्य कोश (भाग-१) सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ८५६

5 सिद्ध साहित्य—डा० धर्मवीर भारती, पृ० २६०

6 " " " पृ० ४४७

तंत्र-सम्प्रदाय की रीति यह रही है कि जो श्रेष्ठ है उसको पहले स्थान देना चाहिए, जो कम श्रेष्ठ है उसे बाद में, यथा मोक्ष-धर्म-अर्थ-काम, संन्यास-वानप्रस्थ-गाह्यस्थ-ब्रह्मचर्य, शान्त-कृष्ण-अद्भुत-वीर-रौद्र-हास्य-भयानक-वीभत्स-शृंगार इत्यादि । यह ठीक भी है । किन्तु लोक का काम ऐसा नहीं है । वह ठीक इसके उलटा है । योगियों और तांत्रिकों की इस उलटी रीति का परिणाम यह हुआ है कि उन्हें लोक विपरीत बात कहने की आदत पड़ गयी ।¹ विरोधाभास का यह चसका गोरखनाथ को विरासत में मिला था । इसी कारण सीधी बात को भी उलटी करके, जटिल करके उन्होंने कहा है । फिर चाहे भाव अधिक गंभीर ही क्यों न हो जाये । आश्चर्य तो यह कि गोरखनाथ जितनी अधिक लोक-विपरीत बात कहते चले गये उतने ही प्रसिद्ध होते चले गये ।

(ख) गोरखनाथ के समय भारतीय धर्म-साधना की दशा बड़ी विचित्र थी । पूर्ववर्ती और समसामयिक सिद्धों में अनेक कुरीतियाँ और रूढ़ियाँ घर किये हुए थीं । गोरखनाथ इन सबके लिए एक प्रतिद्वन्द्वी के रूप में पैदा हुए थे । अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करने के लिए गोरखनाथ ने उन्हें ललकारा और यत्र-तत्र अभिव्यंजना के दुरूह माध्यम को अपनाया । गोरखनाथ ने अपनी बात को इस भाँति कहा है कि अच्छे अच्छे पंडित चक्कर में पड़ जायें । जटिलता की इस शैली को ही 'संधा भाषा' कहा गया है ।

(ग) नाथ पंथी योगियों की अद्भुत करामातों से साधारण जनता चकित और भयभीत रहती थी । इस भय में श्रद्धा का अद्भुत मिश्रण था । गोरखनाथ ने जन-साधारण पर अपना प्रभुत्व एवं भय अधिक करने के लिए भी इस शैली को अपनाया । गोरखनाथ को तो ऐसी उलटी चर्चा करनी थी कि जन साधारण उसे सुनकर चमत्कृत हो उठे । चमत्कार की यही प्रवृत्ति गोरखनाथ के परवर्ती नाथों एवं सन्तों में भरपूर देखने को मिलती है ।

(घ) 'संधा भाषा', 'उलटी चर्चा', 'अस्पष्ट कथन' जहाँ एक ओर योग परक तथ्यों को गुह्य बनाने के लिए प्रयुक्त हुए, वहाँ दूसरी ओर लौकिक तत्त्वों के सहारे अलौकिक तथ्यों को भी स्पष्ट किया गया । आध्यात्मिक रहस्यों को समझना-समझाना आसान नहीं है । जन-साधारण को समझाने की दृष्टि से गोरखनाथ ने सांसारिक उपकरणों के माध्यम से भी अपनी बात कही है । सांसारिक उपकरणों को लेकर उपमा और रूपक अलंकारों के माध्यम से बात कहते-कहते ये सांसारिक उपमान गोरखनाथ के लिए इतने परिचित हो गये कि वे उन्हें आध्यात्मिक प्रतीकों अथवा योगपरक रूपकों की भाँति प्रयोग करने लगे । और यही गोरख की 'संधा भाषा' है ।

सुविधा की दृष्टि से गोरखनाथ की इस 'संधा भाषा' को चार भागों में विभाजित करके देख सकते हैं —

(क) रूपकात्मक संधाभाषा

(ख) प्रतीकात्मक संधाभाषा

(ग) विरोधात्मक संधाभाषा

(घ) अद्भुत रसात्मक संधाभाषा

(क) रूपकात्मक संधाभाषा

आध्यात्मिक जटिलता के सरलीकरण के लिए सांसारिक उपकरणों के उपमानों को लेकर गोरखनाथ ने उपमा और रूपक अलंकारों का सहारा लिया है। इस प्रकार की प्रवृत्ति में 'संधाभाषा' का वह रूप है जिसमें प्रकाश अधिक और छाया कम है।

अहरणी नाद नै ब्यंद हथौड़ा, रवि ससि वालां पवनं ।

मूल चापि दिढ़ आसणि बँठा, तब मिटि गया आवागमनं ॥

सहज पलाणं पवन करि घोड़ा, लै लगाम चित चबका ।

चेतनि असवार ग्यान-गुरु करि, और तजो सब ढवकाई ॥

(अनाहद नाद अहरन है, बिन्दु (शुक्र) हथौड़ा है और इड़ा-पिंगला दोनों नाड़ियाँ हवा करने की धोकनी हैं। मूलाधार को दबाकर हठ आसन में बैठो, जिससे संसार का आवागमन मिट जायेगा।

सहज की जीन और पवन का घोड़ा बनाओ, लय की लगाम और चित्त को चाबुक बनाओ। इस प्रकार चेतना को सवार बनाकर गुरु-ज्ञान तक पहुँचो, अन्य सभी उपायों को छोड़ दो।)

इस प्रकार के उदाहरणों में 'उलटी चर्चा' अथवा 'उलट बांसी' की स्थिति नहीं आने पाई है।

(ख) प्रतीकात्मक संधाभाषा

उपमा-रूपक के इन उपमानों के प्रयोग में गोरख इतने अभ्यस्त हो गये थे कि उपमेय का सहारा ही छोड़ दिया। तब इन उपमानों का प्रयोग आध्यात्मिक प्रतीकों के रूप में करने लगे।

नाथ बोलै अमृत बांणी, बरिषैगी कंबरी भीजैगा पांणी ।

गाड़ि पड़रवा बांधि लै पूंटा, चलै दमांमां बाजिलै ऊंटा ।

कउबा की डाली पीपर बासै, मूसा के सबद बिलइया नासै ।

चलै बटावा थाकी बाट, सोवै डुकरिया ठोरै षाट ।

ढूकिले कूकर भूकिले चोर, काढै घणीं पुकारै ढोर ।

ऊजड़ षेड़ा नगर मझारी, तलि गागरि ऊपरि पनिहारी ।

मगीर परि चूल्हा धूँधार्ई, पोवणहारा को रोटी षाई ।

कामिनीं जलै अंगीठी तापै, बिचि वसंदर थर हर कांपै ।¹

(नाथ अमृत वाणी बोलता है—कंबल बरसेगा और पानी भीगेगा; पड़रा (भैंस का नर बच्चा) को गाड़कर खूँटे को बांध लो। दमामा चलता है। ऊँट बजाया जाता है। कौए की शाखा पर पीपल है, मार्ग थकता है। बुढ़िया के ऊपर खाट

सोती है। कुत्ता छिप गया है, चोर भूँक रहा है। पशु धनी को पुकारता है और काढ़ता है। नगर के बीच में ही ऊगड़ खेड़ा है। गागर नीचे है और ऊपर पनिहारिन है। लकड़ी के ऊपर चूल्हा धूँ-धूँ करके जल रहा है। खाना बनाने वाली को रोटी खा जाती है। स्त्री जलती है और अंगोठी तापती है। अग्नि के बीच में थर-थर काँपती है।)

इन प्रतीकों की घटाओ में गोरखनाथ की अमृतवाणी इस प्रकार निहित है— जोगी के दैहिक और मानसिक कर्म शुद्ध होकर अस्तित्व को नम बना देंगे। माया से उत्पन्न अविवेक को स्थिर करके माया का निरोध कर लो। अनाहत नाद निरन्तर सुनाई दे रहा है। जिससे स्थूल मन बाजे की तरह बजाया जा रहा है। अविवेकी मन उच्च अवस्था को प्राप्त करके ही ब्रह्मानुभव करता है। सूक्ष्म अन्तर्मुखी जीवन से माया भागने लगती है। ज्ञान-मार्ग पर चलने से मोक्ष प्राप्त होता है और इस प्रकार मार्ग ही समाप्त हो जाता है। माया जब निर्वल पड़ जाती है तो आध्यात्मिक जीवन उसे दबा लेता है। द्रोही मन के छिद जाने पर ही आत्म-ज्ञान प्रबल होता है। इन्द्रियों, नवरंघ आदि से बची हुई जो माया-नगरी थी, वह अब उजड़े गाँव सी हो गयी है। इन्द्रियाँ इत्यादि अब वैभवहीन हो गई हैं; अब उन्हें विषयों का साथ नहीं मिलता है।

इस शरीर में आत्मा ब्रह्मरंघ में ऊपर रहती है और कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में रहती है। जीव को जब वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो गया तो वह तापरहित हो गया है और माया नष्ट हो रही है। ब्रह्मानुभूति होने पर जीव माया को खा जाता है। ब्रह्मासाक्षात्कार के कारण माया जल रही है और जीवात्मा को ब्रह्म-सुख प्राप्त हो रहा है। जलती हुई माया ब्रह्माग्नि में थर-थर काँप रही है, क्योंकि उसे पूर्ण नष्ट होने का भय है।¹

(ग) विरोधात्मक संघाभाषा

यद्यपि प्रतीकमूलक उदाहरणों में भी जाने-अनजाने लोक-विपरीत बात ही कही गयी है फिर भी कुछ ऐसे उदाहरण ऐसे हैं जिनमें जानमानकर विरोधाभास, विभावना, असंगति, विषम, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का सहारा लिया गया है। विरोधात्मक संघाभाषा के ऐसे ही उदाहरण 'उलट बाँसी' कहे गये हैं।

ऊँट सिचाणें जब ग्रह्यो जाइ कैरो डाली बैठो :

बाँझे बेटा जमनियू नेणें पुरिष न दीठौ ।

लाकड़ डूबे सिल तिरै, देषंता जग जाइ ।

ऊँट प्रनाले बहि गया, सुसिल्यो पोली न माई ।

डूंगरि मंछा जलि सुसा पांणी में दौ लागा ।

अरहट बहे तुसालवां, सुलै काँटा भागा ।

एक गाइ नौ बछड़ा, पंच दुहेबा जाइ ।

एक फूल सोलह करंडियाँ, मालिनी मन में हरिष न माई ।¹

(गोरख के अनुसार बाज विशालकाय ऊँट को भी पकड़ता है और ऊँट डर से वृक्ष पर चढ़ जाता है। बाँझ का अर्थ है जिसके बच्चा हो ही न सके किन्तु यहाँ बाँझ ने बेटे को जन्म दिया और वह भी बिना पुरुष के साथ संसर्ग किये हुए। इस संसार में तो लकड़ी तैरती है और पत्थर डूब जाता है किन्तु गोरख कहते हैं कि लकड़ी डूब जाती है और पत्थर तैरता है। थोड़े से पानी में भला ऊँट डूब सकता है? यहाँ गोरख का ऊँट डूबकर बह जाता है। छोटा सा खरहा एक लम्बे चौड़े फाटक में भी नहीं समाता। इस संसार में मछली पानी में रहनी चाहिए और खरहा जमीन पर किन्तु गोरख के अनुसार मछली पहाड़ पर चढ़ जाती है और खरहा जल में प्रवेश कर जाता है। पानी से आग बुझा करती है किन्तु यहाँ पानी में आग लग गई। एक गाय एक समय में एक ही बछड़ा देती है, दो दे सकती है किन्तु यहाँ एक गाय के नौ बछड़े हैं। इस गाय को एक साथ दुहने वाले भी पाँच हैं। एक फूल एक ही करंडिया में रखा जा सकता है। अगर अधिक में रखना है तो तोड़-तोड़ कर रखेंगे किन्तु यहाँ एक फूल सुरक्षित अवस्था में सोलह करंडियों में रखा हुआ है।

गोरखनाथ की इस 'उलटबाँसी' को समझने के लिए कुछ शब्दों के अर्थ इस प्रकार करने होंगे:—ऊँट=मन, सिचाण=यम, केरोडाली=जगत्, बाँझ=माया, बेटा=ब्रह्मानुभव, पुरुष=ब्रह्म, लाकड़=संसार से प्रभावित व्यक्ति, सिल=संसार से अप्रभावित व्यक्ति, ऊँट=स्थूल माया, सुसित्त्यो=सूक्ष्म माया, डूंगरि=उच्च दशा, मंछा=मन, जल=संसार, सुसा=माया, पांणी=संसार या माया, दो लागा=नष्ट हुआ, अरहट=ब्रह्मानुभूति, तुसालवा=मुमुक्षुओं के लिए, सूल=विधान, काँटा=अविद्या (माया), एक गाय=आत्मा, नौ बछड़ा=नवरत्न, पंच दुहेवा=पंचेन्द्रियाँ, एक फूल=अमृतानन्द, सोलह करंडियाँ=सोलह कला वाला चन्द्रमा, मालिन=आत्मा। और फिर गोरख का अभीष्ट अर्थ समझने में कोई कठिनाई नहीं।

इस योजना में द्रष्टव्य है कि एक ओर एक आध्यात्मिक तत्त्व के लिए विभिन्न लौकिक शब्दों का प्रयोग है तो दूसरी ओर विभिन्न आध्यात्मिक तत्त्वों के लिए एक ही लौकिक शब्द प्रयुक्त हुआ है।²

(घ) अद्भुत रसात्मक संघाभाषा

यद्यपि आश्चर्य की उत्पत्ति तो विरोधात्मक उलटबाँसियों से भी होती है किन्तु कुछ उलटबाँसियाँ गोरखनाथ की ऐसी हैं, जो प्रयत्नपूर्वक जनसाधारण को चमत्कृत करने के लिए अथवा एक जादुई आश्चर्य में डालकर अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करने के लिए ही लिखी गई हैं—

चींटी केरा नेत्र में गज्येन्द्र समाइला,

गाबड़ी के मुख में बाघला बिबाइला ।

1 गोरखबानी—सं० डा० पीताम्बर दत्त बड़धवाल, पृ० २०

2 विस्तार के लिए 'गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन', डा० कमल सिंह

बारें बरसैं बंश ब्याई हाथ पाव टूटा,
बदंत गोरखनाथ मछिन्द्र ना पूता।¹

(चींटी के नेत्र में हाथी समा गया। गाय के मुख में बाघ ब्या गया। बांझ बारह वर्ष में ब्याही। ब्याने में उसके हाथ पैर टूट गये। मत्स्येन्द्र का शिष्य गोरख-नाथ कहता है।)

यहाँ चींटी सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप का प्रतीक है और हाथी स्थूल भौतिक रूप का प्रतीक है। जब जीव ब्रह्मानुभूति का अनुभव करता है तो सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप में स्थूल भौतिक रूप समा जाता है। यही चींटी के नेत्र में हाथी का समा जाना है। गाय भौतिक जीवन का प्रतीक है और बाघ आध्यात्मिक ज्ञान का प्रतीक है। भौतिक जीवन में ही आध्यात्मिक ज्ञान उत्पन्न होता है। यही गाय के मुख में बाघ का ब्याना हुआ। बांझ मायिक जीवन का प्रतीक है। बांझ के सन्तान नहीं होती, मायिक जीवन भी निष्फल होता है। परन्तु साधना के बाद मायिक जीवन में भी ज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है। यही बांझ का बारह वर्ष में ब्याना हुआ। ज्ञान की उत्पत्ति होने पर माया शक्ति-हीन हो जाती है, यही उसके हाथ पैर टूटना है।

यह ऐसा गोरख-घन्घा है कि जो इसे जानता है, उसके लिए बहुत आसान और जो नहीं जानता, वह उलझ जाता है। कुछ भी सहै, सिद्धों से विरासत में मिली इस 'संधाभाषा' का प्रचार-प्रसार गोरखनाथ ने इस निष्ठा और बहुतायत के साथ किया कि यह शैली-धारा उनके समसामयिक नाथ-सिद्धों से हांती हुई संत-साहित्य तक में निरंतर प्रवाहित होती रही और प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी-साहित्य के सभी काल न्यूनाधिक रूप में गोरखनाथ की इस 'संधाभाषा' के ऋणी हैं। भाषा और आध्यात्मिक दृष्टि से गोरखनाथ की 'संधाभाषा' का बहुत बड़ा महत्त्व है।

३.३ प्रतीकात्मक शब्दावली

भाषा के अध्ययन का उद्देश्य अर्थ की स्पष्टता है अतः शब्द का रूपात्मक अध्ययन जितना अधिक महत्वपूर्ण है उतना ही उसका अर्थपरक अध्ययन भी। गोरख-बानी के अर्थ को समझने में हमारे सामने मुख्यतः दो प्रकार की शब्दावली बाधक बनकर आई है। प्रथम प्रकार के वे शब्द हैं जो गोरखबानी में आध्यात्मिक तत्त्वों के लिए प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुए हैं। गोरखबानी में इनका अर्थ लौकिक-अर्थ से भिन्न है। दूसरे प्रकार की शब्दावली वह है जो सम्प्रदाय विशेष में प्रयुक्त होती है और अपने अन्दर एक परिभाषा को समेटे हुए है। केवल शब्दार्थ से यहाँ काम नहीं चलता। अतः अर्थ की दृष्टि से गोरखबानी की शब्दावली को हम दो भागों में विभक्त करके अध्ययन कर रहे हैं—

१. प्रतीकात्मक शब्द

२. साम्प्रदायिक शब्द

३.३.१. प्रतीकात्मक शब्द

प्रतीकात्मकता से तात्पर्य—गोरखबानी में प्रतीकात्मक शब्द आध्यात्मिक रूपकों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। गोरखबानी के अर्थ अथवा भाव को समझने में सबसे अधिक बाधक गोरखनाथ की उलटबाँसियाँ अथवा आध्यात्मिक रूपक ही हैं, जो प्रतीकात्मक शब्दों में निहित हैं। इन रूपकों का प्रयोग भी अत्यधिक हुआ है। गोरखबानी में आध्यात्मिक रूपकों की कुल संख्या १५३ है जो ११२६ बार प्रयुक्त हुए हैं।^१ जिन प्रतीकों को गोरख ने रूपक अथवा उपमा के माध्यम से स्पष्ट कर दिया है, उनकी संख्या इसमें समाविष्ट नहीं है। आध्यात्मिक रूपकों का इतना अधिक प्रयोग अर्थात्-त्मक दृष्टि से अछूता नहीं रहना चाहिए। गोरखबानी का अर्थ एवं भाव समझने के लिए गोरखनाथ के आध्यात्मिक रूपकों को समझना आवश्यक है। लोक अथवा समाज की सीधी बात को उलटी करके, उलझा करके कहना उलटबाँसी होती है। गोरख कहते हैं—

“आंबलियो थलि मौरियो ऊार नींब बिजौरे फलियो ।
सो फल षांतां लागै मीठो, जांषौ रे जिन गुरु प्रसादै दीठो ॥
ऊँट सिचाणैं जब ग्रह्यौ जाइ कैरो डाली बँठो ।
बांझ बेटा जनमियूँ नेणें पुरिष न दीठो ॥
लाकड़ डूबै सिल तिरै, देषता जग जाइ ।
ऊँट प्रनालै बहि गयो, सुसिल्यो पोली न माइ ॥
डूंगरि मँछा जलि सुसा, पांणीं मैं दौ लागीं ।
अरहट बहै तुमालवां, सूलै कांटा भागा ॥
एक गाइ नौ बछड़ा, पंच दुहेवा जाइ ।
एक फूल सोलह करंडियां मालनि मन मैं हरिष न माइ ॥
पगां बिहूनड़ चोरी कीधी । चोरी न आंणी गाई ।
मछिन्द्र प्रसादै जती गोरख बोल्या, दूझै पाणी न ब्याई ॥”^२

लोक कहता है कि आम के वृक्ष में आम का फल लगता है किन्तु गोरख कहते हैं कि आम के वृक्ष में निबौरी लगे है। लोक कहता है कि निबौरी कड़वी होती है किन्तु गोरख के अनुसार निबौरी मीठी। बाज पक्षी अपने से छोटे पक्षियों को मारकर उन्हें अपना भोजन बना लेता है किन्तु वह पशुओं को तो पकड़ नहीं सकता। गोरख के अनुसार बाज विशालकाय ऊँट को भी पकड़ता है और ऊँट उसके डर से वृक्ष पर चढ़ जाता है। बांझ का अर्थ है जिसके बच्चा पैदा हो ही न सके किन्तु यहाँ बांझ ने बेटे को जन्म दिया और वह भी पुरुष के साथ बिना संसर्ग किये। इस संसार में तो लकड़ी तैरती है और पत्थर डूब जाता है किन्तु गोरख कहते हैं कि लकड़ी डूब जाती है और पत्थर तैरता है। छोटा-सा खरहा एक लम्बे-चौड़े फाटक में भी नहीं समाता। इस

१ डा. रांगेय राघव ने 'गोरखनाथ और उनका युग' में गोरख के केवल ७१ रूपक दिये हैं।

२ गोरखबानी, पद २०

संसार में मछली पानी में रहनी चाहिए और खरहा जमीन पर किन्तु गोरख के अनुसार मछली पहाड़ पर चढ़ जाती है और खरहा जल में प्रवेश कर जाता है। पानी से आग बुझा करती है किन्तु यहाँ पानी में ही आग लग गयी। एक गाय एक समय में एक ही बछड़ा देती है—दो दे सकती है, अधिक नहीं, किन्तु यहाँ एक गाय के नौ बछड़े हैं। उस गाय को एक साथ दुहने वाली भी पांच हैं। एक फूल एक ही करंडिया में रखा जा सकता है। अगर अधिक में रखना है तो तोड़-तोड़ करके रख सकते हैं किन्तु यहाँ तो एक फूल सुरक्षित अवस्था में सोलह करंडियों में रखा हुआ है। बिना पेरों के कोई कैसे चल सकता है किन्तु यहाँ तो बिना पेरों के चोरी तक भी कर ली।

गोरख की इस कविता को समझने के लिए कुछ शब्दों के अर्थ इस प्रकार करने होंगे—

आंबलियौ=मूलाधिष्ठान परब्रह्म, नींव बिजौरै=माया, फलियौ=अध्यारोप हुआ, ऊँट=मन, सिचाण=यम, कैरो डाली=जगत्, बांझ=माया, बेटा=ब्रह्मानुभव, पुरिष=ब्रह्म, लाकड़=संसार से प्रभावित व्यक्ति, सिल=संसार से अप्रभावित व्यक्ति, ऊँट=स्थूल माया, सुसित्यो=सूक्ष्म माया, डूंगरि=उच्च दशा, मंछा=मन, जल=संसार, सुसा=माया, पांणी=संसार या माया, दौं लागा=नष्ट हुआ, अरहट=ब्रह्मानुभूति, तुसालबां=मुमुक्षुओं के लिए, सूल=विद्या, काँटा=अविद्या (माया), एक गाइ=आत्मा, नौ बछड़ा=नवरंघ्र, पंच=पंचेन्द्रियां, एक फूल=अमृतानन्द, सोलह करंडिया=सोलह कलावाला चन्द्रमा, मालनि=आत्मा, पगां बिहूनडै=अचल समाधि से, गार्ई=ब्रह्मानुभूति, दूझ पाणी न ब्याई=आवागमन न हुआ।

फिर इस पद का अर्थ इस प्रकार होगा—‘मूलाधिष्ठान परब्रह्म’ पर माया का अध्यारोप हुआ है किन्तु माया में भी ब्रह्मानुभूति का सुख मिल जाता है। मिलता उन्हीं को है जिन्होंने गुरु के प्रसाद से इसका अनुभव कर लिया है। मायाविष्ट मन यम के शासन में आकर दुःखमय संसार में आवागमन करने लगता है। माया ने ब्रह्म को देखा तक नहीं और फिर भी ब्रह्मानुभव पैदा किया है।

प्रतीकात्मकता के प्रयोग के कारणः—

इस आध्यात्मिक रहस्य को समझाने के लिए गोरख ने इतना झमेला क्यों खड़ा किया? अपनी बात समझाने के लिए लोक-विपरीत पद्धति क्यों अपनाई? हमारे विचार से गोरख की उलटबाँसियों और आध्यात्मिक रूपकों के प्रयोग के कारण निम्न-लिखित हो सकते हैं—

(क) ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि योग-संप्रदाय की और तंत्र-संप्रदाय की रीति यह रही है कि जो श्रेष्ठ है उसको पहले स्थान देना चाहिए और कम श्रेष्ठ को बाद में। जैसे, मोक्ष-धर्म अर्थ—काम; संन्यास-वानप्रस्थ-गार्ह्यस्थ-ब्रह्मचर्य; शान्त-कृष्ण-अद्भुत-वीर-रोद्र-हास्य-भयानक-बीभत्स-शृंगार-इत्यादि। यह ठीक भी है किन्तु लोक का क्रम ऐसा नहीं है। वह ठीक इसके उल्टा है। योगियों और तांत्रिकों की इस उल्टी रीति का परिणाम यह हुआ कि उन्हें लोक रीति से उल्टी

बात कहने की आदत पड़ गयी है।¹ विरोधाभास का यही चसका गोरखनाथ को भी लगा हुआ था। इसी कारण सीधी बात को भी उल्टी करके, जटिल करके उन्होंने कहा है। फिर चाहे भाव अधिक गंभीर हो क्यों न हो जाये। नीचे देखिए—

चींटी केरा नेत्र में गज्येंद्र समाइला,
गावडी के मुष में बाघला बिवाइला,
बारें बरसें बंझ ब्याई, हाथ पाव टूटा,
बदंत गोरखनाथ मछिंद ना पूता।²

चींटी के नेत्र में हाथी समा गया। गाय के मुख में बाघ ब्या गया। बांझ बारह वर्ष में ब्याई। ब्याने में उसके हाथ-पैर टूट गए। जितनी अधिक नीक-विपरीत बात हो सकती है, वह गोरख ने कही है। ऐसी कविताओं का वास्तविक अर्थ जानना आसान नहीं है।

यहाँ चींटी सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप का प्रतीक है और हाथी स्थूल भौतिक रूप का प्रतीक है। जब जीव ब्रह्मरंध्र में ब्रह्मानुभूति प्राप्त करता है तो सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप में स्थूल भौतिक रूप समा जाता है। यही चींटी के नेत्र में हाथी का समा जाना है।

अहरणि नाद नै ब्यंद हथोड़ा, रवि ससि षालां पवनं ।
मूल चापि डिढ आसणि बैठा, तब मिटि गया आवागवनं ।
सहज पलांण पवन करि घोड़ा, लै लगाम चित चबका ।
चेतनि असवार ग्यांन गुरू करि, और तजौ सब ढबकाई।³

(अनाहद नाद अहरन है, बिन्दु (शुक्र) हथोड़ा है और इला-पिगला दोनों नाड़ियाँ हवा करने की धोंकनी हैं। मूलाधार को दबाकर दृढ़ आसन से बैठो, जिससे संसार का आवागमन मिट जाएगा।

सहज की जीन और पवन का घोड़ा बनाओ। लय की लगाम और चित्त को चाबुक बनाओ। इस प्रकार चेतना को सवार बनाकर गुरु ज्ञान तक पहुँचो, अन्य सभी उपायों को छोड़ दो।)

(ख) गोरखनाथ के समय में भारतीय धर्म साधना की अवस्था विचित्र थी। पूर्ववर्ती और समसामयिक सिद्धों में अनेक कुरीतियाँ और रूढ़ियाँ घर किए हुए थीं। गोरखनाथ इन सबके लिए एक प्रतिद्वन्द्वी के रूप में पैदा हुए थे। अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करने के लिए गोरखनाथ ने उन्हें ललकारा और यत्र-तत्र अभिव्यंजना के दुरुह माध्यम को अपनाया। गोरखनाथ ने अपनी बात को इस तरह कहा है कि अच्छे-अच्छे पंडित चक्कर खा गए—

- 1 कबीर-डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८०
- 2 गोरखबानी, पृ० १२६।
- 3 गोरखबानी, पृ० १३०।

बूझी पंडित ब्रह्म गियांनं, गोरख बोलै जाण सुजानं ।
बीज बिन निसपती मूल बिन बिरषा पांन फूल बिन फलिया ।
बांझ केरा बालूड़ा, प्यंगुल तरवरि चढ़िया ।
गगन बिना चंद्रम ब्राह्मांड बिन सूर, झुझ बिन रचिया थानं ।
ए परमारथ जे नर जाणै, ता घटि परम गियांनं ।¹

गोरखनाथ पंडितों को चुनौती देते हुए कहते हैं—‘हे पंडित ! ब्रह्मज्ञान को समझो । सुज्ञानी गोरखनाथ ब्रह्मज्ञान का वर्णन करता है । उसकी उत्पत्ति बिना बीज के हुई है । वह बिना मूल का वृक्ष है । बिना पत्तों और फूलों के फल जाता है । वह बंध्या का बालक है । लंगड़ा होते हुए भी वृक्ष पर चढ़ा हुआ है । वह बिना आकाश का चन्द्रमा है और बिना ब्रह्माण्ड का सूर्य है । वह बिना मैदान के ही युद्ध है । इस परमार्थ को जो जानता है, ज्ञान उसी के भीतर उदित होता है ।’

गोरख ने अन्य अनेक आध्यात्मिक सिद्धान्तों को इसी प्रकार जटिल बनाकर पंडितों के सामने रखा । जटिलता की इस शैली में ही आध्यात्मिक रूपकों का प्रयोग हुआ है । इस जटिलता के कारण ही सिद्धों की भाषा को पुराने लोगों ने ‘संघ्या-भाषा’ कहा है ।²

(ग) नाथपंथी योगियों की अद्भुत करामातों से साधारण जनता चकित और भयभीत रहती थी । गोरखनाथ ने जनसाधारण पर अपना प्रभुत्व एवं भय अधिक करने के लिए भी इस शैली को अपनाया है । गोरखनाथ को तो ऐसी उल्टी चर्चा करनी है कि जनसाधारण उसे सुनकर चमत्कृत हो उठे—

नाथ बोलै भमृत बांणीं बरिषैगी कंवली भीजैगा पांणीं ।
गाड़ि पडरवा बांघिले षूटा, चलै दमांमां बाजिले ऊँटा ।

1 गोरखबानी, पृ. १०८ ।

2 (क) ‘सिद्धों ने भाषा में कविता करके यद्यपि अपने विचारों को जनता के समझने लायक बना दिया, तथापि डर था कि विरोधी उनके आचार-विरोधी कर्म-कलाप का खुलेआम विरोध कर कहीं जनता में घृणा का भाव न पैदा कर दें, इसीलिए वह एक तो विशेष योग्यता-प्राप्त व्यक्तियों को ही उन्हें सुनने का अवसर देते थे, दूसरे भाषा भी ऐसी रखते थे, जिसका अर्थ वामाचार और योगाचार, दोनों में लग जाये । इसे भाषा को पुराने लोगों ने ‘संघ्या भाषा’ कहा है, और आजकल ‘निर्गुण’, ‘रहस्यवाद’ या ‘छायावाद’ कह सकते हैं ।’
(पुरातत्व-निबन्धावली-राहुल सांकृत्यायन, पृ. १६)

(ख) डा. दयानन्द श्रोवास्तव ने ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ में प्रतीकार्थों को संघ्या अर्थ कहकर उदाहरण दिए हैं । दे. पृ. १६६

(ग) डा. रामकुमार वर्मा ‘संघ्या भाषा’ का दूसरा अर्थ लेते हैं—‘भरे विचार से तो संघ्या भाषा का सीधा-सादा अर्थ यही है कि वह भाषा जो अपभ्रंश के संघ्याकाल या ‘समाप्त होने वाले काल में लिखी गई ।’ (—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ६७)

(घ) ‘सहज्यानियों में इस प्रकार की उल्टी बानियों का नाम ‘संघ्या-भाषा’ प्रचलित था ।’
(कबीर—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ८२)

कउवा कौ डाली पीपल बामँ मूसा के सबद बिलइया नासै ।
 चले बटावा थाकी बाट, सोवै डुकरिया ठौर पाट ।
 दूकिले कूकर भूकिले चोर, काढै धणीं पुकारै दोर ।
 ऊँजड़ षेड़ा नगर मझारी तलि गागरि ऊपर पनिहारी ।
 मगरी परि चूल्हा धूँधार्ई, पोवणहारा कौं रोटी पाइ ।
 कामिनी जले अंगीठी तापै, बिचि बैसन्दर धरहर कापै ।
 एक जु रदिया रदती आई, बहू बिवाई सामू जाई ।
 नगरी कौ पाँणी कूई आवै, उलटी चरचा गोरष गावै ।

अगर इस आध्यात्मिक चर्चा को सीधा कर दिया जाय तो इस प्रकार कहा जा सकता है—‘गोरखनाथ अमृतमयी वाणी से कहता है—जोगी के दैहिक और मानसिक कर्म शुद्ध होकर अस्तित्व को नम बना देंगे । माया से उत्पन्न अविवेक को स्थिर करके माया का विरोध कर लो । अताहत नाद निरन्तर सुनाई दे रहा है जिससे स्थूल मन बाजे की तरह बजाया जा रहा है । अविवेकी मन उच्च अवस्था को प्राप्त करके ही ब्रह्मानुभव करता है । सूक्ष्म अन्तर्मुखी जीवन से माया भागने लगती है ज्ञान मार्ग पर चलने से मोक्ष प्राप्त होता है और इस प्रकार मार्ग ही समाप्त हो जाता है । माया जब निर्बल पड़ जाती है तो आध्यात्मिक जीवन उसे दबा लेता है । द्रोही मन के छिप जाने पर ही आत्मज्ञान प्रबल होता है । इंद्रियों नवरंघ आदि में बसी हुई जो माया कौ नगरी थी वह सब उजड़ा गाँव सी हो गयी है, इन्द्रियाँ अब वैभव हीन हो गयी हैं, उन्हें अब विषयों का खाद्य नहीं मिलता है । इस शरीर में आत्मा ब्रह्मरंघ में ऊपर रहती है और कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार में रहती है । जीव को जब वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो गया है तो वह ताप रहित हो गया है और माया नष्ट हो रही है । ब्रह्मानुभूति होने पर जीव माया को खा जाता है । ब्रह्म साक्षात्कार के कारण माया जल रही है और जीवात्मा को ब्रह्मसुख प्राप्त हो रहा है । जलती हुई माया ब्रह्माग्नि में धर-धर काँप रही है, क्योंकि उसे पूर्ण नष्ट होने का भय है । इड़ लगन और साधना से मायिक उलझन ब्रह्मसत्ता को जन्म देती है । कुण्डलिनी शक्ति ब्रह्मरंघ से निकल कर मूलाधार चक्र में स्थित है । योगी अपनी साधना से उसे उलट कर फिर उसी स्थान पर पहुँचा देता है ।’

इस आध्यात्मिक चर्चा को उल्टा करके कहने में जनसाधारण को चमत्कृत करने की भावना ही निहित है । अन्य नाथ सिद्धों तथा संत-कवियों में भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है । कहीं-कहीं तो प्रतीक-योजनाओं में पर्याप्त साम्य दिखाई देता है ¹

1 (अ) एक अचंभा ऐसा हुआ, गागरि माँहि उसारवा क्वा ।

बोछी लेज पहुँचै नाहीं, लोक प्यासा मरि मरि जाही ।

—जलंधरी पाव जी की सबंधी (नाथ सिद्धों की बानियाँ, पृ० ५२)

(आ) ‘पाताल की मीडकी अकासी जल बजावै ।

चंद सूरिज मिलै गंग जमन गीत गावै ॥

प्रतीकात्मक शब्दावली का विभाजन

गोरखबानी में प्रयुक्त सम्पूर्ण आध्यात्मिक रूपकों को हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं— (क) आध्यात्मिक तत्त्व के लिए विभिन्न लौकिक शब्द । (ख) विभिन्न आध्यात्मिक तत्त्वों के लिए एक लौकिक शब्द (अनेकार्थी स्थिति) और (ग) एक आध्यात्मिक तत्त्व के लिए एक ही लौकिक शब्द (एकार्थी स्थिति) (क) एक आध्यात्मिक तत्त्व के लिए विभिन्न लौकिक शब्द

माया—गोरखबानी में ४६ ऐसे आध्यात्मिक तत्त्व हैं जिनके लिए एक से अधिक लौकिक शब्दों का प्रयोग हुआ है । सबसे अधिक 'माया' के लिए ४० लौकिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं । माया के लिए सर्वाधिक प्रयुक्त प्रतीक 'बाघनी' है । बाणी में यह शब्द १२ बार प्रयुक्त हुआ है । माया स्त्री रूपिणी होते हुए भी अत्यधिक प्रबल है । बाघनी तो चलते-फिरते पर भी हाथ सफ कर जाती है फिर जो लोग बाघनी को घर में ही पालते हैं वे कैसे बच सकते हैं—

दिन दिन बाघनी सीया लागी, राति सरीर सोषै ।

बिषै लुबधौ तत न ब्रूझै, घरि लै बाघनी पोषै ॥^२

अधिक शक्तिशाली होने के कारण गोरख ने उसे 'स्यंघ' (शेर) भी कहा है । सर्प का काम डसना होता है; माया भी सर्प की भाँति जीव को डसती रहती है इसीलिए उसे 'सरप', 'काली नागनी' तथा 'स्रपणी' (६ बार) कहा है । जीव एक घूँहे के समान है । घूँहा बिल्ली का भोजन होता है । जीव माया का भोजन है अतः माया को 'बिलइया' (२ बार) से संकेतित किया है । बिल्ली चुपके-से, धोखे में बार करती है—माया का आक्रमण भी दृष्टिगत नहीं होता । माया को आत्मा के समक्ष तो तुच्छ ही माना जाएगा । आत्मा एक शक्तिशाली बाघ के समान है । इसलिए माया को 'गाय' कहा है । गाय तो वैसे ही सीधेपन के लिए प्रसिद्ध है फिर शेर के सामने तो वह और भी तुच्छ है । आत्मा के ही समक्ष तुच्छता के अर्थ में माया को 'चींटी' भी कहा गया है । यहाँ आत्मा पर्वत के समान है । गाय और शेर तथा चींटी और पर्वत के जोड़े सामि-प्राय प्रयुक्त हुए हैं । माया दो प्रकार की होती है—एक स्थूल माया और दूसरी सूक्ष्म माया । गोरखनाथ ने स्थूल माया के लिए 'ऊँट' तथा सूक्ष्म माया के लिए 'सुसिल्यो' (३ बार) शब्दों का प्रयोग किया है । स्थूलकाय ऊँट के सामने खरहा सूक्ष्मकाय जीव ही कहा जाएगा । माया के दो रूप हैं—एक विद्यामाया और दूसरा अविद्यामाया ।

सकल ब्रह्मंड उलटि अधर नाचै डीव ।

सति सति भाषंत सिध गरीव ॥'

—सिध गरीव जी की सबदी (नाथ सिद्धों की बानियाँ, पृ० १३)

(इ) 'तरवर एक पींड बिन ठाढ़ा बिन फूलां फल लागी ।

साखा पत्र कछु नहिं बाकै अष्ठ गगन मुख बागा ॥'

—कबीर ग्रंथावली—डा. पारसनाथ तिवारी, पृ. १०८/३

जिस प्रकार कांटे से कांटा निकलता है उसी प्रकार विद्यामाया से अविद्यामाया को नष्ट किया जाता है। इसीलिए विद्यामाया के लिए 'सूल' तथा अविद्यामाया के लिए 'बाँटा' शब्दों का प्रयोग हुआ है—'सूलें कांटा भागा'^१ सूल (विद्यामाया) से कांटा (अविद्यामाया) नष्ट हुआ। विद्यामाया के लिए अन्यत्र 'बूढ़ी' शब्द का प्रयोग हुआ है। युवती नारी पुरुष के लिए एक आकर्षण है किन्तु बूढ़ी होने पर उसमें मातृत्व की भावना आ जाती है। विद्यामाया भी मोक्षदायिनी होती है। जीव माया से बँधा हुआ है इसलिए माया एक 'खूँटा' के समान हुई। निबोरी कड़वी होती है, माया का स्वाद भी तत्त्वतः कड़वा ही होता है अतः माया को 'नीब बिजौरै' कहा गया है। आत्मतत्त्व एक बेल के समान है, संसार के दुःख अग्नि के समान हैं। माया बेल की नई-नई कोपलें हैं। बेल जैसे-जैसे चलती है वैसे-वैसे नई कोपलें उसमें विकसित होती हैं—सांसारिक दुःख माया के प्रसार के लिए बहुत अनुकूल हैं। 'जिम जिम बेलीं दाझवा लागी, तब मेल्है कूपल डाला'^२ (२ बार)। लाल-लाल नई-नई कोपलें बहुत ही आकर्षक होती हैं—माया भी आकर्षक है। माया का प्रसार बहुत बड़ा है इसी कारण उसे 'तरवर' कहा है। अत्यधिक प्रसार के कारण ही असत्य माया को 'बेल्यो' अथवा 'बेली' (३ बार) कहा गया है। कोयल का आम से सगा सम्बन्ध है। इधर आम बौरा उधर कोयल का कुहू कूजन प्रारम्भ हुआ। मनोवृत्ति कोयल के समान है, इसी कारण माया 'अबिला' (आम) अथवा 'आंबो' (आम) के समान हुई। किन्तु ज्ञानोदय होने पर मनोवृत्तियाँ अन्तर्मुखी होकर अपने में ही आनन्द का अनुभव करने लगती हैं फिर माया की कोई आवश्यकता नहीं। यहाँ तो कोयल ही बौरने लगी, फिर आम की क्या आवश्यकता? चलि रे अबिला कोयल मोरी।^३ इसी प्रकार की एक उलट-बाँसी में मोर बरसता है और सावन कूकता है (बरपै मोर कहूँ सावण)।^४ यहाँ मन तो मोर है माया सावन है। साधारण स्थिति में सावन बरसता है और मोर कूकता है या यों कहिए कि माया के प्रसार से मन प्रसन्न होता है किन्तु आत्म-ज्ञान होने पर माया अपने जगत् के रूपों की ओर चल देती है और मन अपनी बहिर्मुखी वृत्तियों की वर्षा अर्थात् त्याग कर देता है। माया जीव को जलाने का काम करती है इसलिए उसे 'चूल्हा' कहा गया है। जल का काम डुबाना है, माया में भी जीव डूबा रहता है अतः माया को 'जल' कहा है। लंका राक्षसों की नगरी है; वहाँ जाकर बचना असंभव है। माया के जालों से बचना असंभव है अतः माया को 'लंका' कहा है, माया में फँसे जीव को संशयात्मा कहते हैं। मायावी जीव सदैव शक्ति रहता है इसलिए माया को 'संवया' (शंका) कहा है। अंजन कालिमा युक्त होता है फिर भी वह आकर्षक है।

१ गोरखवानी, पृ० ३०

२ वही, पृ० १०७

३ वही, पृ० १५२

४ वही पृ० २११

माया भी दोष युक्त है किन्तु आकर्षक है इसलिए माया को 'अंजन' कहा गया है। ब्रह्म माया से निलिप्त होता है इसलिए उसे निरंजन कहते हैं। जहाँ मेंढक टर-टर की रट लगा रहा हो वहाँ किसी काम में ध्यान लगाना कठिन है। माया में बीच रहकर ब्रह्म का ध्यान लगाना कठिन है। इसीलिए माया को 'दुदर' (दादुर) कहा है। देवी पर बकरे की बलि चढ़ाई जाती है, माया पर न जाने कितने बुद्ध अपनी बलि चढ़ाया करते हैं। इसीलिए माया 'देवी' हुई। गोरखनाथ ने माया को सबसे अधिक शक्ति के रूप में देखा है। स्त्री के दो रूप होते हैं, एक मनमोहक तथा आकर्षक और दूसरा घृणात्मक। माया में लिप्त जीव के लिए माया आकर्षक है और एक योगी के लिए घृणात्मक। जहाँ माया का मनमोहक रूप चित्रित करना है वहाँ गोरखनाथ ने उसे 'सुन्दर', 'कामनि' कहा है और जहाँ माया का घृणात्मक रूप चित्रित करता है वहाँ उसे 'रांडी', 'बेस्या' तथा 'निरगुण नारी' कहा है। बाँझ उस औरत को कहते हैं जिसके सन्तान न हो सके। माया भी तत्त्वतः निष्फल होती है इसी कारण माया को 'बाँझ' कहा है। एक उलटबाँसी में 'सोवै डुकरिया ठौरं पाट'¹ (बुढ़ी औरत के ऊपर खाट सोती है।) खाट एक आध्यात्मिक जीवन के समान है नारी माया के समान। आत्मिक ज्ञान के कारण जब माया निर्बल पड़ जाती है तो आध्यात्मिक जीवन उस पर हावी हो जाता है, यही 'डुकरिया' के ऊपर खाट का सोना हुआ। 'डुकरिया' में माया की निर्बलता का भाव छिपा हुआ है। मायिक जीवन में जीव माया का पुत्र है। ब्रह्मानुभूति जीव की पत्नी है तो माया ब्रह्मानुभूति की सास हुई। इसीलिए माया को 'सासूड़ी' (सास) कहा गया है। यह सम्पूर्ण सृष्टि माया से ही उत्पन्न है अतः इसे 'माई' (२ बार) अथवा 'माता' कहा गया है। इस संसार में जितने विभेद हैं वे सब माया के बनाए हुए हैं और उन विभेद-वस्तुओं को बनाकर माया फिर नष्ट कर देती है। इसी कारण माया को 'पोवणहारी' (रोटी बनाने वाली) कहा है। एक उलटबाँसी में 'रत्ती का काम मासे की चोरी (रत्ती के काम में से मासे की चोरी)² में माया को रत्ती कहा गया है और आत्मतत्त्व को मासा। ज्ञानोदय होने पर मायिक जीवन में ही आत्मतत्त्व प्राप्त हो जाता है।

जगत् — जगत् के लिए तीन प्रतीकों का प्रयोग हुआ है—'कैरो डाली' (२ बार), 'रेंणि' तथा 'जलि'। करील का वृक्ष कटोला होता है, यह संसार भी दुःखों से भरा हुआ है अतः इसे 'कैरो डाली' कहा गया है। इस संसार में जं व अज्ञान की नींद में सोया रहता है। संसार को 'रेंणि' कहा है। संसार में विषयी लोग डूबे रहते हैं इसलिए सागर संसार का समानधर्मी है। सागर में जल होता है इसलिए संसार को सागर न कहकर गोरख ने जल ही कह दिया है। यहाँ जल सागर का वाची है।

ब्रह्म — ब्रह्म के लिए गोरखनाथ ने २२ रूपकों का प्रयोग किया है। गोरखनाथ ने भी अन्तर्यामी ब्रह्म को 'पुरिष' (५ बार), 'परमपुरुष' (२ बार), 'महापुरिष',

1 गोरखबानी, पृ० ५४१

2 वही, पृ० ६२

‘अलष पुरिष’ (३ बार) तथा ‘प्रांण पुरिष’ कहा है। परब्रह्म इस संसार का स्वामी है इसी कारण गोरख ने उसे ‘नाथ’, ‘नाथसतगुरु’ तथा ‘जगन्नाथ’ कहा है। जो कुछ इस ब्रह्माण्ड में है वही इस पिण्ड में है। षट्चक्रों के ऊपर मस्तिष्क में जो शून्यचक्र है वही इस पिण्ड का कैलास है। परमपुरुष से उद्बुद्ध होकर शक्ति-रूपी कुण्डलिनी इस शून्य चक्र में ही समागम करती है। इसलिए गोरखनाथ ने ब्रह्म के लिए शिव अथवा शिव के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है, जैसे—‘सीव’ (३ बार), ‘सदासिव’ ‘केदार’, ‘देव’ (२ बार) तथा ‘अच्यंत’। ब्रह्म का ज्ञान आत्मा को ही होता है। हीरा को आत्मा के समान कहा है इसलिए ब्रह्म को ‘सेत फटक मनि’ कहा है। ब्रह्म के दोप्त होने पर ज्ञान का उजाला हो जाता है इसी कारण ब्रह्म को ‘दोपक’ (२ बार) कहा गया है। संसार के पदार्थ दृष्ट हैं और परमात्मा अदृष्ट है। यहाँ परमात्मा को उसके विशेषण ‘अदिष्टि’ से ही सूचित कर दिया है। आम के फल का स्वाद मीठा होता है, इसलिए ब्रह्म को ‘आंबलियो’ कहा है। इस पंच भौतिक शरीर को ‘घर’ कहते हैं। परब्रह्म पंचभूतों से परे है। अतः उसे ‘अघर’ कहा है। एक उलटबांसी में गोरखनाथ ने सुनार का काम करते हुए एक रत्ती सोने में से एक मासे की चोरी कर ली। रत्ती छोटी होती है और मासा बड़ा, यही तो उलटबांसी का रहस्य है। रत्ती माया है और ‘मासा’ परब्रह्म। इस छोटे से मायामयी शरीर में परब्रह्म की खोज करना ही योगियों का साध्य आदर्श है ?

जीवात्मा—जीवात्मा के लिए गोरखनाथ ने २४ लौकिक शब्दों का प्रयोग किया है। जीवात्मा को ‘हंस’ कहा गया है। हंस का रंग सफेद होता है वह स्वच्छता का प्रतीक है। जीवात्मा भी शुद्ध है। हंस अपनी तेज चाल के लिए प्रसिद्ध है; जीवात्मा भी इस शरीर को त्यागकर इतना शीघ्र जाता है कि पता नहीं लगता कहाँ गया, कब गया। जीवात्मा इस शरीर में माया के चक्कर में पड़ा हुआ है। माया एक नागिन के समान है। रौटी आत्मानुभूति है इसलिए ‘कागा’ जीवात्मा के समान हुआ। इस शरीर में तो आत्मा ऐसे ही रहती है जैसे पिंजड़े में तोता। यह शरीर सात धातुओं का एक पिंजड़ा है अतः आत्मा इसके अन्दर रहने वाला ‘सुवा’ हुआ। नवरंघ तथा पंचेन्द्रियाँ आध्यात्मिक शक्ति का पान करती रहती हैं अतः आत्मा की शक्तियाँ विकसित नहीं होने पातीं। नवरंघ नौ बछड़े हैं तथा पंचेन्द्रियाँ दूध दुहने वाली हैं इसलिए आत्मा को ‘गाय’ (२ बार) कहा है। ‘गायां बाघ बिडार्याजी’ गाय ने बाघ को दुर्दशा कर दी।) यहाँ बाघ शब्द सबल आत्मा का द्योतक है। यह अज्ञानमय जीवन रात्रि के समान है। छोटा बच्चा रात्रि के अंधकार में रोता है और अंधकार से प्रकाश में जाना चाहता है। ‘बालक’ इस आत्मा का प्रतीक है। आत्मा को बालक इसलिए कहा है कि बालक की तरह आत्मा भी शुद्ध होती है। आत्मा को ‘ब्रह्मचारी’ इसलिए कहा है कि एक तो आत्मा ब्रह्म का आचरण करती है और दूसरे ब्रह्मचारी जिस प्रकार वीर्य को रक्षित रखता है उसी प्रकार आत्मा भी अपने मूल रूप को सुरक्षित रखती है। मन एक मदमस्त हाथी के समान है जो भागना चाहता है। आत्मा एक

‘राजा’ (२ बार) के समान है जो उस हाथी को वश में रखता है। योगाभ्यास से ब्रह्मरंध्र के चन्द्रमा में व्याप्त अमृत प्राप्त हो जाता है। यह अमृतानन्द एक फूल के समान है। अतः इस फूल को प्राप्त कर प्रसन्न होने वाली ‘मालिन’ आत्मा हुई। एक उलटबांसी में ‘तलि गागरि ऊपर पनिहारी’ (नीचे गागर और ऊपर पनिहारिन) में कुण्डलिनी को गागर कहा है और आत्मा को —पनिहारी’ कहा है। आत्मा को ‘पांगुल’ इसलिए कहा है कि ब्रह्म साक्षात्कार से आत्मा अपने को इन्द्रियों से हीन समझने लगती है या इन्द्रियाँ बेकाम हो जाती हैं जीव माया के त्रयताप से जलता रहता है। माया एक चूल्हे के समान है इसलिए जीवात्मा ‘मगरी’ (लकड़ी) के समान हुआ। तुच्छ माया महत्वपूर्ण आत्मा को दबाए रहती है। माया एक चींटी से अधिक नहीं किन्तु जीवात्मा तो एक ‘पर्वत’ के समान है। चींटी ने पर्वत को गिरा दिया—यही तो आश्चर्य है। आत्मा ही परमात्मा का साक्षात्कार करती है। ब्रह्मरंध्र में आसन लगाकर बालयोगी जब ध्यानस्थ होकर बैठ जाता है तो आत्मा उसी प्रकार मद के प्याले पीती है जैसे कि कोई राजा। इसी कारण आत्मा को यहाँ ‘चेतनि रावल’ कहा है।

जीवन—गोरखनाथ ने जीवन के लिए कुल ६ रूपों का प्रयोग किया है। मानव जीवन एक वास्तविकता नहीं है—वह अज्ञान है। परम्पराओं के अनुसार शरीर को दीपक, आयु को तेल तथा जीवन को शिखा कहते आए हैं। गोरखनाथ ने एक स्थान पर जीवन को दीपक कहा है—‘घूँट तेल न बूझ दीया’ (जब तक आयु रूपी तेल समाप्त नहीं होता तब तक दीपक नहीं बुझता।) लक्षणा से दीपक का तात्पर्य दीपशिखा है। जिस प्रकार चूहा बिल्ली के सामने तुच्छ है उसी प्रकार यह जीवन माया के सामने तुच्छ है किन्तु सूक्ष्म अन्तर्मुखी जीवन के सामने माया की हार हो जाती है इसीलिए गोरख कहते हैं—‘भूँसा’ के संवाद बिलइया नासै।’ चूहे (सूक्ष्म अन्तर्मुखी जीवन) के शब्द से बिल्ली (माया) नष्ट हो जाती है। शेर गाय को मार सकता है, आध्यात्मिक ज्ञान भीति ६ जीवन को नष्ट कर सकता है इसलिए जहाँ शेर आध्यात्मिक ज्ञान का प्रतीक है वहाँ ‘गावडी’ भौतिक जीवन का प्रतीक है। एक उलटबांसी में गोरख कहते हैं—‘गऊ पद मांही पढोकर फदकै’ (गोपद में तालाब तरंगित हो रहा है।) यहाँ ‘गऊ पद’ सूक्ष्म आध्यात्मिक जीवन के समान है तथा पढोकर स्थूल अस्तित्व के समान।

मन—मन के लिए ११ रूपों का प्रयोग किया है। सबसे अधिक ८ बार मन का प्रतीक मृग माना है। जैसे ‘मृगला’। चांचल्य एवं भटकाव धर्म के समान होने से मन को मृग कहा है। कालान्तर में मन का विशेषण ‘चंचल’ ही मन का पर्याय हो गया और गोरख ने मन के लिए ‘चंचल’ (२ बार) शब्द का प्रयोग किया है। योगियों के वेष में अन्य वस्तुओं के साथ ही साथ ‘जोगोटा’ भी आता है। गोरख ने ‘जोगोटा’ को मन के लिए प्रयुक्त किया है। मदमस्त हाथी को वश में करना आसान नहीं है। मन को वश में करना भी सरल काम नहीं है। अतः मन को ‘हरितय’ (२ बार) कहा

गया है। साधना के द्वारा मन की बाह्य वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर लेता है। मछली पकड़ने के लिए बगला भी अन्तर्मुखी ध्यानस्थ हो जाता है इसलिए मन को 'बगु' कहा गया है। वर्षा में मोर नाचता है, आनन्द मनाता है। माया के सम्पर्क से मन भी आनन्दित होता है। अतः मन को 'मोर' तथा 'भर्य' कहा है। इसी भाव को लेकर 'दादुर' भी कहा गया है। एक उलटबांसी में मन को 'ऊँट' कहा गया है। स्थूल-काय उँट स्थूल मन का सूचक है। स्थूलता के आधार पर 'ऊँटा' भी कहा गया है। कुत्ता द्रोही होता है वह किसी को भी देखकर भौंकने लगता है, पास नहीं आने देता। मन भी द्रोही है—वह आत्मज्ञान को पास नहीं आने देता। अतः मन को 'कूकर' कहा गया है। कौआ एक छुद्र पक्षी है, वह अविवेकी है, उसे ग्राह्याग्राह्य का विचार नहीं है। मन भी अविवेकी है। अतः मन को 'कउआ' कहा गया है। मछली सदैव पानी में ही रहती है। बिना जल के उसका जीवन ही असम्भव है। मन भी माया रूपी जल में ही पड़ा रहता है, उससे बाहर उसकी गति नहीं है इसलिए मन को 'मंछा' कहा है।

मनसा—मन में जो इच्छा उत्पन्न होती है उसे मनसा कहते हैं। गोरखनाथ ने मनसा को ५ प्रतीकों से प्रकट किया है—'कोयल' (२ बार), 'तृया', 'भेंसि', 'नदी' तथा 'सिंघ'। कोयल काली होती है किन्तु मीठा बोलती है। मन में उठने वाली इच्छाएँ भी कलुषित होती हैं किन्तु मन को मीठी लगती हैं। इसलिए मनसा को कोयल कहा है। मनसा इन्द्रियों को बलवती बनाती है इसलिए मनसा को इन्द्रियाँ 'तृया' (स्त्री) कहा है। उसी प्रकार मनोवृत्तियों के सामने शान्त प्रकृति दबीदबी सी रहती है। अतः मनसा को शेर कहा है।

चेतना—योगी की चेतना योग साधना में काम देती है। योगी अचेत हुआ और साधना असफल हुई। चेतना के लिए गोरख ने तीन रूपकों का प्रयोग किया है 'मछलड़ी' 'बावन बीर' तथा 'छैल'। मायिक अहंकार एक बगुले के समान है तो चेतना एक मछली के समान हुई। बावन बीर का अर्थ है बीना-एक छोटा-सा आदमी। छोटा-सा आदमी बड़ा काम नहीं कर सकता किन्तु एक उलटबांसी में बावन बीर तीन सौ साठ थैलियों का इक्कीस हजार छः सौ (२१६००) धागों से एक कंथा तैयार करता है। यहाँ ३६० थैलियाँ ही शरीर की हड्डियाँ हैं। २१६०० धागे ही दिनभर की साँसें हैं, कंथा ही यह शरीर है और बावन बीर ही चेतना है। छैला या रसिया नींद के न होने पर ही अपनी प्रवृत्ति में सक्रिय रहता है। चेतना भी नींद के चले जाने पर सक्रिय रहती है। इसीलिए चेतना को छैल कहा गया है।

अहंकार—अहंकार के लिए गोरखनाथ ने चार रूपकों का प्रयोग किया है—'मगरमच्छ' 'विषहर' 'पिता' 'बगलों'। शक्ति और घातकता के समान धर्म के कारण अहंकार को मगरमच्छ कहा गया है, सर्प के काटने से जैसे तुरन्त जहर सारे शरीर में फैल जाता है और मानव-जीवन विपत्ति में पड़ जाता है उसी प्रकार अहंकार का

प्रभाव सारे शरीर में तुरन्त फैल जाता है और ज्ञान नष्ट हो जाता है। बाप-बेटो का सम्बन्ध स्थापित करते हुए अहंकार को पिता तथा पड़रिपुओं को उसके बच्चे कहा है। अहंकार अन्य अनेक विकारों को उत्पन्न करने वाला होता है। जिस प्रकार बगुला मछली को निगल जाता है उसी प्रकार अहंकार चेतना को समाप्त कर देता है। इसलिए अहंकार को 'बगला' कहा है।

ज्ञान—ज्ञान के लिए १८ रूपकों का प्रयोग हुआ है। गोरख ने ज्ञान के लिए 'दीपक' 'उजाला' 'प्रकाश' 'ज्योति' 'दौ', 'अग्नि' तथा 'ब्रह्म अग्नि' शब्दों का प्रयोग किया है। इसलिए उसे 'हीरा' 'मोती' 'माणिक' 'स्वातिबूंद' कहा है। स्वातिबूंद का अर्थ यहाँ लक्षणा से मोती है। ज्ञान को 'मतीरा' कहा गया है। मतीरा का अर्थ है तरबूज, जो शीतलता दायक होता है। ज्ञान भी अहंकार आदि को नष्ट कर शान्ति और परमानन्द की प्राप्ति कराता है। आनन्ददायक, सात्विक और महत्त्वपूर्ण होने के कारण ज्ञान को 'माणिक' कहा गया है। ज्ञान को 'अषाढ़ा' इसलिए कहा गया है कि साधक ज्ञान के अखाड़े में ही सांसारिक भोगों को परास्त करता है। एक उलटबांसी में गोरख ने 'गावड़ी' के मुख में बाघलां विवाइला (गाय के मुख में बाघ बिआ गया) कहा है। गाय भौतिक जीवन है और बाघ ज्ञान है, ज्ञान भौतिक जीवन में ही उत्पन्न हो जाता है। यही गाय के मुख में बाघ का बियाना हुआ। 'कटार' किसी वस्तु को काटने का काम करती है। ज्ञान से पंच ज्ञानेन्द्रियाँ काटी जाती हैं इसलिए ज्ञान को कटार कहा गया है। मन एक कुत्ते की तरह रखवाली करता रहता है और इस शरीर में ज्ञान को नहीं आने देता। मन कुत्ते के रहते हुए, ज्ञान इस शरीर में ऐसे ही आता है जैसे 'चोर'। यहाँ चोर शब्द निष्कृष्ट भाव में प्रयुक्त नहीं हुआ है। फिर भी ज्ञान मन के लिए तो चोर है ही।

यमराज—गोरखनाथ ने यमराज के लिए तीन रूपकों का प्रयोग किया है। 'सिचाण' (बाज) 'सूद्र' तथा सुसुपाल (शिशुपाल)। बाज निर्दयी, शक्तिशाली, एवं भयानक होता है। अन्य पक्षियों को दाँव लगने पर झपट्टा मारकर ले जाता है। बाज के आक्रमण का पूर्व ज्ञान पक्षियों को नहीं होता। इसी प्रकार यमराज भी संसार के प्रत्येक प्राणी पर अचानक ही झपट्टा मारता है। और बाज की तरह ही उसकी जीवन लीला सम्प्राप्त कर देता है। इसलिए यमराज को सिचाण कहा है। 'सूद्र' का अर्थ है मृतक पशु को खींच कर ले जाने वाला। यहाँ सूद्र में अर्थ संकोच है। इस प्रकार के सूद्र में घृणित एवं निर्ममता का भाव भरा हुआ है। यमराज अथवा काल के लिए शिशुपाल का प्रयोग गोरखनाथ का अपना है—परम्परागत नहीं है। कुछ विचित्र भी है। वैसे इसमें संदेह नहीं है कि राजा शिशुपाल का चित्र निर्दयी, भयानक एवं शक्ति का खिचा हुआ है। एक ओर कृष्ण को जन्मता चाहती थी और दूसरी ओर शिशुपाल को नहीं चाहती थी। यहाँ द्रष्टव्य यह है कि एक आध्यात्मिक शब्द के लिए एक व्यक्तिवाचक संज्ञा का प्रयोग हुआ है।

पंच ज्ञानेन्द्रियाँ—आध्यात्मिक दृष्टि से पंच ज्ञानेन्द्रियाँ योग-साधना में साधक

और बाधक दोनों रूप लिये हुए हैं। नियन्त्रित ज्ञानेन्द्रियाँ साधक होती हैं और अनियन्त्रित ज्ञानेन्द्रियाँ बाधक होती हैं। गोरखनाथ ने पंच ज्ञानेन्द्रियों के लिए दस प्रतीकों का प्रयोग किया है। ज्ञानेन्द्रियों के लिए प्रयुक्त शब्दावली दो प्रकार की है—एक तो विशेषण के रूप में ‘पंच’ शब्द लगाकर जैसे ‘पाँचों भाइला’ ‘पंचवाहक’ (पाँच सैनिक) ‘पंच ग्वालिया’, ‘पंचदेव’, ‘पाँच संगती’ और ‘पंच चोर’ तथा दूसरे बिना पंच शब्द लगाकर जैसे ‘चंचल’, ‘मृषां तथा ‘गोरू’ (गाय)।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों को पाँचों भाइला (पाँच भाइयों) कहकर गोरखनाथ इन्द्रियों के साथ आत्मियता एवं प्रेम प्रदर्शित करना चाहते हैं। ज्ञानेन्द्रियों को अगर अपने पक्ष में करना है तो उन्हें पुचकार कर ही पक्ष में किया जा सकता है—डंडे से नहीं। जब गोरखनाथ को ब्रह्म-साक्षात्कार हो गया है तो पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ विरोधी नहीं हैं, साथी हैं। नाथ उनके साथ मिलकर खेलता है अतः ज्ञानेन्द्रियों को ‘पाँच संगती’ कहा। देवता प्रसन्न होने पर हितकारी होते हैं और रुष्ट होने पर हानिकारक होते हैं। किन्तु प्रश्न देवताओं को प्रसन्न करने का है। इन्द्रियों को भी गोरख ने ‘पंचदेव’ कहा है।

बार-बार ‘पंच’ विशेषण का प्रयोग करते-करते वह इतना महत्त्वपूर्ण हो गया कि केवल ‘पंच’ शब्द ही पंच ज्ञानेन्द्रियों के लिए प्रयुक्त होने लगा। गोरखनाथ ने पंच ज्ञानेन्द्रियों के लिए ‘पंच’ शब्द का सात बार प्रयोग किया है।

ज्ञानेन्द्रियाँ चंचल होती हैं। यह विशेषण इतना प्रबल और प्रसिद्ध है कि गोरखनाथ ने पंच ज्ञानेन्द्रियों के लिए केवल ‘चंचल’ शब्द का ही प्रयोग किया है। तृष्णा और चांचल्य धर्म के समाप्त होने से ज्ञानेन्द्रियों को मृषां (मृग) कहा गया है। गाय जब ‘हरिया’¹ हो जाती है तो वह किसी अच्छे ग्वालिये में ही घेरी जा सकती है। गोरखनाथ ने जब स्वयं अपने को ग्वालिया कहा है तो ज्ञानेन्द्रियों को ‘गोरू’ (गाय) कहा है।

गोरखनाथ—गोरखनाथ के लिए ‘नाथ’ तथा ‘लाल-ग्वालिया’ शब्दों का प्रयोग हुआ है। नाथ शब्द तो गोरखनाथ का ही संक्षिप्त रूप है। यह बात दूसरी है कि इसमें इन्द्रियों को भी वश में करने का अर्थ निहित है। ग्वालिया शब्द का प्रयोग भी गाय रूपी इन्द्रियों को वश में करने के कारण ही हुआ है किन्तु ‘ग्वालिया’ से पूर्व ‘लाल’ विशेषण क्यों लगा है, बहुत संभव है ‘लाल’ शब्द में गोरखनाथ का रंग-रूप और सुन्दरता छिपी हुई हो। चंचल गायों को वश में करने वाले ग्वालिये में कुछ तो विशेषता होनी ही चाहिए।

योगी—‘योगी’ अथवा ‘साधक’ का काम बहुत ही वीरता का है। साधना के युद्ध में बहुत ही कम लोग डट पाते हैं। इसी कारण साधक के लिए ‘सूर’ का प्रयोग किया है। सूर, सुरा अथवा ‘सूरिवाँ’ की आवृत्ति ८ बार हुई है। गोरखनाथ ने साधक के

1 हरे-हरे चारे से आकृष्ट होकर उसे खाने के लिए बार-बार उसकी ओर दौड़ने वाली गाय को ब्रजभाषा में ‘हरिया’ गाय कहते हैं।

लिए २ बार 'धोवी' शब्द का प्रयोग किया है। धोवी का काम कपड़ों का मँल छुड़ाना है। साधक भी अपनी योग-साधना द्वारा माया का मँल छुड़ाया करता है। बुद्धि दो प्रकार की होती है—आत्म-बुद्धि और अनात्म-बुद्धि। आत्म-बुद्धि रूपी फसल में अनात्म-बुद्धि रूपी खरपतवार है। जिस प्रकार किसान अपनी फसल में से खरपतवारों को उखाड़ फेंकता है उसी प्रकार साधक भी आत्म-बुद्धि की रक्षा करता है और अनात्म बुद्धि को उखाड़ फेंकता है। इसलिए साधक को 'हाली' (किसान) कहा है। जब तक आत्म साक्षात्कार नहीं हो जाता तब तक साधक अपने ज्ञान मार्ग पर चलता ही रहता है। अतः उसे 'बटावा' (पथिक) कहा गया है। हंस स्वच्छता एवं निर्मलता का प्रतीक है। साधक भी पाप-पुण्य से रहित और निर्मल होता है इसलिए साधक को 'हंसा' कहा गया है। सिद्धों के लिए 'पुरुषा' (पुरुषों ने) शब्द प्रयुक्त हुआ है। यहाँ पुरुष का अर्थ आत्म साक्षात्कार करने-वाले योगी से है। ब्रज क्षेत्र में 'पुरिखा' शब्द आज भी उन पूर्वजों के लिए चलता है जो ज्ञानी और उपदेष्टा थे।

शरीर—हठयोगियों के लिए यह 'शरीर' बड़े ही महत्त्व का है। जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में है।¹ साधक अपनी सम्पूर्ण साधनाएँ इसी शरीर में करता है। शरीर के लिए गोरखनाथ ने १७ प्रतीकों का प्रयोग किया है। जिस प्रकार एक नगर में राजा, काजी, वजीर इत्यादि होते हैं उसी प्रकार इस शरीर में भी क्रमशः ब्रह्म, विचार, पंचतत्त्व होते हैं। इसलिए शरीर को 'नग्न' (२ बार) कहा है। शरीर के लिए अगर सम्पूर्ण नगर प्रतीक रूप में न आकर केवल राजनगर का किला आए तो अधिक समीचीन रहे। दरवाजे इत्यादि से किले की रचना जिस प्रकार की होती है शरीर की रचना भी उसी प्रकार की होती है। गोरखनाथ ने 'नग्न-कोट' (२ बार) (नगर का किला) तथा 'गढ़' (२ बार) रूपांशु का प्रयोग भी किया है। किले से मिलता-जुलता ही 'भुवन' शब्द भी शरीर के लिए प्रयुक्त हुआ है। जो कुछ इस भुवन में है वही इस शरीर में भी है। माया रूपी विस्तृत खेल के फँसाव के लिए किसी पर्वत की ही आवश्यकता हो सकती है। इस शरीर को गोरख ने पर्वत तो कहा है किन्तु यहाँ आकर साम्य नहीं है। शरीर साढ़े तीन हाथ लम्बा होता है इसलिए शरीर को 'अहूँठ' पर्वत (साढ़े तीन हाथ का पर्वत) कहा है। एक दूसरे स्थान पर 'अष्ट कुल पर्वत' कहा है। मोटी दृष्टि से पृथ्वी और आकाश दोनों अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं किन्तु वास्तव में पृथ्वी पर ही आकाश का साक्षात्कार हो जाता है। इसी प्रकार ब्रह्मतत्त्व और शरीर दोनों मोटी दृष्टि से अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं किन्तु तत्त्वतः ब्रह्म का साक्षात्कार इसी शरीर में होता है। इसी कारण शरीर को 'घरे' (पृथ्वी पर) कहा है। 'घरे' में—ए प्रत्यय सप्तमी विभक्ति का है। शरीर के लिए 'घट' (३ बार) उपमान परम्परागत है। यह प्रतीक इतना अधिक प्रचलित हुआ कि लोक में भी 'घट' माने शरीर होने लगा। गोरखनाथ ने घट का समानार्थी 'कलस'

1 ब्रह्माण्डवर्तियत् किञ्चित्, तत् पिण्डेऽस्ति सर्वथा। सिद्ध सिद्धान्त संग्रह—पं० गोपीनाथ कविराम ।

2 नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ २०

शब्द का भी प्रयोग किया है। परब्रह्म की आरती में निरति और मुरति के फूलों के साथ गोरखनाथ इस शरीर रूपी कलश को भी अर्पित करने की कामना रखते हैं। फटे पुराने चिथड़ों से बना हुआ गले में डाल लेने का जो चिह्न योगियों के पास मिलता है उसे 'कंथा' या 'कंधी' कहते हैं। गोरखनाथ कहते हैं कि इस शरीर को ही 'कंधी' समझना चाहिए, अलग से इसकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि शरीर में जो ३६० हड्डियाँ हैं, वे ही चिथड़े हैं जिनको सांस रूपी धागे से सीया गया है। 'घट' और 'कलश' की तरह ही शरीर के लिए 'तूंबी' शब्द का प्रयोग किया है। इस 'तूंबी' में त्रैलोक्य समाया हुआ है। कड़ुए-सूखे कद्दू से बनाया हुआ बरतन 'तूंबी' कहलाता है। तूंबी का बना हुआ एक प्रकार का बाजा, जिसे सपेरे बजाया करते हैं, 'तूमड़ी' कहा जाता है। जिस प्रकार 'तूमड़ी' एक मीठी ध्वनि उत्पन्न करती है उसी प्रकार इस शरीर में भी अनाहतनाद होता है। पिंजड़े में तोता आदि पक्षी बन्द रहता है। शरीर में भी आत्मा या ब्रह्म विद्यमान है। अन्तर केवल इतना है कि तोता पिंजड़े में दिखायी देता है और ब्रह्म इस शरीर में दिखाई नहीं देता। हाँ, दसवें दरवाजे के खुलने पर उससे साक्षात्कार अवश्य होता है। इस भाव को लेकर ही गोरख ने शरीर को 'पिंजर' (पिंजड़ा) कहा है। बांबी में सर्प रहते हैं। इस शरीर में माया एक सर्पिणी के समान ही विद्यमान है। इसलिए शरीर को 'बांबी' कहा है। खेत तो बहुत होते हैं किन्तु अच्छा खेत्त वही है जिसमें फसल उगे। यह शरीर भी 'क्यारी' के समान है। इसमें बीज रूप से परमात्मा विद्यमान है किन्तु वही शरीर सफ़्त है जिसमें कुछ उपज हो जाये—ब्रह्म का स्वानुभव हो जाये। शरीर की रचना पाँच तत्त्वों से हुई है इसलिए 'पंचतत' (दो बार) शब्द ही शरीर का पर्याय बन गया है। शरीर में चेतना तो प्राणों की होती है वरना यह शरीर तो जड़ है—मरा हुआ है अतः इसे 'मूवां' कहा है। 'षड़ासन' हठयोग का तकनीकी शब्द है। इसे 'अधारी' भी कहते हैं। यह काठ के डंडे में लगा हुआ काठ का पीड़ा होता है। योगी इसे अपने साथ रखते हैं और आवश्यकता पड़ने पर इस पर बैठ जाते हैं। गोरख ने शरीर को 'खड़ासन' कहा है। गोरखनाथ केवल भेष धारी जोगी पर अधिक विश्वास नहीं करते। उनके अनुसार हठयोग के सभी साधन इस शरीर में ही विद्यमान हैं।

हड्डियाँ—शरीर की सम्पूर्ण हड्डियों के लिए गोरख ने 'थेगली' तथा 'तीन सैं साठी' प्रतीकों का प्रयोग किया है। शरीर पुराने चिथड़ों की एक कंथा है और इसमें चिथड़े हैं इसकी हड्डियाँ। हड्डियों की संख्या ३६० होती है अतः हड्डियों का यह संख्यावाची विशेषण 'तीन सैं साठी' ही शरीर की हड्डियों के लिए प्रयुक्त होने लगा। शरीर की हड्डियों में चौसठ जोड़ होते हैं अतः इन जोड़ों के लिए 'चाँसठ हाट' कहा गया है।

नब द्वार—शरीर के अन्दर नौ द्वार होते हैं। इन द्वारों के लिए गोरखनाथ ने ९ प्रतीकों का प्रयोग किया है। शरीर एक नगरी के समान है अतः शरीर के नब

द्वारों को 'नग्री द्वार' कहा है। 'नव दरवाजा' (४ बार) 'नव घाटी' (२ बार) तथा 'नौ लष पाई' शरीर के नव दरवाजों को ही प्रकट कर रहे हैं। शरीर में नव रन्ध्रों के लिए नौ के स्थान पर 'नौ लाख' का प्रयोग इस शरीर की केवल विस्तृतता को ही सूचित करता है—संख्या नहीं। केवल 'दर' शब्द ही नौ दरवाजों के लिए प्रयुक्त हुआ है। दो बार गोरखनाथ ने केवल संख्यावाची विशेषण 'नव' को ही शरीर के नव द्वारों के लिए प्रयुक्त किया है। यह उसी प्रकार है जैसे पंच ज्ञानेन्द्रियों के लिए प्रयुक्त 'पंच' शब्द। यह शरीर सम्पूर्ण पृथ्वी के समान है। पृथ्वी के नौ खण्ड होते हैं अतः शरीर के नौ दरवाजे 'नव षंडा' (४ बार) हुए। शरीर को एक कमल के पौधे के रूप में चित्रित करते हुए शरीर के नवरन्ध्रों को 'नौ कली' कहा है। जिस प्रकार गाय का बछड़ा उसका दुग्धपान करता रहता है उसी प्रकार शरीर के नवरन्ध्र आध्यात्मिक शक्ति का पान करते रहते हैं—ह्रास करते रहते हैं। आध्यात्मिक शक्ति अगर गाय है तो नवरन्ध्र 'नौ बछड़ा' हुए। जब एक ही बछड़ा गाय के दूध का पान करता रहता है तो नौ बछड़ों का क्या ठिकाना ?

प्राण—शरीर के अन्दर 'प्राण' ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। प्राण शरीर की उस वायु का नाम है, जिससे मानव जीवित रहता है। इसलिए प्राण के लिए 'जीविता' (जीवन) तथा 'दम' (जीवन) शब्दों का प्रयोग किया है। यह एक प्रकार की वायु तो होती ही है अतः इसको 'पवन' या 'पवनां' (७५ बार) 'बाइ' या 'बाई' (२२ बार) तथा 'अनील' शब्दों में सूचित किया गया है। प्राणवायु को गोरखनाथ ने ४ स्थानों पर 'द्वादश अंगुल बाई' भी कहा है। प्राण-वायु का निवास नासार्न्ध्रों से बाहर बारह अंगुल तक माना जाता है। रेचक के अभ्यास से जब योगी प्राणवायु को मुख से १२ अंगुल बाहर रोकने का अभ्यस्त हो जाता है तो वह दूसरे पुरुष के शरीर में प्रवेश कर सकता है। प्राणायाम के द्वारा मस्तिष्क द्वार उन्मुक्त कर वहाँ से कुण्डलिनी शक्ति को १२ अंगुल ऊपर मस्तिष्क में रोके रहने से सिद्ध पुरुषों का दर्शन होता है। प्राण वायु की इस १२ अंगुल की क्रिया के द्वारा ही इसे 'द्वादश अंगुल बाई' कहा गया है। इसी के समान एक स्थान पर 'द्वादश हंसा' का प्रयोग भी प्राणवायु के लिए किया गया है। रूप साम्य एवं गति साम्य से प्राणवायु को हंस कहा है। तीन स्थानों पर 'पूरब देश' कहा है। पूर्व देश वे तात्पर्य ज्ञानोदय की दिशा अर्थात् सहस्रार चक्र है। सिद्धि के समय प्राण सहस्रार चक्र में स्थित रहते हैं अतः प्राण को पूर्व देश कहा गया है। प्राणों का निरोध करके जब ब्रह्मरन्ध्र में स्थित कर दिया जाता है तब सिद्धि प्राप्त होती है। सिद्धि अग्नि के समान है और प्राण 'धुआँ' के समान है। जैसे धूम अग्नि का होना सिद्ध करता है, वैसे ही प्राणों का ऊपर उठकर ब्रह्मरन्ध्र में स्थित होना सिद्धि प्राप्ति का लक्षण है। धुवाँ हल्का होता है और उसकी गति ऊपर की ओर होती है। प्राण भी हल्के होते हैं और सिद्धि के लिए उध्वंगामी होते हैं। प्राण को 'गरड़' (गरुड़) कहने में दो भाव हैं। एक तो गति साम्य और दूसरा उलटबाँसी के आधार पर कुण्डलिनी को सर्पिणी बताकर उससे सामंजस्य स्थापित करना। गरुड़ और सर्प में

जन्मजात शत्रुता होती है किन्तु योगाभ्यास से इनमें सामंजस्य हो जाना ही उलटबांसी है। एक दूसरे स्थान पर ठीक इसके विपरीत प्राण अथवा श्वास को 'भुवंगम' (सर्प) कहा है और निरोध-क्रिया को गरुड़। जब तक प्राण आते-जाते हैं, उनका निरोध नहीं होता, तब तक सिद्धि-योग दुर्लभ है। श्वास-क्रिया के द्वारा अजपाजाप सिद्ध होता है इसलिए प्राण को 'धमणि' (धौकनी=श्वास क्रिया) कहा है। आदमी दिनभर २१६०० साँसें लेता है। ये साँसें ही शरीर की रचना में 'धग' (धगें) (२ बार) का काम करती हैं।

नाड़ियाँ—शरीर के अन्दर अनेक नाड़ियाँ होती हैं। उनकी कुल संख्या बहत्तर हजार हैं। उनमें से बहत्तर श्रेष्ठ हैं और उनमें से भी दस अधिक प्रसिद्ध हैं। जहाँ गोरख ने बहत्तर नाड़ियों का वर्णन करना चाहा है वहाँ तो 'बुरिज बहत्तरि' (बहत्तर बुर्ज), 'बहत्तर कोठड़ी' (बहत्तर कोठे), 'कोठड़ी बहतीर' (बहत्तर कोठे) तथा 'नदी अठारह गंडिक' ($15 \times 8 = 120$) कहा है और जहाँ नौ नाड़ियों का वर्णन करना चाहा है वहाँ 'नौ नाटिका' (नौ नाड़ियाँ) 'नौ सँ नदी', 'नौ सँ पाई' तथा 'नौ सँ जोगिनी' कहा है। सुषुम्ना को छोड़कर दस में से नौ नाड़ियाँ शेष रहती हैं। सुषुम्ना को इसलिए छोड़ दिया गया है क्योंकि ये सभी नाड़ियाँ सुषुम्ना में आकर ही मिलती हैं। जहाँ नौ और बहत्तर दोनों का ध्यान एक साथ रहा है वहाँ 'नव बहत्तर' (२बार) कहा है। इन सभी प्रतीकों में देखने से विदित होता है कि नाड़ियों को 'नदी', 'खाई', 'बुर्ज', 'जोगिनी' तथा 'कोठे' कहा गया है। नदियों में जल होता है और वे खेतों को सींचती हैं। शरीर की नाड़ियाँ भी प्राणधारा से आत्मा को सींचती हैं। नाड़ियाँ खाई की तरह से किले रूपी शरीर की रक्षा करती हैं और वे ही बुर्ज के समान शरीर में विद्यमान हैं। कायारूपी गढ़ में नाड़ियाँ कोठे के समान हैं। नाड़ियों को 'जोगिनी' कहने से स्पष्ट होता है कि गोरखनाथ अपने सम्प्रदाय में जोगिनियों को सम्मिलित नहीं करना चाहते। इसीलिए नाड़ियों के रूप में इस शरीर में ही जोगिनियों की खोज की है। नौ नाड़ियों के लिए 'नौसँ' शब्द नाड़ियों को अधिक संख्या ही सूचित करता है। निश्चित 'नौ सौ' नहीं। यहाँ 'नौ सौ' का अर्थ 'नौ' ही है।

सुषुम्ना—शरीर की सम्पूर्ण नाड़ियों में 'सुषुम्ना नाड़ी' सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसे ही ब्रह्मनाड़ी भी कहते हैं। यह मेरुदण्ड में स्थित है। साधक कुण्डलिनी शक्ति को इस सुषुम्ना नाड़ी में होकर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचाता है। टेढ़ी-मेढ़ी होने के कारण इसे 'वकनालि' (७ बार) (टेढ़ी नाड़ी) कहा गया है। एक स्थान पर केवल 'नाली' (नाड़ी) शब्द से ही इसे सूचित किया गया है। मेरुदण्ड में स्थित होने के कारण इसे 'मेर नाली' (मेरु दण्ड की नाड़ी) कहा गया है। (३ बार) केवल 'मेर' शब्द ही सुषुम्ना के लिए प्रयुक्त हुआ है। मेरु में स्थित नाड़ी का नाम भी मेरु है जैसे—आम पर आने वाला फल भी आम। सुषुम्ना शरीर में पीछे की ओर अर्थात् पश्चिम की ओर स्थित है अतः इसे 'पश्चिम' (६ बार) 'पछांही' (२बार) 'पछांही घाटी' तथा 'पश्चिम क्षेत्र' कहा गया है। सुषुम्ना नाड़ी इडा और पिंगला के बीच में स्थित है।

इड़ा गंगा तथा पिंगला यमुना के समान है अतः सुषुम्ना 'गंग यमुन की घाटी' हुई। प्राणवायु सुषुम्ना में आती जाती रहती है। प्राणवायु सर्प के समान है। सर्प को सुगन्धि प्रिय होती है अथवा वह चन्दन के वृक्ष पर रहता है। इसलिए सुषुम्ना को 'सुरहि घर' (सुगन्धित अथवा चन्दन का घर) कहा गया है। इड़ा और पिंगला के लिए क्रमशः इकटी, विकटी शब्दों का प्रयोग किया गया है। इकटी-विकटी के साम्य से ही सुषुम्ना के लिए 'त्रिकुटी' (तीसरी) शब्द का प्रयोग किया है। सुषुम्ना ज्ञान-मार्ग तक पहुँचाती है अतः उसे ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी 'बाणी' (सरस्वती) कहा है। सुषुम्ना में इड़ा-पिंगला दोनों के प्रवाह की सन्धि होती है अतः इसे 'विषमो सन्धि' कहा गया है। एक स्थान पर 'सहस्र नाड़ी' का प्रयोग हुआ है। डा० बड्डवाल ने 'सहस्र नाड़ी' का अर्थ सुषुम्ना अथवा सहस्रार दोनों ही किया है। सहस्र से 'सहस्रार' तो भासान है किन्तु एक तो सहस्रार नाड़ी नहीं है दूसरे प्राणवायु का निवास सुषुम्ना में होता है। अतः 'सहस्र नाड़ी' का अर्थ सुषुम्ना ही अधिक ठीक है। हो सकता है 'सहस्र' शब्द ब्रह्म के लिए आया हो और 'सहस्र नाड़ी' का अर्थ ब्रह्मनाड़ी हो।

इड़ा —शरीर की दूसरी महत्वपूर्ण नाड़ी का नाम है 'इड़ा'। मेरुदण्ड में यह सुषुम्ना के बाईं ओर होती है जो नाक के बाँये छेद में समाप्त होती है। प्राणवायु की संचालिका होने के कारण इसे 'गंग' (७ बार) 'बारि गंगा' (इस ओर की गंगा) और 'नीली गंगा' कहा है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीन नाड़ियों में से पहली होने के कारण इसे 'इकटी' (पहली) कहा गया है। इड़ा नाड़ी में चन्द्रमा का प्रकाश रहता है इसलिए इसे ससिहर (शशधर=चन्द्रमा), 'षोडस नाड़ी' (सोलह-कला=चन्द्रमा की नाड़ी), 'नोसत' (६+७=१६ अर्थात् चन्द्रमा), 'ससि' (२ बार) तथा 'चंदा' (१२ बार) कहा है। चन्द्रमा की सोलह कला होती हैं।

पिंगला —शरीर की तीसरी महत्वपूर्ण नाड़ी पिंगला है। मेरुदण्ड में यह सुषुम्ना के दाईं ओर होती है, जो नाक में दाँये छेद में समाप्त होती है। प्राणवायु की संचालिका होने के कारण इसे भी गंगा कहा है किन्तु इड़ा से भेद करने के लिए इसे 'काली गंगा', 'पारिगंगा' कहा है। इतने से भी भेद सुस्पष्ट न हो सके तो फिर इसे 'जमुन' (६ बार) कहा है। तीन नाड़ियों में से दूसरी होने के कारण 'बिकुटी' कहा है। पिंगला में सूर्य का प्रकाश रहता है अतः इसे 'द्वादश नाड़ी' (बारह कला वाले सूर्य की नाड़ी), 'द्वादश' (बारह कला अर्थात् सूर्य), 'भाँण' (३ बार) (भानु) 'रवि' (३ बार) 'सूरजि' तथा 'सूर' (६ बार) कहा है।

इड़ा + पिंगला —तीन प्रतीक ऐसे हैं जो इड़ा-पिंगला दोनों के लिए एक साथ अये हैं। इड़ा चन्द्रमा है और पिंगला सूर्य है। दोनों को एक साथ कहना हुआ तो 'रविचन्दा' कह दिया। इड़ा गंगा है। और पिंगला जमुना है। दोनों को एक साथ कहना हुआ तो 'गंगा जमुना' कह दिया। एक स्थान पर दोनों को 'पूरब देश' कहा है। इड़ा और पिंगला नासिका के अग्र भाग में अर्थात् शरीर के आगे के भाग में समाप्त होती है अतः इन्हें 'पूर्वदेश' कहा गया है।

षट्चक्र—इस शरीर में षट्चक्र होते हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा। 'मूलाधार चक्र' रीढ़ के अधोभाग के वायु और मुष्कमूल के मध्य स्थित है। यह चार दल वाले पद्म के समान होता है। यह शरीर के मूल में स्थित होने के कारण 'मूल' (४ बार), 'मूल कमल', 'धरती' (५ बार) तथा 'अरध' (३ बार) कहा गया है। शरीर में ब्रह्मरन्ध्र का भाग उत्तर दिशा माना गया है अतः उसके विपरीत नीचे का भाग दक्षिण माना गया। मूलाधार चक्र नीचे होने के कारण उसे 'दक्षिण' (३ बार) कहा गया है। षट्चक्रों में सबसे प्रथम होने के कारण 'उदैग्रहि' कहा गया है। जिस प्रकार पानी कुएँ से निकाल कर नगर में पहुँचाया जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मरन्ध्र से अलग होकर कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में आकर स्थित हो गयी है। ब्रह्मरन्ध्र एक कुएँ के समान है अतः मूलाधार चक्र 'नारी' हुआ।

इस मूलाधार चक्र में ही सूर्य स्थित रहता है। शरीर का आधा भाग सूर्य है और आधा चन्द्र। इन दोनों को मिलाकर सुषुम्ना में केन्द्रित करना योग का परम लक्ष्य है। इस 'मूलाधारस्थ सूर्य' के लिए गोरख ने आठ प्रतीकों का प्रयोग किया है। मूलाधार सूर्य अमृत का शोषण करता रहता है। जब योगाभ्यास द्वारा सहस्रार स्थित चन्द्र से इसका मेल कर दिया जाता है तब शोषण बन्द हो जाता है। यह सूर्य सहस्रार के चन्द्रमा से ही उद्भूत हुआ है। चन्द्रमा आकाश की गाय कहा गया है अतः मूलाधार के सूर्य को 'बछरा' (बछा) कहा है। अन्यत्र सूर्य के पर्यायवाची शब्दों से इसे द्योतित किया गया है जैसे—'सूर', (१३ बार) 'दिनकर', 'रिव', 'भाण' (भानु), 'बारह' (सूर्य को बारह कलाएँ होती हैं), 'बारा कला' तथा 'द्वादश' (२ बार)।

मूलाधार चक्र के ऊपर, नाभि के पास 'स्वाधिष्ठान चक्र' होता है। यह छह दल वाले पद्म के समान होता है। मूलाधार चक्र के पास ही स्थित होने के कारण दिशा साम्य से स्वाधिष्ठान चक्र को भी मूलाधार की तरह 'दक्षिण' (२ बार) कहा है। 'पाताल' शब्द स्वाधिष्ठान चक्र के लिए आया है। वैसे तो सबसे नीचे मूलाधार चक्र है। पाताल उसी के लिए आना चाहिए था किन्तु यहाँ पाताल का अर्थ 'सबसे नीचे' न लगाकर 'नीचे' ही लगाना होगा और प्रसंग से यह स्पष्ट है कि वह स्वाधिष्ठान के लिए ही आया है। छह दल वाले कमल के समान होने के कारण इसे 'षटसां' कहा है।

षट्चक्रों से ऊपर मस्तिष्क में शून्यचक्र है। यह सहस्र दलों के कमल के आकार का है अतः इसे 'सहस्रार' भी कहते हैं। यही ज्ञानोदय की दिशा है अतः इसे 'पूरब' कहा है। हजार दल वाले कमल के समान होने के कारण ही इसे 'असंप दल पंपुडो' तथा कंवन कंवल' कहा है। इस शून्य चक्र को ही 'ब्रह्मरन्ध्र' कहते हैं। यह पिण्ड का कैलास है अतः इसे 'गगन कविलासा' 'तिरलोक' ब्रह्मांड' (२ बार) 'गोढ़' (गोष्ठ=गोस्थान) तथा 'सिवधरि' कहा गया है। इस ब्रह्माण्ड में सबसे ऊपर आकाश विद्यमान है इस शरीर में ब्रह्मरन्ध्र भी सबसे ऊपर स्थित है अतः इसे आकाश के पर्यायवाची शब्दों से प्रकट किया गया है; जैसे, 'गगन' (३४ बार) 'गगन मंडल'

(१२ बार) 'गगन-सिपर' (६ बार) 'गगन अस्थान' (२ बार) 'गगनघरि' 'आकाश' (६ बार) 'अंबर' (५ बार) 'आसमान' (२ बार) 'अंतरष' (अंतरिक्ष) । शरीर में उच्च स्थानीय होने के कारण इसे 'डूंगरि' (पर्वत) 'परबत' 'हेम ग्रहि' कहा गया है । भारत में हिमालय उत्तरी की ओर है । अतः ब्रह्मरन्ध्र को उत्तर दिशा में कल्पित मान लिया है और इसके लिए 'उत्तर देस' (३ बार) 'उत्तर खंड' तथा 'मुलतान' शब्दों का प्रयोग हुआ है । मुलतान भी उत्तर दिशा में ही है । शून्य चक्र होने के कारण इसे 'सुनि' (१८ बार) 'सुनि द्वार' 'सुनि मंडल' तथा 'सून्य आकास' कहा गया है । शरीर के दस द्वारों में से यह दसवां तथा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है अतः इसे 'दसवां' 'दसवां द्वार' (१५ बार) 'द्वार' तथा 'बार' कहा है । उच्च स्थानीय होने के कारण ही इसे 'अधर' (२ बार) 'उरध' (उर्ध्व) तथा 'ढकणी' (ढक्कन) कहा है । तीन बार 'भ्रमर गुफा' कहा गया है ।

इस सहस्रार चक्र में ही 'चन्द्र' स्थित रहता है । मूलाधारस्थ सूर्य इस चन्द्रमा से ही अलग हुआ है । सूर्य को उर्ध्वगामी बनाकर चन्द्रमा से मेल कराना ही योगी का लक्ष्य है । मूलाधारस्थ सूर्य को उत्पन्न करने के कारण इसे 'आकास की घेन' कहा है । इसके अतिरिक्त सभी प्रतीक चन्द्रमा के पर्यायवाची हैं; जैसे, 'चंद' (१७ बार) 'ससि' (३ बार) 'ससिहर' (२ बार) (शशधर-चन्द्रमा) 'पूनम चंदा' 'सोलह' (चन्द्रमा की सोलह कलाएँ होती हैं) । 'सोला कला' 'सोलह करंडियां' (एक करंडिया एक कला के समान) तथा 'पूरण कला' ।

त्रिकुटी—त्रिकुटी दोनों भौंहों के बीच का भाग है । 'जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में है' के अनुसार त्रिकुटी को 'त्रिलोक' कहा है । दोनों नेत्रों की दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच में केन्द्रित करने पर तीन चौजों का संगम होता है अतः इसे त्रिवेणी' (८ बार) कहा है । शरीर से बाहर कोई तीर्थ नहीं सब इसी के अन्दर है अतः त्रिकुटी को 'देव देदुरा काशी' (देव, देवालय, काशी) कहा है । शुक्र का मूल स्थान त्रिकुटी में ही है और वहीं से अमृत की धारा सारे शरीर को पुष्ट करती है ।

कुण्डलिनी—हठयोग के क्षेत्र में 'कुण्डलिनी शक्ति' का महत्त्व सर्वोपरि है । मेरुदण्ड जहाँ सीधे आकर वायु और उपस्थ के मध्यभाग में लगता है वहाँ एक स्वयंभू लिंग है जो एक त्रिकोण चक्र में अवस्थित है । इसे अग्निचक्र कहते हैं । इसी त्रिकोण या अग्निचक्र में स्थित स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन वलयों में लपेटकर सर्पिणी को भाँति कुण्डलिनी अवस्थित है । यह कभी-कभी आठ वलयों में लपेटकर सोई हुई बताया गई है । यह ब्रह्माण्ड में व्याप्त महाकुण्डलिनी रूपी 'शक्ति का ही व्यष्टि' में व्यक्त रूप है । यह शक्ति ही है जो ब्रह्मद्वार का अवरोध करके सोई हुई है । इसे जगाकर शिव से समरस कराना योगी का चरम लक्ष्य है ।^१ यह शरीर में एक प्रबल शक्ति है इस कारण इसे केवल 'शक्ति' (१२ बार) शब्द से ही सूचित किया है । आकार साम्य से इसे 'डीबी' (६ बार) 'डिबिया' कहा गया है । कुण्डलिनी को 'सापणि' (२ बार) और

‘नांगणि’ दो कारणों से कहा गया है, एक तो यह सांप की तरह कुण्डली मारे हुए है और दूसरे जब यह ऊर्ध्वगामी होती है तो सर्प की तरह फुफकारती हुई उठती है। ऊपर उठकर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचकर यह कुण्डलिनी शक्ति सहस्रार कमल के रस का पान ऐसे ही करती है जैसे कमल के फूल के रस का पान भौरा करता है। अतः इसे ‘भंवरा’ (३ बार) तथा ‘भुवंगम’ (२ बार) (‘भौरा’) कहा है। कुण्डलिनी शिव की इच्छा शक्ति है और उसका शिव से समागम ही योगी का चरम लक्ष्य है। इसलिए उसे ‘देवी’ (२ बार) कहा है। यह शरीर एक किले के समान है। ब्रह्मरन्ध्र में स्थित शिव इसके राजा हैं। यह ‘राजदरि’ राजद्वार के मार्ग को रोके खड़ी हुई है। कुण्डलिनी शक्ति भी इसी प्रकार नीचे से ऊपर को बढ़ती है और सुषुम्ना में बढ़ने के कारण किसी को दिखायी भी नहीं देती अतः उसे ‘मीमां’ (मध्यमी) कहा है। यहाँ ब्रह्मरन्ध्र बर्तन है और कुण्डलिनी ‘शाल’ (ज्वाला) है। कुण्डलिनी को जगाकर ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर करना योगाग्नि को प्रज्वलित करना है। इसी कारण दूसरे स्थान पर इसे ‘अग्नि’ कहा है। आत्मा का निवास ब्रह्मरन्ध्र में है और कुण्डलिनी का मूलाधार में। एक उलट-बाँसी के द्वारा इसी बात को गोरख ने कहा है कि गागर नीचे है और पनिहारिन ऊपर है। आत्म पनिहारिन है और कुण्डलिनी ‘गागरि’ है। शरीर में निम्न स्थान में होने के कारण इसे ‘पाताल की गंगा’ कहा गया है।

शुक्र—मेरुदण्ड के मूल में सूर्य और चन्द्र के बीच योनि में स्वयंभू लिंग है जिसे पश्चिम-लिंग भी कहते हैं। यही पुरुषों के शुक्र और स्त्रियों के रजःस्खलन का मार्ग है। यही काम, विषहर और निरंजन का स्थान है। वीर्य स्खलन की दो अवस्थाएँ होती हैं। इन दोनों के परिभाषिक नाम, प्रलयकाल और विषयकाल हैं। इन दोनों अवस्थाओं में जो आनन्द होता है वह घातक है। एक का अधिष्ठाता काम है और दूसरी का विषहर। तीसरी अवस्था नाना भाव विनिर्मुक्त सहजानन्द की अवस्था है। इसमें बिन्दु ऊर्ध्वमुख होकर ऊपर उठता है, तब यह सहज समाधि प्राप्त होती है जिसमें मन और प्राण अचंचल हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य और प्राणायाम के द्वारा इस बिन्दु को स्थिर और ऊर्ध्वमुख किया जा सकता है।¹

‘शुक्र’ के लिए पारिभाषिक शब्द ‘बिन्दु’ भी प्रचलित है। गोरखनाथ ने ‘व्यंद’ बिंद, वृंद, वृंदि तथा जलव्यंद (४२ बार) शब्दों का प्रयोग किया है। सांसारिक शरीर के लिए जल की बहुत अधिक आवश्यकता है। शुक्र को जल या उसके पर्याय-वाची शब्दों द्वारा प्रकट करने का एक कारण यह भी है कि जिस प्रकार जल की स्वाभाविक गति निम्नगामी होती है उसी प्रकार शुक्र की स्वाभाविक गति भी अधो-गामी होती है। ऊर्ध्वगामी तो उसे साधना के द्वारा बनाया जाता है। ऊर्ध्वगामी होकर शुक्र अमृतमय आनन्ददायक हो जाता है अतः इसे ‘अमौ रस’ (२ बार), ‘महारस’ (५ बार) ‘रस’ (२ बार) तथा ‘रस-कुस’ (३ बार) कहा गया है। शरीर के लिए बहु-मूल्य और आनन्ददायक वस्तु होने के कारण ही इसे ‘पीर’ (२ बार), ‘पीरसागर’ ‘दूध’

‘पारा’ ‘रेत’, ‘रेतस’ तथा ‘रतन’ कहा गया है। ‘सरोवर’ कहने का भी भाव अमृत सरोवर ही है। ‘नवसै नवासि सायर’ कहने में शुक्र की अपरिमितता ही सूचित होती है। शरीर के निम्न भाग में स्थित रहने के कारण इसे ‘अरध’ तथा ‘मूल’ कहा है। ‘मूल’ कहने में शरीर के स्थायित्व का कारण भी निहित है।

अनाहतनाद—हठयोगियों में ‘अनाहत नाद या अनहद नाद’ एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। कुण्डलिनी शक्ति जब ब्रह्मरन्ध्र की ओर उठने लगती है तो प्राण स्थिर हो जाता है और योगी को एक विशेष प्रकार का शब्द सुनाई पड़ता है। हठयोग की पारिभाषिक शब्दावली में इसे ‘शब्द’ कहते आए हैं। गोरखनाथ ने तेईस बार इस का प्रयोग अनाहत नाद के लिए किया है। ‘शब्द’ की तरह ही ‘नाद’ भी परम्परागत प्रतीक है। इस विचारधारा के अन्तर्गत ही उन्होंने अनाहद नाद को ‘सींगी’ तथा ‘सींगी’ नाद’ कहा है। अनाहद नाद की ध्वनि साधक को पहले तो समुद्र गर्जन, मेघ गर्जन, भेरी, झंझर की सी, फिर मृदंग, शंख, घंटा की सी और फिर अन्त में किंकिणी, वंसी, तथा वीणा की सी सुनाई पड़ती है। गोरखनाथ ने इन ध्वनि-साम्यों के आधार पर ही अनाहदनाद को ‘तूरा’ (५ बार) (बाजा विशेष), ‘मेघ’, ‘दमाँमाँ’ (नगाड़ा) तथा ‘धूँ-धूँकार’ कहा है।

ब्रह्मतत्त्व—साधक का चरम लक्ष्य ‘ब्रह्मतत्त्व’ की प्राप्ति है। केवल ‘बिन्दु’ की रक्षा से ही सब कुछ नहीं होता। शुक्र-रक्षा के साथ ब्रह्मानुभूति की आवश्यकता है। अतः ब्रह्मतत्त्व को ‘महाबिन्दु’ कहा है। (शुक्र से अधिक महत्त्वपूर्ण) ब्रह्मतत्त्व की प्राप्ति ब्रह्मरन्ध्र में होती है। ब्रह्मरन्ध्र के लिए प्रतीक उत्तरदेश ही है अतः ब्रह्मतत्त्व के लिए ‘उत्तर’ (२ बार) शब्द का प्रयोग किया है।

ब्रह्माग्नि—ब्रह्मरन्ध्र में ब्रह्म का निवास है और वहाँ निरन्तर ‘ब्रह्म-ज्योति’ जलती रहती है। ब्रह्मज्योति को ही ब्रह्माग्नि कहते हैं। गोरखनाथ ने ५ बार इसे ‘अग्नि’ शब्द से सूचित किया है। अग्नि अथवा ज्योति के प्रतीक ‘तेज’ तथा ‘दीपक’ शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।

ब्रह्मानुभूति—प्राणवायु के निरोध के बाद कुण्डलिनी शक्ति जब ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है तो साधक को ‘ब्रह्मानुभूति’, आत्मानुभूति’ या ‘सहजानन्द’ प्राप्त होता है। ब्रह्मानुभूति को गोरख ने ‘धेन’ (३ बार) ‘गाय (गाइ, गाई)’ (४ बार), ‘गावत्री’ (गाय) तथा ‘कामधेयिनी’ (कामधेनु) कहा है। ‘गाय’ शब्द में भी कामधेनु की कल्पना निहित है। ब्रह्मानुभूति से साधक अमृत-पान करता है। ब्रह्मानुभूति ब्रह्मरन्ध्र से मिलने वाला फल है अतः इसे ‘सुनिफल’ तथा ‘फल’ कहा है। सूर्य में बारह कलाएँ होती हैं और चन्द्रमा में सोलह। दोनों मिलकर ‘अनंत कला’ बन जाती हैं। ये ही आत्मानुभूति है। एक स्थान पर ब्रह्मानुभूति को ‘कला’ कहा है। ब्रह्म को पुरुष कहते हैं और आनन्द को रस। इस प्रकार ब्रह्मानन्द होने से ब्रह्मानुभूति को ‘मानिक’ (माणिक्य) कहा है। एक उलटबाँसी में गोरख कहते हैं—‘सूकें तरवर कूपल मेलहीं’¹

(वृक्ष के सूख जाने पर कोमलें निकलती है।) माया एक वृक्ष के समान है। माया के नष्ट हो जाने पर ही ब्रह्मानुभूति होती है अतः ब्रह्मानुभूति 'कोपलें' हुई। आत्मानुभूति को 'पीपल' कहा गया है। पीपल का वृक्ष पवित्र एवं शीतल छाया देने वाला होता है। आत्मानुभूति भी शुद्ध एवं शक्तिदायिनी होती है। ब्रह्मरन्ध्र में स्थित चन्द्रमा से अमृत झरा करता है। यह अमृतानन्द ही सहजानन्द है। इसलिए सोलह करंडियों में एक फूल की बात कही गयी है। 'एक फूल' आत्मानुभूति ही है। सहजानन्द एक बार प्राप्त होकर फिर कभी समाप्त नहीं होता अतः इसे 'अषडितधार' कहा गया है। माया सास है। जीव माया का पुत्र है। उसने ब्रह्मानुभूति से विवाह कर लिया है। इसलिए ब्रह्मानुभूति माया की बहुड़ी (बहू) हुई।

समाधि—ब्रह्मानुभूति, सहजानुभूति या अमृतानन्द के बाद साधक समाधिस्थ हो जाता है। 'समाधि' के लिए गोरख ने ८ प्रतीकों का प्रयोग किया है समाधि के लिए 'ताली' (७ बार) शब्द इस क्षेत्र में परम्परागत है। यह पारिभाषिक शब्द है। जिस प्रकार ताली से ताला खुलता है उसी प्रकार साधक के लिए मोक्ष का द्वार खुल जाता है। 'कुँची' शब्द ताली का पर्यायवाची होने के कारण प्रयुक्त हुआ है। 'डोरी' (३ बार) प्रतीक भी पारिभाषिक है। साधक की अन्तिम साधना है। सर्वानन्द परिपूर्ण होने के कारण इसे 'महारस' कहा गया है। समाधि के लिए 'सुनि' (२ बार) शब्द साधक की शून्यावस्था प्रकट करता है।

ब्रह्मपद—समाधिस्थ योगी ब्रह्मपद प्राप्त करता है। तीन बार इसके लिए 'पद' शब्द का प्रयोग किया है। यह एक पारिभाषिक शब्द है। योगी के लिए प्राप्य स्थान ब्रह्म पद ही है अतः इसे 'थान' कहा गया है। योगी का वास्तविक 'घर' भी ब्रह्मपद ही है।

मुक्ति—ब्रह्मपद प्राप्त करने के बाद साधक की मुक्ति हो जाती है। यही साधक की अन्तिम स्थिति है। बहुमूल्य होने के कारण इसे 'मोत्याहल' (मुक्ताफल तथा 'माणिक' (माणिक्य) कहा है।

(ख) विभिन्न आध्यात्मिक तत्त्वों के लिए एक लौकिक शब्द

इस प्रकार के शब्दों को हम अनेकार्थी या विभिन्नार्थी कह सकते हैं। जहाँ आध्यात्मिक तत्त्वों के लिए प्रयुक्त लौकिक शब्दों का प्रश्न है तो वहाँ यह संभावना और भी अधिक हो जाती है। कोई भी सांसारिक शब्द अपनी किसी विशेषता के कारण किसी आध्यात्मिक तत्त्व के लिए प्रयुक्त हो सकता है। किन्तु जब एक ही शब्द विभिन्न आध्यात्मिक तत्त्वों के लिए प्रयुक्त हुआ है तो देखना यह है कि शब्द की कौन विशेषता किस तत्त्व के लिए प्रयुक्त हुई है। आध्यात्मिक तत्त्वों के लिए प्रयुक्त लौकिक शब्दों की भागवत विशेषताओं का विवेचन पीछे के अध्यायन में हो चुका है, यहाँ केवल सूची भर प्रस्तुत की जा रही है—

लौकिक शब्द

आध्यात्मिक शब्द

अग्नि.

कुण्डलिनी, ब्रह्माग्नि, ज्ञान।

लौकिक शब्द	आध्यात्मिक शब्द
अरध	शुक्र, मूलाधार चक्र ।
अबिला (आम)	माया, परब्रह्म ।
उत्तर	ब्रह्मरंध्र, ब्रह्मतत्त्व ।
धीर (दूध)	अमृत, शुक्र, लौकिक आनन्द ।
गाय	आत्मा, ब्रह्मानुभूति, शान्त प्रकृति, निर्बल माया, इन्द्रियाँ भौतिक जीवन ।
गगन	ब्रह्मरंध्र, अनाहद नाद, त्रिकुटी ।
गंगा	कुण्डलिनी, इडा ।
चंचल	इन्द्रियाँ, मन ।
चंदा	इडा, ब्रह्मरंध्रस्थ चन्द्र, अमृत, चन्द्रस्वर ।
पांणी	शुक्र, अमृत, अमृतमय कर्म, कुण्डलिनी, भवसागर ।
जल	अमृतरस, माया ।
देवी	कुण्डलिनी, माया ।
दीपक	ब्रह्मज्योति, सविकल्प एवं निर्विकल्प समाधि ।
घरती	कुण्डलिनी, मूलाधारचक्र, सांसारिकता ।
नगर/नगरी	शरीर, शून्य चक्र, मूलाधार चक्र ।
गुरुषा	परब्रह्म, सिद्ध लोग ।
परवत	ब्रह्मरंध्र, आत्मा ।
पंच	पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच तत्त्व, पंच तन्मात्राएँ ।
पूरब/पूरब देश	सहस्रार, इडा-पिंगला, प्राण ।
फल	तत्त्व, ब्रह्मानुभूति ।
बगु/बगलो	मन, अहंकार ।
बछड़ा	मूलाधारस्थ सूर्य, नवरंध्र ।
बिन्द	शुक्र, कामवासना
बहू/बहूड़ी	मायिक उलझन, सहजानुभूति ।
मृध	मन, इन्द्रियाँ ।
मूल	अधिष्ठान, मूलाधार, सत्यता ।
रांडी	माया, स्त्री ।
रोटी	जीव, ब्रह्मानुभूति ।
भुवंगम	कुण्डलिनी, श्वास ।
सवद	अनाहद नाद, गुरुवचन ।
सूर (सूर्य)	पिंगला, मूलाधारस्थ सूर्य, सूर्यस्वर, ब्रह्म ।
सूर (बहादुर)	समर्थ गुरु, साधक ।
स्यंध (सिंह)	माया, अशान्त प्रवृत्ति ।

सुनि (शून्य)	ब्रह्मरन्ध्र, समाधि-अवस्था ।
हंस/हंसा	प्राणवायु, सिद्ध, जीवात्मा ।
माणिक	ब्रह्मानुभूति, ज्ञान ।
डाल/डाली	नामरूपोपाधि, उच्चावस्था ।
कुपल	आध्यात्मिकता, माया ।
दौ	ज्ञान, सामारिक दुःख ।
फूल	ब्रह्मानुभूति, वृद्ध ।
मीन	लक्ष्य-तत्त्व, मत्स्येन्द्रनाथ ।

(ग) एक आध्यात्मिक तत्त्व के लिए एक ही लौकिक शब्द

इस प्रकार के शब्दों को हम आध्यात्मिक शब्दावली के अन्तर्गत एकार्थी शब्द कह सकते हैं। किसी भी भाषा में एकार्थी शब्द बहुत थोड़े होते हैं क्योंकि एक ही शब्द विभिन्न संदर्भों में विभिन्न अर्थ रखता है। जिन शब्दों को एकार्थी मानकर विचार किया जा रहा है वे अन्यत्र अनेकार्थी हो सकते हैं किन्तु गोरखबानी में प्रयुक्त ये सभी लौकिक शब्द अपना एक ही आध्यात्मिक अर्थ रखते हैं। जैसे 'चीता' प्रतीक के रूप में जहाँ कहीं भी आया है उसका अर्थ केवल 'आत्मतत्त्व' ही है। अरबी भाषा का 'जिद' शब्द शरीर का वह तत्त्व है जो अमर है। शरीर के नष्ट होने पर भी वह नष्ट नहीं होता। गोरख ने अमरतत्त्व के लिए 'ज्यंद' (२ बार) शब्द का प्रयोग किया है। शरीर एक नगर है और इसके छिद्र नगर की गलियाँ हैं। इसलिए शरीर के छिद्रों के लिए 'गली' शब्द का प्रयोग किया है। एक शब्द है—'अहूठ कोटि बनासपती माला' (अहूठ=साढ़े तीन/साढ़े तीन करोड़ वनस्पतियों का बाग)। यह शब्द शरीर के रोमों के लिए आया है। पाँच कर्मेन्द्रियों के लिए 'पंच महारिषि' शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ 'बाला' शब्द स्त्रीलिंग नहीं है। हाँ, उसमें स्त्री की सी सुकुमारता और आकर्षण अवश्य विद्यमान है। 'कानों की मुद्रा' के लिए 'दरसन' (२ बार) शब्द परम्परागत एवं पारिभाषिक है। डा० हजारो प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—'नाथ पंथियों का मुख्य संप्रदाय गोरखनाथी योगियों का है। इन्हें साधारणतः कनफटा और दर्शनी साधु कहा जाता है। कनफटा नाम का कारण यह है कि ये लोग कान फाड़कर एक प्रकार की मुद्रा धारण करते हैं। इस मुद्रा के नाम पर ही इन्हें 'दरसनी' साधु कहते हैं।¹ 'विशुद्ध चक्र' के लिए 'पोडि' शब्द का प्रयोग है, विशुद्धाख्य चक्र कंठ के पास होता है और यह सोलह दल वाले कमल के आकार का होता है। पोडि=पोड़प=पोड़श दल कमल। 'कंबली' शब्द दैहिक और मानसिक कर्मों के लिए आया है। दूध का जमा हुआ रूप 'दही' है। दही के रूप में दूध स्थिर हो जाता है अतः यही 'स्थिरता' का प्रतीक बन गया। एक स्थान पर गोरख कहते हैं—'पिता बिना मुत्रा छोरु लो'² (= बिना पिता के छोरा मर गया)। यहाँ छोरु शब्द षड्रिपु के लिए

1 नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारो प्रसाद द्विवेदी, पृ० १०

2 गोरखबानी, पृ० ११३/७

आया है। षड्रिपु का पिता अहंकार है। अहंकार के नष्ट हो जाने पर षड्रिपु भी नष्ट हो जाते हैं। तीन गुणों के लिए उसका संक्षिप्त प्रतीक 'तीनि' प्रयुक्त हुआ है। 'शब्दाडम्बर' के लिए 'छाछि' शब्द आया है। अन्यत्र निस्सार वस्तु के लिए 'मही' आया है। दूध में से मक्खन निकालकर जो वचता है उसे मही (छाछ, मट्ठा) कहते हैं और मक्खन की तुलना में वह होता भी निस्सार है। 'बाफ' (वाष्प) शब्द मद, लोभ, मोह आदि भावनाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। योगी के समाधिस्थ होने पर उक्त भावनाएँ ऐसे ही उड़ जाती हैं जैसे भाप। षट्चक्रों के लिए 'चोर पचास' आया है। सभी चक्रों के कमलों के दल मिलकर पचास होते हैं। षट्चक्रों का वेधन किये बिना साधना पूरी नहीं होती अतः इन्हें चोर कहा है। 'बत्तीस षण्डो' (= बत्तीस पंखुड़ियाँ) शब्द 'लक्षणों' के लिए आया है। लक्षणों की संख्या ३२ होती है। अविवेक के लिए 'पडरवा' (= पड़रा = भँस का बच्चा) शब्द अज्ञान, अविवेक आदि के साम्य से प्रयुक्त है। एक उलटबांसी में गोरख के अनुसार 'लाकड़ डूब सिल तिरै'^१ (= लकड़ डूब जाता है और पत्थर तैरता है)। इस भवसागर में जो माया में फँसे हुए हैं अथवा अपने विचारों में हलके हो गए हैं वे लकड़ के समान हैं और भवसागर में डूबे रहते हैं किन्तु माया से अलग, अपने विचारों में भारी लोग पत्थर के समान हैं और वे इस भवसागर में तैरते रहते हैं, तर जाते हैं। स्थूल अस्तित्व को 'पहौकर' (= पुष्कर = तालाब) कहा है। आध्यात्मिक परिस्थिति के लिए 'चोमासी' कहा है। जिस प्रकार से चौमासे (बरसात) में चातक प्रसन्न होता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक परिस्थिति पाकर आत्मा प्रसन्न हो जाती है। आत्म बुद्धि के लिए 'पेत' (खेत) शब्द का प्रयोग हुआ है। एक प्रकार की सिद्धि विशेष के लिए 'गोटिका बंध' शब्द का प्रयोग हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि सिद्ध योगी अभिमंत्रित गोली (गुटिका) मुँह में रखकर अदृश्य हो जाता है। अतः इस सिद्धि को 'गोटिका बंध' कहा गया है। 'मृतक पसू' का प्रयोग आत्मानुभूति रहित व्यक्ति के लिए हुआ है। अगर किसी में आत्मानुभूति नहीं है तो उस मरे हुए पशु को यमराज रूपी शूद्र खींचकर ले जाता है—जीवित को नहीं। योग-मार्ग के लिए 'धरम का पेंडा' शब्द प्रयुक्त हुआ है। यहाँ पेंडा का अर्थ मार्ग है। गोरख के अनुसार धर्म का मार्ग तो योग-मार्ग ही है। 'कागद' शब्द में महत्त्वहीनता लक्षित होती है। संध्या और दरवानों के आधार पर शरीर के तेरह द्वारों को 'पौल तेरह' (तेरह फाटक) कहा है। नवरंघ तथा दसवाँ ब्रह्मरंघ—ये तो दस द्वार प्रकट हैं; तीन गुप्त द्वारों का वर्णन गोपनीय होने के कारण योगियों ने नहीं किया है। 'चींटी केरा नेत्र' सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप के लिए आया है। चींटी स्वयं ही छोटी होती है उसका नेत्र तो और भी छोटा हुआ अतः आकार साम्य से वह सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप के लिए प्रयुक्त हुआ है। 'गुरुमुख' (गुरुमुख) शब्द नाथ-सम्प्रदाय में दीक्षित योगी के लिए चलता था। गोरख

ने वहाँ मित्रा के अर्थ में प्रयुक्त किया है। 'सप्त माँठि' सात चक्कों के लिए आया है। शरीर की नाड़ियों में सात चक्र ही सात माँठि हैं। यह शरीर एक दीपक के समान है जो तेज स्त्री बायु से जल रहा है। अतः आयु के लिए 'तेज' शब्द का प्रयोग हुआ है। स्थूल भौतिक रूप के लिए 'गजेन्द्र' प्रयुक्त हुआ है। पीछे सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप के लिए चीटी के नेत्र की बात बह बाएँ है। चीटी के नेत्र की तुलना में प्रेर स्थूल तो होता ही है अतः वह स्थूलता का प्रतीक हुआ। हिसक होंने के कारण भौतिकता का प्रतीक हुआ। चौरासी लाख योनियों को उनके संध्यामुखक निमोषण "चौरासी" से सूचित किया गया है। अर्थ प्रसंग के अनुसार लगता है।

३.४ पारिभाषिक शब्दावली

आध्यात्मिक रूपों के पश्चात् पारिभाषिक शब्दावली आती है, जो गोरख-बानी के अर्थ को समझने में बाधक है। निम्नलिखित धार्मिक सम्प्रदायों में मुख्य ऐसे पारिभाषिक शब्द चला करते हैं जिनके शाब्दिक अर्थ से काफ़ी नहीं चलता; उनको व्याख्या अपेक्षित होती है। गोरखबानी में भी ऐसे पारिभाषिक शब्द पर्याप्त हैं। कुछ शब्दों की व्याख्या आध्यात्मिक रूपों के प्रसंग में हो चुकी है, योंप शब्द उनकी व्याख्या के साथ वहाँ प्रस्तुत हैं—

अंडज रोमा० २०३/४ = जीव चार प्रकार के होते हैं—अंडज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज। गोरख ने इनके लिए क्रमशः अंडज, स्वेत-रज, जेरज और उदबीरज कहा है। ऋद्धाण्ड की कल्पना पिण्ड में करके नाभपंथ में हड्डियों को स्वेदज, बीर्य को जरायुज, नेत्रों को अंडज तथा रोमावली को उद्भिज कहा गया है। इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति का संकेत इस पिण्ड में हो कर दिया है। इन्हीं को "चारि पांपी" कहा है।

अपोचरी सि० ११६/७ = जब बुद्धि इन्द्रियातीत हो जाती है तो उसे अपोचरी बुद्धि कहते हैं।

अजपा सं० १८/१ = बिना मंत्र किये हुए हो होने वाला अर्थ। अक्षरार्थ में मंत्र को तीन करके बिना मंत्र के उच्चारण के सहज रूप में सोहं सोहं का जाप करना ही अजपा जाप है।

अतीथ रोमा० २०३/८ = दे० चारि बांपी।

अधारी सं० ४८/२ = काठ के डंडे में लगे हुए पीढ़े को अधारी कहते हैं, जिनसे योगी लोग सहारे के लिए अपने प्राण रखते हैं।^१

१ "अधारी (४२२१-४३११) एक प्रकार की टिकरी की थी जिस पर योगी बैठते या खड़े थे—'जहाँ योग कियावन आए। सिमरी समस अधारी मृदा में जड़नाथ पड़ाए।'—'सुर-सागर शब्दावली (एक सांस्कृतिक अध्ययन)—डॉ० निर्मला सक्सेना

अरहंत प० १३३/४ = जैनियों के आदि देव ।

आकाशी प० ११०/६ = चार प्रकार के योगी कहे गए हैं—नादी, बिंदी, सौगौ और आकाशी । जो अनाहद नाद के अनुसंधान को प्रधानता देते हैं वे नादी; जो बिन्दु (शुक्र) की रक्षा को प्रधानता देते हैं वे बिन्दी, जो अनाहद नाद के प्रतीक स्वस्वा शृंगीनाद बजाते हैं वे सिंगी और जो आकाश अर्थात् त्रिकुटी को लक्ष्य किये रहते हैं वे आकाशी कहे जाते हैं ।

उदबीरज रोमा० २०५/४ = दे० अंडज ।

उनमन स० १६/१ = योगी की मौनावस्था । प्रपंच में पड़े हुए बहिर्मुखी मन को निर्विषय कर देना और ब्रह्मरंध्र में ध्यानस्थ होना योगी की उनमनी मुद्रा है । इस अवस्था का चित्रण कबीर ने बहुत किया है ।^१

ऊरम स० ८६/२ = दे० चारि आपकला ।

एक अपिरी प० १०१/५ = लोग वाचनिक मंत्रों का जाप किया करते हैं । जितने अक्षरों का जाप होगा उतने ही अक्षरों का मंत्र कहलाएगा जैसे एकाक्षर मंत्र ।^२ गोरखनाथ ने एकअपिरी, द्वैअपिरी, त्रिअपिरी, चौअपिरी इस प्रकार चार मंत्रों की चर्चा की है किन्तु गोरखनाथ के मंत्र बाह्य वाणी से सम्बद्ध नहीं हैं अतः वे एकाक्षरी आदि से दूसरा ही अर्थ लेते हैं । शून्य और स्थूल दोनों वाणियों से एकाकार अद्वय परब्रह्म का जाप ही एकाक्षरी-मंत्र जप है । निराकार का जप करते हुए इहलोक और परलोक, निर्गुण और सगुण, सूक्ष्म और स्थूल दोनों पक्षों का उद्धार करना ही द्विअक्षरी-मंत्र जप है । त्रिकुटी में ब्रह्म का कुण्ड है और आत्मा का निज स्थान है । अजपा-जाप करते हुए ज्ञान को प्राप्त करना ही अछरी-मंत्र-जप है । चतुर्वेद (ब्रह्म) में चार खानि तथा चार वाणी हैं । इनके बीच अजपा जाप करना ही चतुरक्षरी-मंत्र-जप है ।^३

कहणि स० ११६/१ = कहणि और रहणि योगी की दो स्थितियाँ हैं । सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का केवल बखान करना 'कहणि' तथा

१ 'हृसे न बोलै उनमनी, चंचल में रह्या मारि'—कबीर ग्रन्थावली—डा० पारसनाथ तिवारी (सा० १/६/१)

२ विस्तार के लिए दे०-नाथ सम्प्रदाय—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १५७ ।

३ — गोरखबानी डा० बड़वाल, पृ० १०१, १०२

सिद्धान्तों का पालन करना 'रहणि' होता है ।

कापड़ी संन्यासी स. ६६/२=गंगोत्तरी से गंगा जल लाने वाले और तीर्थों में विश्वास करने वाले संन्यासियों को कापड़ी संन्यासी कहते हैं ।

काया पलटिवा स० ३३/२=नाग (सीसे का भस्म), वंग (जस्ते का भस्म) और वन-स्पति के प्रयोग से कायाकल्प करना ही काया का पलटना है । यह क्रिया नाथ-पंथियों में चलती थी ।

पदासन स० ४८/२=लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का आसन है जिसके सहारे योगी खड़े रहकर भी बैठने का सा आनन्द लेता है ।

षेचरी रोमा० २०३/१४=योग में चार प्रकार की मुद्राएँ होती हैं—खेचरी, भूचरी, गुप्त, प्रगट । नाथ-पंथियों में मन का निरोधना खेचरी मुद्रा, प्राण-वायु का निरोधन भूचरी मुद्रा, ज्ञान-प्राप्ति गुप्त मुद्रा तथा शरीर साधन प्रगट मुद्रा कहलाती हैं ।

गुटिका नवो० १७०/२=एक गोली विशेष, जिसे मुँह में रखकर योगी अदृश्य हो जाता है ।

गुप्त रोमा० २०३/१४=दे० खेचरी ।

गूढ़ारथ रोमा० २०४/३=ब्रह्मविचार को नाथ-पंथियों में गूढ़ार्थ कहा है ।

चारि आपकला रोमा० २०४/१६=शरीर के अन्दर चार आपकलाएँ होती हैं—ऊरम, धूरम, जोति और ज्वाला । ये योग की मुद्राएँ होती हैं । मन का निरोध ऊरम, प्राणवायु का निरोध धूरम, नेत्रों का निरोध ज्योति तथा श्रवणों का निरोध ज्वाला कहा गया है ।

चारि पांणी रोमा० २०५/३=दे० अंडज ।

चारि बांणी रोमा० २०५/७='खाणी वाणी' एक ग्रन्थ का नाम है । गोरख ने चार खानों तथा चार वाणियों का शरीर के अन्दर ही उल्लेख किया है । चार वाणियाँ हैं—सहज, संजम, सुपाई और अतीत । शरीर को सहज, पवन को संजम, महामुद्रा को सुपाई तथा परमपद को अतीत कहा गया है ।

चारि तकबीर रोमा० २०४/६=शरीर के अन्दर चार प्रकार की योग-युक्तियाँ होती हैं—'दृष्टि', 'सुरति', 'नासिका' और 'जिभ्या' के विषयों को वश में करना ही तकबीर (तदबीर) है ।

चारि दिशा रोमा० २०४/१३=जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में भी है, इस सिद्धान्त के अनुसार चार दिशाएँ भी इस शरीर के अन्दर ही हैं । उत्तर=सबद, पच्छिम=पवन, दक्षिण=दृष्टि और पूरब=सुरति ।

चारि पीर रोमा० २०४/६ = इस पिण्ड में ही चार पीर समाहित हैं। वे हैं—मन के रूप में मत्स्येन्द्रनाथ, पवन के रूप में ईश्वर, चेतना के रूप में चौरंगीनाथ तथा ज्ञान के रूप में गोरखनाथ।

चारि महाधर प० १३३/१ = चार महाधुरंशरों से तात्पर्य संभवतः सनक, सनन्दन सनातन और सनत्कुमार से है। छांदोग्य में सनत्कुमार ने नारद को निवृत्ति मूलक अद्वैत की शिक्षा दी है। अन्य तीन भी उन्हीं के समान समझे जा सकते हैं।¹

चाचरी निधि सि० १५६/७ = योग की एक मुद्रा।

चौअपिरी प० १०२/५ = दे० एक अपिरी।

जंत्र नवो० १७०/६ = जनता को चमत्कृत करने के लिए योगी लोग तंत्र, मंत्र वैद्यक, गुटिका, घात, यंभन, मोहन, वशोकरण, उच्चाटन आदि क्रियाओं को काम में लाते थे। तंत्र = तांत्रिक विद्या मंत्र = मंत्रविद्या, जंत्र = यांत्रिक विद्या, वैद्यक = दवाओं का चमत्कार, गुटिका = मुँह में रखकर अदृश्य करने वाली गोली, घात = भस्म का रमाना, यंभन = स्तम्भन, औचाट = उच्चाटन।

जपमाली प० ६५/५ = योगियों के अनुष्ठार मनुष्य प्रतिदिन २१६०० बार साँस लेता है। पवन पुरुष अर्थात् बाहर—भीतर जाती हुई साँस ही जप की माला है, जिसे 'सोहं हंसा' भी कहा गया है दे० अजपा जाप।

जरणा स० १४/१ = योगी दो प्रकार के हो सकते हैं—जरणा योगी और झरणा योगी। जो शुक्र को अथवा ब्रह्मानुभूति को पचानेवाला होता है उसे जरणा योगी और जो शुक्र को अथवा ब्रह्मानुभूति को स्थिर नहीं रख सकता उसे झरणा योगी कहेंगे।

जेरज रोमा० २०५/४ = दे० अंडज।

जोति रोमा० २०४/१७ = दे० चारि आपकला।

ज्वाला रोमा० २०४/१७ = दे० चारि आपकला।

झरणा जोगी स० १५२/४ = दे० जरणा।

डंडी सं० ७६/१ = चित्त के रूप में दंड को धारण करने वाले योगी। गोरख पंथ में जो अहंकार को दंडित करे वही 'दंडी' साधु कहा जाना चाहिए। एक दंडी, द्विदंडी और त्रिदंडी संन्यासी होते हैं किन्तु गोरख उन्हें ब्रह्मपरक नहीं मानते।

तंत नवो० १७०/१ = दे० जंत्र।

त्रिअपिरी प० १०२/३ = दे० एक अपिरी।

- त्रियडंडी प० १३२/६=दे० डंडी ।
- दूधाधारी स० ४६/२=दूध पर ही शरीर को आश्रित रखने वाले संन्यासी ।
- दुडंडी प० १३२/६=दे० डंडी ।
- द्वै अपिरी प० १०२/१=दे० एक अपिरी ।
- घात नवो० १७०/२=दे० जंत्र ।
- धूरम रोमा० २०४/१७=दे० चारि आपकला ।
- नवपंड प्राण० १६४/५=भूमि के नौ विभाग जैसे—भारत, इलावृत, त्रिपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रमयवकश । नाथ-पंथियों में शरीर के नवद्वार ही नवखण्ड हैं ।
- नादो प० ११०/६=दे० आकासी ।
- निरति स० ११०/१=मन को बाह्य वृत्तियों से हटाकर अन्तर्मुखी बनाना ही सुरति और निरति योग-साधना होती है ।
- निराकार रोमा० २०५/११=गोरख ने चार वाणियों तथा चार खानों (दे० चारि बांणी तथा चारि पांणि) का विचार करने वाले को निराकार कहा है ।
- निसपती-जोगी स० १३६/१=नाना कठोर साधनाओं के द्वारा जब योगी शुद्ध हो जाता है तो वह निष्पत्ति प्राप्त योगी कहा जाता है ।
- नौ नाथ प० १३३/७='महार्णव तंत्र' में नव नाथों के नाम हैं—गोरखनाथ, जालंधरनाथ, नागार्जुन, सहस्रार्जुन, दत्तात्रेय, देवदत्त, जड़भरत, आदिनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ । नव नाथों के नाम विभिन्न प्रकार बताये गये हैं ।¹
- परचय जोगी स० १३८/१=उन्मन समाधि में लीन रहने वाला योगी परिचय जोगी कहलाता है ।
- परमारथ रोमा० २०४/३=प्राण-भेद करना नाथ-पंथियों में परमार्थ कहलाता है ।
- पीर स० १४/१=योग-मार्ग में जैसे गुरुओं को माना जाता है, मुसलमानों में वैसे ही पीरों को माना जाता है । गोरख ने 'पीर' शब्द को ही स्वीकार कर लिया है । उनके गुरु महंत भी कहलाते हैं । किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि वस्तुतः कोई तात्त्विक मुसलमानी प्रभाव उन पर पड़ा हो ।² (दे० चारि पीर)
- प्रगट रोमा० २०३/१४=दे० पेशरी ।
- बजर आत्म० १७६/६=शुक्र का शोषण करके उर्ध्वगामी बनाना बज्रौली मुद्रा कही जाती है ।

1 देखिए—नाथ संप्रदाय—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २७-२८

2 गोरखवानी—वङ्गवाल, पृ० ६

बारह कला रोमा० २०५/१६=सूर्य की बारह कला कही जाती हैं। नाथ-पंथियों में ये बारह कलाएँ शरीर के अन्दर ही हैं, जैसे चिंता, तरंग, ड्यंभ, माया, परगृहण, परपंच, हेतु, बुधि, काम, क्रोध, लोभ, दृष्टि।

बारह चेला प० १३३/१=बारह चेलों से गोरख का तात्पर्य संभवतः नारद, जनक, याज्ञवल्क्य, लोमश, मार्कंडेय, व्यास, वसिष्ठ, शुक्र, जड़-भरत, दत्त, गौड़पाद और शंकर से हो सकता है।¹

ब्यंदी प० ११०/६=दे० आकासी।

भूचरी-सिद्धि सि० १५६/७=दे० पेचरी।

मंत नवो० १७०/२=दे० जंत्र।

येक डंडी प० १३२/६=दे० डंडी।

संजम रोमा० २०५/८=दे० चारि बाणौ।

ससवेद प० १२७/३=वेद के स्थान पर गोरख ने स्वसंवेद को पढ़ने अर्थात् अपरोक्षानुभूति को प्राप्त करने का उपदेश दिया है।²

सहज रोमा० २०५/८=दे० चारिबाणी।

सप्त दीप प्राण० १६४/५=पुराणानुसार पृथ्वी के सात विभाग थे—जंबू, कुश, प्लक्ष, शाल्मलि, क्रौंच, शाक और पुष्कर द्वीप।

सरीरारथ रोमा० २०४/३=शरीर-भेद करना ही नाथ-पंथियों में शरीरार्थ कहा जाता है।

सींगी प० ११०/६=दे० आकासी।

सुपाइ रोमा० २०५/८=दे० चारि बाणी।

सुरति स० ११०/१=दे० निरति।

सोलह कला रोमा० २०६/१=चन्द्रमा की सोलह कलाएँ मानी जाती हैं। शरीर के अन्दर ये सोलह कलाएँ हैं—साँति, नृवर्त, क्षिमां, निर्मल निहचल, ग्यान, सरूप, पद, नृवांण, नृविष, निरंजन आहार, निन्द्रा, मैथुन, बाई, अमृत।

सोहं हंसा स० ४६/२=दे० अजपा जाप तथा जपमाली।

स्वेतरज रोमा० २०५/४=दे० अंडरज।

□

1 गोरखबानी—डा० बड़धवाल, पृ० १३३

2 'स्वसंवेदन' ज्ञान ही सूक्ष्मवेद है—शब्द रूप में भी और अर्थ रूप में भी। परन्तु नाथयोगी प्रणव या ओंकार को ही सूक्ष्मवेद मानते हैं। (नाथ संप्रदाय—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १५५)

४. गोरखनाथ की काव्यगत विशेषताएँ

जिस प्रकार आदिकालीन हिन्दी-भाषा के विकास में गोरखनाथ की भूमिका महत्वपूर्ण रही है और जन-सामान्य के हित के लिए लोकभाषा को साहित्यिक भाषा के पद पर आसीन कराने का उनका सत् साहस सराहनीय रहा है, उसी प्रकार उनकी काव्यात्मकता भी हिन्दी-साहित्य को आन्दोलनकारी देन रही है। हिन्दी-कविता में जो रहस्यवाद, अप्रस्तुत विधान, राग-रागिनियों, उलटबाँसियों, विरह-वेदना और उक्ति-वैचित्र्य के साथ-साथ सहज-सरल उपदेशात्मक शैली की धारा प्रवाहित रही है, उसका मूल स्रोत गोरखनाथ की कविता ही है। “कोई भी समर्थ कवि लोकभाषा में अपने व्यक्तित्व को, शैली को पूरी तरह ओत-प्रोत करके अपनी कारयित्रों प्रतिभा और कल्पना-शक्ति के सहारे उसे विशिष्ट काव्यभाषा की शैली का रूप दे देता है। गोरखनाथ जी ने भी जन-सामान्य की भाषा में अपने शैली को समाहित करके उसे विशिष्ट रूप दे दिया है। एक निर्द्वन्द्व रमते योगी का, आजन्म ब्रह्म में लीन ब्रह्मचारी का, अधिकारी शिष्य को रहस्य के उपदेष्टा गुरु का, आडम्बरशून्य फक्कड़ साधु का, कथनी करनी और रहनी में एकाकार महामानव का व्यक्तित्व उसकी भाषा में उतर आया है।”¹

कुछ विद्वान् गोरखनाथ को एकमात्र साधक के रूप में ही स्वीकार करते हैं। वे उनकी साधना को वैयक्तिक, गुह्य, आत्मानुभूत एवं स्वसंवेद्य मानने हुए उन पर वैयक्तिकता का आरोप लगाते हैं। उनके मतानुसार गोरखनाथ की रचनाओं में काव्यात्मकता नहीं है। वे शास्त्रकार तो हैं, कवि नहीं। लोक का संस्कारित सामान्य अनुभव भी उनमें नहीं है। अतः उनकी रचनाओं को साहित्य भी कोटि में नहीं लेना चाहिए। इस प्रकार की धारणा रखने वाले विद्वानों को (अगर वे संसार में विद्यमान हैं तो) गोरखनाथ की रचनाओं का पुनः अध्ययन करना चाहिए। साहित्यिकता की कसौटी पर मतभेद हो सकता है। साहित्य के स्तर भी अनेक हो सकते हैं किन्तु गोरखनाथ की रचनाओं के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा रखने वाले विद्वान् भ्रम में हैं। “गोरखनाथ साधक मात्र ही नहीं हैं, वे साधना के अनुभवों को शब्दों का आधान देते हैं। आधान तो शास्त्रकार भी देता है—वह अपेक्षित सत्य तथा शास्त्र-

बोध को अनुभवहीन भाषा में समझाता है, शास्त्रकार की भाषा में रचनाघषिता नहीं होती भाषा के माध्यम से शास्त्रकार अपने या अपने पूर्वजों किसी अन्य के शास्त्रगत अनुभवों का निवरण देता है। उसे सरल भाषिक प्रक्रिया के माध्यम से समझाना चाहता है। उसके लिए माध्यम है, तर्क, संस्य, और शब्दकोश। गोरखनाथ केवल साधक नहीं हैं अन्यथा आत्मलोक का परित्याग कर भाषिक जगत् में जाने का उनका क्या प्रयोजन ? शास्त्रकार भी नहीं है, क्योंकि उनके अनुभव न शास्त्रनिष्ठ के हैं, न शास्त्रगत हैं। वे व्यक्तहारण हैं। उनके लिए शास्त्र का कोई बौद्धिक नहीं है, क्योंकि वे साधक के साथ-साथ कवि भी हैं। लोकजीवन में किये गये साधनात्मक अनुभवों को वे वाणी देते हैं। यह वाणी देना अपने अनुभव के लिए भाषा का इस्तेमाल करना है, उस लोक-निरपेक्ष आध्यात्मिक अनुभव को सर्वथा नई भाषा द्वारा रचकर प्रस्तुत करना, साथ ही अपने अभिप्राय को उस भाषिक रचना द्वारा सम्प्रेषित करके साधारणीकृत करना सर्वथा एक जटिल भाषिक कार्य है।”¹

कविता तो अनुभूति की अभिव्यक्ति है। अनुभूति का क्षेत्र कोई भी हो सकता है किन्तु अभिव्यक्ति में संश्लेषणीयता होनी चाहिए। कोई भी द्रष्टा कवि समसामयिक अनुभूति से अपने को नहीं बचा सकता। गोरखनाथ के समय समाज में अनैतिकता का साम्राज्य बढ़ रहा था। विरोधकर धर्म के क्षेत्र में आडम्बर का बोलचाल था। तथा-कथित साधुजन या तो कुटुम्बों के रूप में या फिर लस्कर के रूप में जीवन के विविध मोकों को मोकने में रमे हुए थे। कोई पोषी के भार से दबा-दबा कांप रहा है तो कोई दण्ड लेकर तीर्थों का भ्रमण करता हुआ अपना नर्वस्व बनाये हुए है। पुराण बौक्तो-बाँक्तो मत्ता रूँध मर्या है। ज्ञान तथा शास्त्र-चर्चा करते-करते ज्ञानो जन उबे हुए हैं। लोक ब्रह्म को जानना चाहता है, उसका अनुभव करना चाहता है, उसको बताने के लिए न तो उनके पास युक्ति है और न वाणी है। कबी मुल्ने, पंडित, पुजारी, लोक को भ्रम में डाले हुए भटक रहे हैं। इस जटिल चुनौती को युवदृष्टा कवि गोरखनाथ ने स्वीकार कर शास्त्रों में वर्णित ब्रह्म और योग को अनुभव की प्रयोगशाला में परखकर उसे जन-सामान्य की प्रतीति का विषय बनाने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया।

गोरखनाथ ने साहित्यशास्त्र की अधिक चिन्ता नहीं की। उन्होंने विद्यासु शिष्यों और भक्तों के प्रश्नों को लेकर उपदेशी विधान के अन्तर्गत वाणिषों की रचना की। वाणिषों में स्वानुभूत तथ्यों की अभिव्यक्ति है। सरलता से बोधगम्य और शार्फक बनाने के लिए उन्होंने इन वाणिषों में श्लेष, यमक, प्रतीप तथा उक्ति-वैचित्र्य का सहज-स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया, उलटबाँसी अथवा विपर्यय-शैली को अपनाया

1 डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह, योगवाणी, नायसोम-साधना निशेषक, जबरवी १९८३ ई० में “हिन्दी साहित्य की मूल चेतना के विकास में नाथ सम्प्रदाय का योगदान” लिख, पृष्ठ २३३

और रहस्यवादी परम्परा को लेकर चले।¹ “लोक-चेतना से सम्पृक्त होना, लोकात्मक साहित्य की सबसे बड़ी पहचान है। साहित्य का सम्बन्ध शास्त्रबोध से कहीं अधिक अनुभव-बोध से है। यदि इस युग के वाङ्मय को ध्यानपूर्वक देखें तो लोक-संकट, उस संकट से मुक्ति तथा आत्म-संस्थापन या समाज के बीच लोकात्मक अनुभव के संतुलन की इनकी अपनी निजी समस्या निरन्तर दिखाई पड़ती है। साहित्य की संजीवनी शक्ति यही लोकानुभव है। लोक में भोगे जाते हुए अनुभव को आत्मोपेक्षा पूर्वक भोग कर रचनाकार शब्द तथा अर्थ के माध्यमों से सम्बन्ध बनाता है। इस प्रक्रिया में रस-मिद्वान्त आता है या नहीं, अलंकार तथा वक्रताविधान को स्थान मिला है या नहीं, अनुभव की प्रक्रिया में इन शास्त्रों की चिन्ता निरर्थक है।”²

फिर भी यदि साहित्य की मूल चेतना लोकानुभव को ध्यान में रखते हुए हम गोरखनाथ की रचनाओं का काव्यात्मक अध्ययन करें तो उनमें काव्य के सभी लक्षण दृष्टिगत हो जाएंगे।

४.१. छन्द-विधान तथा शैली

छन्द, सर्जना की कामना के मूल में निहित होता है। इच्छा का रचनात्मक स्वरूप ही छन्द है। यास्क के निरुक्त के अनुसार छन्द ‘छद्’ धातु से बना है। ‘छद्’ का अर्थ है प्रसन्न करना, फुसलाना, आच्छादन करना, बाँधना, कामना और आत्सादित करना इत्यादि। श्री जगन्नाथ प्रसाद ‘भानु’ ने ‘छन्द’ की परिभाषा इस प्रकार दी है—

‘मत्त वरण यति गति नियम, अंतहि समता बन्द।

जा पद रचना में मिले, भानु भनत सुह छन्द ॥’³

छन्द का संगीत और संगीतात्मकता से, तथा संगीत का मनुष्य-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। “कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होता है। छन्दबद्ध शब्द चुम्बक के पार्श्ववर्ती लौह-चूर्णों की तरह अपने चारों ओर एक आकर्षण क्षेत्र तैयार कर लेते हैं।”⁴ छन्द का संगीत मनुष्य को तन्मय बना देता है। “छन्द भाव का बन्धन होकर भी हृदय को मुक्ति देता है। भाव का अरुण छन्द के आलोक में विश्वात्म बन जाता है, और व्यक्ति के जीवन-वृत्त को परिधि विस्तृत होकर सृष्टिव्यापी अनन्त मानस का स्पर्श कर लेती है।”⁵

यह तन्मयता आध्यात्मिक जीवन के लिए और भी अधिक अपेक्षित है। यही

- 1 योगवाणी, गोरख विज्ञेयांक, जनवरी १९७७ ई० में डा० शान्ति प्रसाद चन्दोला का लेख ‘नाथवाणियों का साहित्यिक मूल्यांकन’ पृष्ठ ३७४
- 2 डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह, योगवाणी, नाथयोग साधना विज्ञेयांक, जनवरी १९८३ ई० में “हिन्दी साहित्य की मूल-चेतना के विकास में नाथसम्प्रदाय का योगदान” लेख, पृ० २३०
- 3 श्री जगन्नाथ प्रसाद ‘भानु’, छन्द प्रभाकर, पृष्ठ १
- 4 कविवर सुमित्रानन्दन पन्, पल्लव, भूमिका, पृष्ठ ३०-३१
- 5 डा० शुभलाल शुक्ल, आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना, पृष्ठ ३७

कारण है कि सभी साधना-सम्प्रदायों ने अपनी कविताओं में संगीतात्मकता के इस गुण को भरपूर सँजोया है। गोरखनाथ ने भी संगीत-शक्ति के महत्त्व को स्वीकार कर अपनी रचनाओं में उससे सम्यक् सहायता ली है। उनकी वाणियाँ अधिकतर राग-रागिनियों में आवद्ध हैं। इनमें रामश्री, असावरी, रामगरी और बसंत मुख्य हैं। राग-रागिनियों के अतिरिक्त गोरखनाथ ने परम्परागत छन्दों-चौपाई, षट्पदी, दोहा आदि-का प्रयोग भी अपनी वाणियों के लिए किया है। ये सभी सबदियों के नाम से जानी जाती हैं। 'सबदी' से एक विशेष प्रकार का संगीत-पद्धति का अर्थ ध्वनित होता है। आज भी नाथ गढ़ियों में किसी उत्सव के अवसर पर सबदियों का संगीत सुनने को मिल सकता है। "यह सबदियों का संगीत उपदेशी विधान के अन्तर्गत आरम्भ होता है। सबद-संगीत के गानेवाले सम्प्रदाय में दीक्षित होते हैं और 'शब्दी' अथवा 'मुनवर' कहलाते हैं। इस संगीत में स्वर नहीं टूटना चाहिए, इसलिए तीन-चार व्यक्ति साथ मिलकर संगीत की अवृत्ति करते हैं। यह गायन 'मार्गी' गायन कहलाता है और इसमें नाथाचार्यों की सबदियाँ गायी जाती हैं। इस संगीत की शैली, चाल, ढाल, लय, धुन, ताल आदि सब विशिष्ट होते हैं। श्रोताओं को यह सबद-संगीत किसी अचिन्त्य लोक में पहुँचा देता है। कहना न होगा कि वाणियों की रचना में इन संगीतात्मक छन्दों का सम्यक् ध्यान रखा गया है।"¹

राग-रागिनियों एवं छन्दों के अतिरिक्त-गोरखनाथ की कविता कथोपकथन-शैली में भी मिलती है। जिस छन्द-मुक्त और अतुकान्त कविता को आधुनिक युग की देन समझा जाता है, उसके दर्शन सर्वप्रथम हमें गोरखनाथ की रचनाओं में होते हैं। आध्यात्मिक तथ्यों का निरूपण करना आसान नहीं है। गोरखनाथ ने आध्यात्मिक ज्ञान के गूढ़ विषय को सरल एवं बोधगम्य बनाने के लिए कहीं-कहीं प्रश्नोत्तर-शैली का प्रयोग भी किया है। कथन की नाटकीय शैली में बोधगम्यता के साथ-साथ आकर्षण भी रहता है। कथोपकथन की इस नाटकीय शैली में गोरखनाथ की 'मछीन्द्र गोरष बोध', 'गोरष गणेश गुष्टि' और 'गोरष दत्त गुष्टि' रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। 'मछीन्द्र गोरष बोध' से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

गोरष—	स्वामी राति न होतीं दिन कहां थैं आया ।
	दिन प्रसर्या राति कहां समाया ॥
	दिवा बुझानां जोति कहां लीया वास ।
	प्यंड न होता तब प्राण का कौण बेसास ॥
मछीन्द्र—	अवधू राति न होतीं दिन सहजैं आया ।
	दिन प्रसर्या राति सहजैं समाया ॥
	दिवा बुझानां जोति निरन्तर लीया वास ।

1 डा० शान्ति प्रसाद चन्दोला, योगवाणी, सितम्बर १९७७ ई० में 'नाथ-वाणियों का साहित्यिक मूल्यांकन' लेख ।

प्यंङ न होता तब प्रांण का सुनि बेसास ॥¹

‘गोरप गणेश गुष्टि’ से एक उदाहरण देखिए—

गणेश पूछै गोरप कहै ।

तुम्हें स्वांमी कहाँ थे आव्या, कहा तुम्हार नाम ।

अम्हें निरंतरि थै बर आव्या, जोगी अम्हारा नाम ।

स्वांमी जोगी तौ ते बोलिये जिन एता मेर मेपला रच्या ।

तुम्हें कौण जोगी ।

अम्हें निरंजन जोगी अतीत गुर चेला ।

४.२ भाषा एवं शब्द-विधान

भाषाओं और विचारों को अभिव्यक्त करने का सबसे सहज एवं सशक्त माध्यम भाषा है। प्रत्येक साहित्यकार के अन्तःस्तर में अपने कथन को प्रभावी बनाने की इच्छा निहित रहती है। कथन को प्रभावशाली बनाने की प्रक्रिया में भाषा तीन रूप ग्रहण करती है। भाषा का एक स्तर वह है, जहाँ साहित्यकार अप्रस्तुत-विधान, रूपक विधान, प्रतीक विधान एवं कल्पना का आश्रय ग्रहण करता है। अपनी भाव-प्रतीति को सरल एवं सुगम बनाने के लिए वह शिल्प-लालित्य एवं अमूर्त सौन्दर्य के प्रति अधिक आकर्षक होता है। वह आभिजात्य निष्ठा से युक्त होता है।

भाषा का तीसरा स्तर वह है, जहाँ साहित्यकार लोकनिष्ठा से प्रेरित होता है और अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति को सुगम बनाने के लिए लोक-जीवन एवं लोकव्यवहार से ही अपने प्रतीकों एवं बिम्बों को चुनता है। उसमें शिल्प-लालित्य एवं अमूर्त-सौन्दर्य के प्रति ललक नहीं होती।

भाषा का तीसरा स्तर वह है, जहाँ साहित्यकार प्रतीक, बिम्ब एवं रूपकों से सर्वथा मुक्त होकर जन-सामान्य की भाषा में अभिघात्मक अभिव्यक्ति करता है।

गोरखनाथ की भाषा में दूसरा और तीसरा स्तर मिलता है। लोक निष्ठा का कवि जीवन के व्यवहार को चित्रित एवं स्पष्ट करने के लिए सरलतम, व्यवहार-गम्य तथा लोकानुभव के बीच विकसित होने वाले अप्रस्तुतों से अपना कार्य संपादित करता है।

घटि घटि गोरप वाही क्यारी । जो निपजै सो होइ हमारी ॥

घटि घटि गोरप कहै कहाणी । काचै भाड़ै रहै न पाणी ॥²

किसान बड़े परिश्रम से अपने खेत में क्यारियाँ बनाता है, उनमें बीज बोता है किन्तु सारे बीज नहीं उगते। किसान को तो वही मिलता है, जो बीज उगकर फल अथवा दाना देता है। कच्चे बर्तन में पानी नहीं टिक सकता।

भाषा के तीसरे स्तर पर विवेचन करते हुए डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह लिखते हैं,

1 गोरखबानी, पृष्ठ १८६

2 गोरखबानी, सबदी ३७

‘काव्य भाषा की तीसरी श्रेणी वहाँ आती है, जहाँ विना किसी शैली-विधान के कवि अभिप्रायव्यंजक शब्दों को सही ढंग से पकड़कर उसमें निहित अर्थ-शक्ति का भरपूर उपयोग करता है। दूसरे शब्दों में काव्य भाषा के उस रूप से जो सादृश्य, प्रतीक, बिम्ब, कल्पना, रूपकादि से सर्वथा मुक्त प्रायः अभिधेय जैसा रहता है, वस्तुतः अनुभूति के व्यंजक उचित तथा सही शब्दों की तलाश का सम्बन्ध जुड़ा है। श्री गोरखनाथ भी परम्परागत शैली विधानों से मुक्त होकर भावव्यंजक उचित शब्दों को प्रयुक्त करने के प्रति सचेष्ट दिखाई पड़ते हैं। भावव्यंजना के लिए सर्वथा समुचित और सही शब्दों का प्रयोग परवर्ती संत साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है, जिसका मूल गोरख-साहित्य में दिखाई पड़ता है।¹” ऐसी सामान्य भाषा में भी गोरख तोखी मार करते दृष्टिगत होते हैं—

दूधाधारी पर धरि चित । नागा लकड़ी चाहै नित ।

मोनों करै म्यंत्र की आस । बिन गुरु गुदड़ी नही बेसास ॥

(सबदी ४०)

चाहे दूधाधारी हो, चाहे नागा हो । चाहे मोनी हो और चाहे गुदड़ी साधु हो, जब तक उसका कोई सच्चा गुरु नहीं है, तब तक उसकी ये सभी साधनाएँ निरर्थक हैं । निरर्थक ही नहीं आसक्तियुक्त हैं । साधना के लिए आसक्ति मुक्त होना आवश्यक है । गोरखनाथ ने सममामयिक परंपरावादी आसक्त साधकों पर सरल और सीधी भाषा में करारी चोट की है ।

बड़े बड़े कूले मोटे मोटे पेट, नहीं रे पूता गुरु सौ भेट ।

पड़ पड़ काया निरमल नेत, भई रे पूता गुरु सौ भेट ।

(सबदी, १०६)

साधना की कामना करने वाले ने गोरखनाथ से पूछा, मुझे गुरु की तलाश है । गोरख ने कहा, खोजो । साधक ने कहा, बड़े बड़े कूले और मोटे मोटे पेट वाला है । गोरख ने कहा, नहीं रे पुत्र, अभी तुम्हारी भेंट गुरु से नहीं हुई । फिर खोजो । साधक ने फिर आकर कहा, खड़ खड़ काया वाला किन्तु निर्मल नेत्रों वाला मिला है । गोरख ने कहा, हाँ पुत्र अब तुम्हारी भेंट सच्चे गुरु से हो गयी । कितनी सरल भाषा में कितनी तोखी मार है, इस सबदी में!

कहणि सुहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणि विन थोथी ।

पढ़्या गुण्या सूबा बिलाई पाया, पंडित के हाथि रह गई पोथी ॥

(सबदी, ११६)

गोरखनाथ मनसा-वाचा-कर्मणा में समन्वय चाहते हैं । अनुभूति और व्यावहारिकता को वे अधिक महत्त्व देते हैं । आध्यात्मिक सूत्रों को मात्र रटने से मनुष्य सदा साधक नहीं हो सकता । चन्द शब्दों को रटने वाला तोता अपने को बिल्ली से

1 डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह, योगवाणी, ‘नाथयोग-साधना विशेषांक’ में ‘हिन्दी साहित्य की मूल चेतना के विकास में नाथ-सम्प्रदाय का योगदान’ लेख, पृष्ठ २३८

नहीं बचा पाता । मात्र पोथियों को रटने वाला पंडित अपने को काल से नहीं बचा पाता । ऐसा ज्ञान किस काम का ? अनुभवहीन ज्ञानियों पर बड़ी करारी चोट है ।

सरल और सीधी भाषा को मारक बनाने के लिए गोरखनाथ ने लोक-प्रचलित मुहावरों और कहावतों का प्रयोग बड़ी सफलता के साथ किया है । कुछ महत्वपूर्ण मुहावरों के उदाहरण देखिए—

- १- और दुनी सब धंधे लाई । (सबदी, ६)
- २- भरि भरि पाउं (सबदी, ३०)
- ३- बोलिबा अमृत बाणी (सबदी, ६३)
- ४- आगिला अगनी होइबा (सबदी, ६३)
- ५- आपण होइबा पाणी (सबदी, ६३)
- ६- लंका छाडि पलंका जाइबा (सबदी, ६४)
- ७- सिर को पोट उतारी (सबदी, २०६)
- ८- काहे को पचि मरना (पद, २२, पृष्ठ ११४)
- ९- अरंड अंभी कत सीचों (पद २२, पृष्ठ ११५)
- १०- टार्या टरै न (ग्यान तिलक ७, पृष्ठ २०६)

कुछ लोकोक्तियों के उदाहरण देखिए—

- १- काचें भांडें रहै न पाणी (सबदी, ३७)
- २- अपणीं करणीं उतरिबा पारं (सबदी, ५६)
- ३- यह जुग है कांटे की बाड़ी (सबदी, ७३)
- ४- करवै होई सु निकसै टोटी (सबदी, १२२)
- ५- मन चंगा तो कठौती ही गंगा (सबदी, १५३)
- ६- बनि बनि चंदन रूप न कोइ (सबदी, १७०)
- ७- जब तब कलंक लगाइसी काली हांडी हाथि (सबदी, २५०)
- ८- बसत घनेरी बासण वोछा (सबदी, २५५)
- ९- दूधें घोया कोइला उजला न होइला (पद ३४, पृष्ठ १२८)
- १०- कागा कंठै पहुप माल हंसला न भैला (पद ३४, पृष्ठ १२८)
- ११- जैसा करै सो तैसा पाय (आत्मबोध २१, पृष्ठ १७८)
- १२- कांटा सेती कांटा घूटै कूंची सेती ताला (ग्यान तिलक १, पृष्ठ २०७)

४. ३. प्रतीक-विधान

प्रतीक का शाब्दिक अर्थ चिह्न, प्रतिमा, संकेत, प्रतिरूप आदि होता है । 'तिन्' धातु में 'प्रति' उपसर्ग और 'ईकन्' प्रत्यय लगने से 'प्रतीक' बना । इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिस साधन के द्वारा ज्ञान की प्रतीति होती है, उसे 'प्रतीक' कहते हैं । साहित्यिक क्षेत्र में प्रतीक से तात्पर्य उस वस्तु से है, जो स्वयं गोचर होते हुए भी किसी अन्य अगोचर वस्तु, किसी भाव, विचार, सिद्धान्त या आदर्श की ओर संकेत करती

है। “किसी अन्य स्तर को समानुक्त वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करता है। जैसे अदृश्य या अप्रस्तुत ईश्वर, देवता अथवा व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिमा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है।”¹

सुप्रसिद्ध संत-साधक आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने साहित्यिक दृष्टि से प्रतीक के प्रयोग की वास्तविक स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया है—“प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु को ओर इंगित करनेवाला न तो संकेत मात्र है और न उसका स्मरण दिलानेवाला कोई चित्र या प्रतिरूप ही है। यह उसका जीता-जागता एवं पूर्ण क्रियाशील प्रतिनिधि है, जिस कारण इसे प्रयोग में लानेवाले को इसके व्याज से उसके उपयुक्त सभी प्रकार के भावों को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है।”²

डा. अम्बाप्रसाद ‘सुमन’ ने प्रतीक और उपमानों को विस्तार से समझाया है। उनका कहना है कि “अप्रस्तुत-विधान के माध्यम से जब स्रष्टा साहित्यकार अपनी भाषागत अभिव्यंजना की रंजना को प्रभावशालिनी बनाने लगता है, तब ललित साहित्यिक भाषा में अर्थात् अलंकृत भाषा में प्रतीकों या उपमानों की सृष्टि होने लगती है। जिन प्रतीकों अथवा उपमानों का संबंध सर्वानुभूत सार्वजनीन भावों से होता है, वे शीघ्रता में हमें बोधगम्य हो जाते हैं और अधिक प्रभावं होते हैं। लोक-हृदय की पहचानवाला साहित्यकार सार्वजनीन भावद्योतक प्रतीकों या उपमानों को अच्छी तरह सुन्दर शैली में प्रस्तुत कर सकता है।”³

अनेक विद्वानों का मत है कि रूढ़ उपमान ही प्रतीक बन जाते हैं। अर्थात् जो उपमान अधिक प्रसिद्ध हो जाते हैं वे ही प्रतीक बन जाते हैं। किन्तु डा. नगेन्द्र प्रतीक और उपमान में थोड़ा अन्तर मानते हैं। डा. नगेन्द्र का मत है—“प्रतीक और उपमान की भेदक-रेखा सूक्ष्म और तरल है। सामान्यतः उपमान ही अपनी अति प्रसिद्धि के कारण प्रतीक बन जाता है। उपयुक्त उदाहरण के पिजरा को तो इस तर्क से प्रतीक माना जा सकता है, क्योंकि निर्गुण संतकाव्य में इसका शरीर के संबंध में बार-बार प्रयोग हुआ है; लेकिन पंखों को प्रतीक मानना शायद कठिन होगा। उपयुक्त लक्षण सामान्य प्रतीकों पर ही लागू होता है। अचेतन के प्रतीकों या अनुष्ठान आदि से संबद्ध प्रतीकों की स्थिति सर्वथा भिन्न है।”

वस्तुतः उपमान की रूढ़ता रूपकातिशयोक्ति अलंकार में तो आवश्यक है किन्तु प्रतीक में उपमान का रूढ़ होना आवश्यक नहीं। यह भी आवश्यक नहीं है कि रूढ़ उपमान प्रतीक नहीं हो सकता। प्रतीक तो उपमान हो सकता है किन्तु यह आवश्यक

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १—डा. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. ५१५

2. कबीर साहित्य की परख, पृ. १४२

3. सम्मेलन पत्रिका—‘साहित्य में अप्रस्तुत-विधान और आचार्य शुक्ल का संदर्भ’, पृ. ६५

नहीं कि हर उपमान प्रतीक हो। प्रतीक तो एक प्रकार का भावविधान है। उपमान और उपमेय के माध्यम से तो अनेक अलंकारों के द्वारा बाहरी रूप-गुण-साम्य प्रदर्शित किया जाता है किन्तु प्रतीक-विधान के अन्तर्गत तो आंतरिक प्रभावादि का साम्य निहित रहता है। डा. अम्बाप्रसाद 'सुमन' ने प्रतीक और उपमान के अन्तर को इन शब्दों में स्पष्ट किया है—“प्रतीक में उपमान से भिन्नता यह है कि प्रतीक सादृश्य और साधर्म्य के अतिरिक्त अन्य साम्यों को भी लेकर चलता है। प्रतीक का अप्रस्तुत समष्टि रूप में अनेक भाव-पुंज को भी संकेतित करता है। वह आभ्यन्तर प्रभावसाम्य का भी पक्षधर है। उपमान-विधान यदि एक वस्तु-विधान है, तो प्रतीकविधान एक भावविधान है। प्रतीक सदा अकेला आता है, लेकिन उपमान अकेला भी आता है और उपमेय सहित भी।”¹

प्रतीकों का प्रयोग साहित्य में आदिकाल से चला आ रहा है। संतसाधकों ने अपनी संघा भाषा और उलटबांसियों में प्रतीकों का भरपूर प्रयोग किया है। गोरखनाथ में प्रतीकों का उपयोग सबसे अधिक मिलता है। तीसरे अध्याय में 'संघाभाषा' तथा 'प्रतीकात्मक शब्दावली' के अन्तर्गत गोरखनाथ द्वारा प्रयुक्त सभी प्रतीकों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

गोरखनाथ द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों से भी यह सिद्ध होता है कि प्रतीक के लिए रूढ़ उपमान का होना आवश्यक नहीं है। उन्होंने 'माया' के लिए ४६ प्रतीकों का प्रयोग किया है। जैसे, बाघनी, स्यंघ, सरप, बिलइया, गाय, चींटी, ऊट, शूल, चूल्हा, लंका, माता आदि। ये सभी माया के लिए न तो रूढ़ उपमान रहे हैं और न ४६ प्रतीकों का रूढ़ होना संभव ही है। इसी प्रकार जगत्, जीवात्मा, जीवन, मन, चेतना, अहंकार, ज्ञान, योगी, शरीर, प्राण, सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला, षट्चक्र, कुण्डलिनी और समाधि आदि के लिए कई-कई प्रतीकों का प्रयोग गोरखनाथ ने किया है। ये सभी रूढ़ उपमान नहीं हैं फिर भी प्रतीक हैं। तीसरे अध्याय में 'संघाभाषा' तथा 'प्रतीकात्मक शब्दावली' के अन्तर्गत इन सभी प्रतीकों का अर्थपरक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ साहित्यशास्त्र एवं भावभूमि की दृष्टि से गोरखनाथ की प्रतीक-योजना का विवेचन प्रस्तुत है।

प्रतीकों का वर्गीकरण विद्वानों ने न्यूनाधिक भेद के साथ किया है। डा. कैलाश बाजपेयी ने आठ प्रकार के प्रतीक गिनाये हैं—

१- पौराणिक प्रतीक	}	साम्कृतिक प्रतीक
२- ऐतिहासिक प्रतीक		
३- धार्मिक प्रतीक		
४- जड़ प्रतीक	}	प्रकृत प्रतीक
५- चेतन प्रतीक		

६- वैज्ञानिक प्रतीक	}	सैद्धान्तिक प्रतीक
७- दार्शनिक प्रतीक		
८- राजनैतिक प्रतीक		

सृजने को गोरखनाथ की रचनाओं में सभी प्रकार के प्रतीक ढोये जा सकते हैं किन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों का मिश्रण कुछ अलग ही है। उनकी रचनाओं में तीन प्रकार के प्रतीक मुख्य रूप से मिलते हैं—

१- लोक जीवन से गृहीत प्रतीक

२- प्राकृतिक प्रतीक

३- सांस्कृतिक प्रतीक

४. ३. १. लोक जीवन से गृहीत प्रतीक—लोक भाषा एवं लोक जीवन के कवि के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वह अपने प्रतीकों का चयन लोक जीवन से अधिक करे। गोरखनाथ प्रतीक-विधान के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके अनेक पद ऐसे हैं, जिनमें पूरी बात प्रतीकों के माध्यम से ही कही है। जहाँ-वहाँ उन्होंने उल्टी चर्चा अथवा उलबांसियों का चमत्कार दिखाया है, वहाँ-वहाँ प्रतीकों का सहारा लिया गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

नाथ बोलें अमृत बाँगीं बरिपंगो कंबली भीजैगा पांणी ।
गाड़ि पडरवा बाँधिल पूंटा, चलें दमांमां बाजिले ऊँटा ।
कउवा की डाली पोपल वासैं मूसा के सबद बिलइया नासैं ।
चली बटावा याकी बाट, सोवैं हुकरिया ठौरैं पाट ।
ढूकिले कूकर भूकिले चोर, काढे घणीं पुकारैं डोर ।
ऊजड़ पेड़ा नगर मझारी तलि गागरि ऊमर पनिहारी ।
भगरी परि धूल्हा घूँघाई, पोवणहारा को रोटी पाइ ।
कामिनि जलैं अगोठी तापैं, बिचि बैसंदर बरहर कापैं ।
एक जु रडिया रडती आई, बहू बिवाई सासू जाई ।

नगरी की पांणीं कूई आवैं, उलटी चरचा गोरप गावैं ।—पद ४७

इस पद के अभिप्रेयार्थ से लगता है कि सब कुछ उलटा है—किन्तु जब प्रतीकों को समझ लिया जाता है तो सारी चर्चा सीधो हो जाती है। इस पद के प्रतीक और उपमेय इस प्रकार हैं—

प्रतीक	प्रतीयमान	प्रतीक	प्रतीयमान
कंबली	दैहिक मानसिक कर्म	ऊँटा	स्थूल मन
पांणी	अमृतमय कर्म	कउवा	अविवेकी मन
गाड़ि	रोकना	डाली	ऊँची अवस्था
पडरवा	अविवेक	पोपल	ब्रह्मानुभव
पूँटा	माया	मूसा	सूक्ष्म अंतर्मुख जीवन
दमांमां	अनाहत नाद	बिलइया	माया

प्रतीक	प्रतीयमान	प्रतीक	प्रतीयमान
बटावा	ज्ञान-मार्ग पर चलनेवाला	पोवणहारा	माया
बाट	ज्ञान-मार्ग	रोटी	जीव
डुकरिया	माया	कामिनि	माया
षाट	आध्यात्मिक जीवन	अगौठी	जीवात्मा
कूकर	द्रोही मन	बैसंदर	ब्रह्माग्नि
चौर	ज्ञान	रदिया	आत्मा
नगर	शरीर	बहू	मायिक उलझन
गागरि	कुंडलिनी	सासू	ब्रह्मसत्ता
पनिहारी	आत्मा	नगरो	मूल स्थान
मगरी	माया	पांणी	कुंडलिनी
चूल्हा	जीव	कुई	ब्रह्मरंध्र

एक अन्य पद में आकाश की गाय का रूप देखिए—

बांधौ बांधौ बछरा पीओ पीर । कलि अजरावर होय सरोर ।

आकास की घेन बछा जाया । ता घेन कै पूछ न पाया ।

बारह बछा सोलह गाई । धेनु दुहावत रैन बिहाई ।

अचरा न चरै घेन कचरा न षाई । पंच ग्वालियां कौ मारण धाई ।

याही घेन का दूध जु मीठा । पीवै गोरपनाथ गगन बईठा ।—पद ५१

प्रतीकों को समझने के बाद इस पद का अर्थ इस प्रकार होगा—

“बछड़े (मूलाधारस्थ सूर्य) को बांधो (संयत करो) और दूध (अमृत) को पी जाओ । इससे कलियुग में भी शरीर अमर हो जायेगा । आकाश (ब्रह्मरंध्र) की गाय (चन्द्र) ने बछड़ा (सूर्य) उत्पन्न किया है । (सूर्य की उत्पत्ति ब्रह्मरंध्रस्थ चंद्र से ही हुई है) उस गाय के पूछ और पीर नहीं हैं । बारह (कलावाला सूर्य) बछड़े तथा सोलह (कलावाला चन्द्रमा) गायें हैं । गाय को दुहते-दुहते रात्रि बीत गयी । यह गाय अचर है (अचल है अथवा न चरने वाली है) इसलिए घास-फूस नहीं खाती । पांच ग्वालों (पंच ज्ञानेन्द्रियों) को मारने के लिए दौड़ती है । इस गाय का दूध मीठा है । गोरखनाथ गगन (ब्रह्मरंध्र) में बैठा-बैठा पीता है ।

इस पद में बछड़ा, गाय, दूध आदि प्रतीकों के माध्यम से गोरखनाथ ने योग-साधना के द्वारा ब्रह्मानुभूति का चित्र प्रस्तुत किया है ।

लोक-जीवन से गृहीत प्रतीकों के कुछ अन्य उदाहरण प्रस्तुत हैं—

“सोनां ल्यो रस सोनां ल्यो, मेरी जाति सुनारी रे ।

धंमणि धमीं रस जांमणि जांम्या

तब गगन महारस मिलिया रे ।”—पद ६, पृ. ६१

“गंगा तीर मतीरा अवधू, फिरि फिरि वणिजां कौजै ।”—पद १०, पृ. ६६

“कानां पूछां सींग बिबरजित, बजं बिबरजित गाई लो ।”—पद २१, पृ. ११४

“चौंटी केरा नेत्र में गज्येन्द्र समाइला...टूटा।”—पद ३४, पृ. १२६

“ऊँट सिचाणै जब ग्रह्यो जाइ कैरो डाली बंठो...ब्याई।”—पद २०,
पृ. ११२-११३

४. ३. २. प्राकृतिक प्रतीक—प्रकृति मानव-जीवन की सहचरी है। गोरखनाथ जैसे प्रकृत कवि के लिए प्राकृतिक आकर्षण और भी स्वाभाविक है। यद्यपि अनेक रसों में लोक-जीवन से गृहीत प्रतीकों एवं प्राकृत प्रतीकों में भेद करना कठिन है फिर भी कुछ पद ऐसे हैं, जिनमें प्राकृतिक उपकरणों को गोरखनाथ ने प्रतीक बनाया है। जैसे—

“वेलडियां दौं लागी अवधू, गगन पहुँती झाला।

जिम जिम बेलीं दाझव लागी, तब मेल्लै कूपल डाला।

काटत बेली कूपल मेल्लै सींचतड़ा कुमलाये।—पद १७ पृ. १०७, १०८
यहाँ वेलडियां, दौं, गगन, झाला, कूपल, काटत, सींचतड़ा और कुमलाये क्रमशः माया, सांसारिक दुःख, ब्रह्मरंध्र, माया का फैलाव, माया का हरा-भरा होना, माया को हठात् समाप्त करना, जानामृत चन्द्र-स्त्राव से माया को युक्त करना, नष्ट होना के लिए प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

प्राकृतिक प्रतीकों के कुछ और उदाहरण देखे जा सकते हैं—

‘जिहि घरि चंद सूर नहि ऊगै, तिहि घरि होसी उजियारा’—पद ४, पृ. ६०

‘गगन सिषर आछै अंबर पांणी’—पद ५, पृ. ६१

‘चंद सूर दोऊ गगन बिलूधा, भईला घोर अंधार’—पद १०, पृ. ६६

‘अमावस के घरि झिलिमिल चंदा, पूनिम के घरि सूर’,—स. ५४

‘सुनि मंडल तहां नीझर झरिया’—स. ५५

४. ३. ३. सांस्कृतिक प्रतीक—यद्यपि संस्कृति की कोई निश्चित परिभाषा देना कठिन है फिर भी संस्कृति में समाज, धर्म, इतिहास, कला, साहित्य तथा दर्शन आदि विचारणीय पहलू हैं। गोरखनाथ के सांस्कृतिक प्रतीकों में धर्म तथा दर्शन पुराणों से संबंधित प्रतीक ही अधिक हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

अष्टकुल परबत जल बिन तिरिया, अदबुद अचंभा भारी—पद ११, पृ. ६७

जोगी ध्यावै परम पद जहाँ देहरा न मसीत—स. ६८

एक कामधेनबारि सिधि के गगन सिषर लै बांधी—स. २०७

४. ४. बिम्ब-विधान—‘बिम्ब’ शब्द अंग्रेजी के Image शब्द का समानार्थी है। आक्सफोर्ड डिक्शनरी में ‘इमेज’ शब्द के निम्नलिखित अर्थ दिये हुए हैं—

१- किसी वस्तु या व्यक्ति के बाह्य रूप की कृत्रिम अनुकृति, चित्रण, प्रतिच्छाया, प्रतिमा, चित्र इत्यादि।

२- किसी वस्तु की चाक्षुष प्रतिमूर्ति।

३- किसी वस्तु का मानसिक प्रतिरूप।

४- प्रतिकृति, प्रतीक, प्रतिबिम्ब।

५- चाक्षुष अथवा आलंकारिक चित्रण।

बिम्ब और प्रतीक में अन्तर है। “बिम्ब प्रतीक में समाविष्ट रहने हैं। ‘अधकार’ निराशा का प्रतीक है। अधकार को व्यक्त करने वाले बिम्ब निम्नांकित हो सकते हैं— १- संध्या २- रात्रि ३- मेघमाला ४- पावस ऋतु आदि। इन बिम्बों का आधार कवि-कल्पना है।”^१ बिम्बात्मकता तो उपमान और प्रतीक दोनों में ही पायी जाती है किन्तु हर बिम्ब में प्रतीक और उपमान मिलना कठिन है। प्रतीक में प्रतीयमान लुप्त रहता है किन्तु बिम्ब में उपमेय और उपमान दोनों ही वर्णित हो सकते हैं। कभी-कभी बिम्ब के लिए किसी अलंकार का होना आवश्यक भी नहीं है। जैसे, गोरखनाथ कहते हैं—

‘हबकि नं बोलिबा, ठबकि न चालिबा, घीरै धारिबा पाव’^२—

×

×

×

‘बड़े बड़े कूले मोटे मोटे पेट, नहीं रै पूता गुरू सौ भेट।

षड़ षड़ काया निरमल नेत, भई रे पूता गुरू सौ भेट ॥’^३

डा. नगेन्द्र के अनुसार “काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित ऐसी मानस छवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।”

इस परिभाषा के आधार पर बिम्ब का क्षेत्र मुख्यतः औपम्यमूलक अलंकारों तक सीमित होना चाहिए किन्तु गोरखनाथ के अधिकांश बिम्ब वैषम्यमूलक हैं। जैसे—

‘कानां पूछां सींग बिबरजित, बर्न बिबरजित गाई लो’^४

एक गाय, जिसके कान नहीं हैं, पूँछ नहीं है, सींग नहीं हैं तथा उसका कोई रंग भी नहीं है।

‘आकाश की घेन बछा जाया। ता घेन कै पूछ न पाया।’^५

आकाश की गाय के पूँछ और पंर नहीं हैं तथा उस गाय ने एक बछड़ा उत्पन्न किया।

गोरखबानी में इस प्रकार के बिम्बों के उदाहरण भरे पड़े हैं। ये सभी बिम्ब लोक विपरीत हैं। यहां जो भी बिम्ब बनता है वह लोक विपरीत है। पहले बिम्ब बनता है प्रतीकों का और फिर प्रतीक ले जाते हैं मूल या अभीष्ट भाव तक। इन उलटबाँसियों में बिम्ब मूल भाव तक नहीं ले जाते।

उलटबाँसियों के बिम्बों के अतिरिक्त गोरखनाथ में कुछ साम्यमूलक अलंकारों पर आधारित बिम्ब भी मिलते हैं, जैसे—

‘मन मकड़ी का तागा ज्यू उलटि अपूठा आंणि।’^६

१. डा. अम्बाप्रसाद सुमन-भाषा-चिन्तन, पृ. ३५

२. गोरखबानी, स. २७

३. गोरखबानी, स. १०६

४. गोरखबानी, पृ. ११४

५. गोरखबानी, पृ. १४७

६. गोरखबानी, सबदी, २३४

× × ×
‘गोड़ भये डगमग पेट भया ढोला, सिर बगुला की पंषियां ।’¹

× × ×
‘महज पलाण पवन करि घोड़ा, लै लगाम चित चवका ।
चेतनि असवार ग्यांन गुरू करि, और तजौ सब ढबका ॥’²

× × ×
‘अवधू काया हमारी नालि बोलिये, दाहू बोलिये पवन ।
अगनि पलीता अनहद गरजै ब्यंद गोला उड़ि गगन ।’³

४. ५. मिथक-तत्त्व—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अंग्रेजी ‘मिथ’ (Myth) का हिन्दी रूपान्तरण ‘मिथक’ किया है। हिन्दी में इस पद के लिए पुराख्यान तत्त्व, पुरागाथा, धर्मगाथा, कल्पकथा, पौराणिक प्रसंग आदि भी प्रयुक्त होते हैं। “मिथक किसी भी देश या जाति के सांस्कृतिक विश्वासों, धार्मिक मान्यताओं, दैवी आस्थाओं, लोक जीवन की अद्भुत परम्पराओं एवं संवेदनशील सामाजिक अनुभूतियों का दिव्य-पुंज है। पौराणिकता, अतिमानवीयता, जनास्था एवं जनविश्वास मिथकों के ऐसे मूल-भूत गुण हैं जो मानव-समाज से उसकी अन्तरंगता स्थापित करते हैं तथा समाज के अनुभूत यथार्थ को सूक्ष्माभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में उसे साहित्य और कला में स्थान देते हैं।”⁴

मिथक के प्रयोग से कविता में रमणीयता, तीव्रता एवं प्रभावोत्पादकता आ जाती है। कथा को प्रामाणिक बनाने के लिए तथा कविता को जनसामान्य के लिए बोधगम्य बनाने के लिए ही साहित्यकार मिथक का प्रयोग करता है। अनेक विद्वानों ने मिथक के दो ही रूप माने हैं—१- बिम्बात्मक मिथक २- प्रतीकात्मक मिथक। गोरखनाथ में प्रतीकात्मक मिथकों की संख्या अधिक है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

‘गोरष कहै सुणौ रे अवधू सुसूपाल थैं डरिये ।’⁵

यहाँ शिशुपाल काल का प्रतीक है।

‘भिष्या हमारी कामधेनि बोलिये, संसार हमारी वाड़ी ।’⁶

× × ×
‘कुम्हरा कै घरि हांडी आछै, अहीरा कै घरि सांडी ।
बमना कै घरि रांडी आछै, रांडी सांडी हांडी ।

राजा कै घरि तेल आछै, जंगल मधे बेल ।

1. गोरखवानी, पद ४३, पृ. १३८

2. गोरखवानी, पद १४, पृ. १०३

3. गोरखवानी, स. ६५

4. डा. रामसिंह अत्री, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-गोति काव्य का शिल्प विधान, पृ. १२४

5. गोरखवानी, स. ७४

6. गोरखवानी, स. १०८

तेली कै घरि तेल आछै, तेल बेल सेल ।
 अहीर कै घरि महकी आछै, देवल मध्ये ल्यंग ।
 हाटी मध्ये हींग आछै, हींग ल्यंग स्यंग ।
 एकै मुत्रै नाना बणियां, बहु भाँति दिखलावै ।
 भणंत गोरपि त्रिगुणीं माया सत गुरु होई लपावै ।”¹

इस पद में रांडी-सांडी-हांडी, तेल-बेल-सेल तथा हींग-ल्यंग-स्यंग माया के प्रतीक हैं ।

‘आपण हीं मछ कछ आपण हीं जाल,
 आपण हीं धीवर आपण ही काल ।”²

बिम्बात्मक मिथक के उदाहरण भी देखे जा सकते हैं—

‘नीझर झरणै अमृत पोया यूं मन हूवा थोर’³

× × ×
 लंका छाडि पलंका जाइवा, तब गुरमुख लेवा बांगी’⁴

× × ×
 ‘ऊभा मारूँ, बैठा मारूँ, मारूँ जागत सूता ।

तीनि लोक भग जाल पसारया कहां जाइगौ पूता ।⁵

× × ×
 निनांगवै कोडि राजा मस्तक मुडाइले परजा का अंत न पाया ।⁶

४. ६. अलंकार

गोरखनाथ एक ओर तो लोक-चेतना से संपृक्त थे और दूसरी ओर बाह्याडम्बरो से युद्धरत । एक ओर अपनी बात को जन-सामान्य तक पहुँचाने के लिए प्रतिबद्ध थे तो दूसरी ओर संश्रदाय के रहस्यों को उचित पात्रों तक ही सीमित रखने के लिए प्रयत्नशील । यही कारण है कि उनकी भाषा में साम्यमूलक एवं वैषम्यमूलक—दोनों प्रकार के अलंकार मिल जाते हैं । साम्यमूलक अलंकारों में उमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि प्रमुख हैं तथा वैषम्यमूलक अलंकारों में विभावना, प्रतीप, रूपातिशयोक्ति, विरोधमूलक वक्रोक्ति, एवं विशेषोक्ति मुख्य हैं । साम्यमूलक अलंकारों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—
 उपमा—

‘मन मकड़ी का तागा ज्यूं उलटि अपूठी आंणि ।’ (सबदी २३४)

‘बैठा अवधू लोह की पूंठी, चलता अवधू पवन की मूठी ।

सोवता अवधू जीवता सूवा, बोलता अवधू प्यंजरै सूवा ।’ (सबदी ७१)

1. गोरखबानी प. ४२, पृ. १३६-१३७

2. गोरखबानी, प. ४१, पृ. १३५

3. गोरखबानी, स. ६७

4. गोरखबानी, स. ६४

5. गोरखबानी, स. ६६

6. गोरखबानी, स. १२६

- ‘भिष्या हमारी कामवेनि बोलिये, संसार हमारी वाड़ी ।’ (सबदी १०८)
- ‘सहज पलांग पवन करि घोड़ा, लै लगाम चित चबका ।
- चेतनि असवार ग्यान गुरु करि, और तजौ सब ढवकाई । (प० १४, पृ१०३)
- अनन्वय— आपण ही मछ कछ आपण ही जाल
आपण ही घीवर आपण ही काल ।’ (पद ४१, पृ. १३५)
- रूपक— ‘काया गढ़ भीतरि देव देहुरा कासी । (गोरखबानी, पद, ३३)
‘काया नगरी गोरख बसाई (गोरखबानी, पद, २७)
मनवां जोगो काया मदी । पंच तत्त ले कथा गदी ।
षिमा षड़ासन ग्यान अधारी । सुमति पावड़ी डंड विचारी ।’ (स. ४८)
- अर्थान्तरन्यास— ‘घटि घटि सून्यां ग्यान न होइ । बनि बनि चंदन रूप न कोइ ।’
(स. १७०)
- दृष्टान्त— ‘कहणि सुहेली रहणि दुहेली कहणि रहणि बिन थोथी ।
पढ़्या गुण्या सूबा बिलाई. षाया पंडित के हाथि रह गई पोथी ।”
(स. ११६)
- उदाहरण— ‘साँट्यो लाकड़ि ज्यू घुण लागै, लोहै लागै काई ।
बिन परतीति कहा गुरु कीजै, काल ज ग्रास्यां जाई ।” (ग्यान तिलक ११)
- गोरखनाथ की भाषा में जो प्रतीकात्मकता संघाभाषा अथवा उलटबांसियाँ मिलती हैं उनके मूल में वैषम्यमूलक अप्रस्तुत विधान है । इन अप्रस्तुत विधानों से अनेक वैषम्यमूलक अलंकारों का जन्म हुआ है । “इस प्रकार की शैली जहाँ कथन के ढंग में एक विचित्रता लाती है और श्रोता के कौतूहल, जिज्ञासा तथा सोचने की वृत्तियों को उद्दीप्त करती है, वहाँ वह अनधिकारी श्रोता से परम गुह्यज्ञान को गुप्त रखती है । अध्यात्मिक जगत में ज्ञान-दान के लिए सभी ज्ञानियों ने अधिकार-भेद रखा है और उलटबांसियों का प्रयोग भी संभवतः इसी उद्देश्य से किया गया ।”^१
- अप्रस्तुत विधान में वैषम्य की उत्पत्ति क्यों हुई अथवा इन प्रतीकों और उलट-बांसियों के प्रयोग का कारण क्या है, इस संबंध में अनेक विद्वानों ने विचार किया है । प्रतीकात्मक शब्दावली तथा संघाभाषा के अन्तर्गत इस पुस्तक में भी विवेचन किया गया है । अलंकारों की दृष्टि से डा. बीरेन्द्र श्रोवास्तव के विचार महत्वपूर्ण हैं । “यह प्रश्न स्वाभाविक है कि सांकेतिक, विरोधमूलक तथा अन्य वक्रोक्तियों की उत्थानिका कैसे होती है. उनका आधार क्या होता है । इसका उत्तर है अप्रस्तुत योजना । वक्ता या कवि अपने प्रस्तुत कथन को हृदयंगम बनाने के लिए लोकप्रसिद्ध अप्रस्तुतों का विधान करता है । उन्मा, रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति उत्तरोत्तर अप्रस्तुत को प्रबल बनाने के सोपान हैं । प्रस्तुत के सादृश्य का चित्रण उपमा में अप्रस्तुत के साथ किया जाता है । दोनों की और निकटता को प्रदर्शित करने के लिए आरोप का आश्रय लिया जाता है । दूषी को और अभिन्न बनाने के लिए अध्यवसान का सहारा जरूरी हो जाता है । इस

अध्यवसान में अप्रस्तुत प्रस्तुत को पूरी तरह निगल जाता है, आत्मसमाविष्ट कर लेता है। अब प्रस्तुत का जैसे अस्तित्व ही नहीं रह जाता, केवल अप्रस्तुत चमत्कारक बनकर सामने खड़ा हो जाता है। रूपकातिशयोक्ति ही निरन्तर प्रयोग से प्रतीक का रूप धारण कर लेती है।”¹

वैषम्यमूलक अलंकारों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

विभावना— ‘राह बिन गिलिया अगनि बिन जलिया ।

अंबर बिन जलहर भरिया ।’ (गोरखबानी, पद १८)

×

×

×

‘अष्टकुल परबत जल बिन तिरिया अदबुद अचंमा भारी । (पद ११)

×

×

×

‘बोज बिन निसपती मूल बिन बिरषा पांन फूल बिन फलिया ।

गगन बिना चंद्रम बाह्मांड बिन सूरं, झूझ बिन रचिया धानं ।’

(पद १८, पृष्ठ १०८)

रूपकातिशयोक्ति—‘ऊंट सिचाणै’ जब ग्रह्यो जाइ कैरो डाली बँठो ।

बांझ बेटा जनमियू नैणें पुरिष न दीठो । (पद २०, पृ. ११२)

‘चीटी केरा नेत्र मैं गज्येन्द्र समाइला ।

गावड़ी के मुष मैं बाघला बिवाइला’ (पद ३४, पृ. १२६)

‘काली गंगा धौली गंगा झिलिमिलि दीसै,

काऊरू का पांणी पुनि गिर पईसै ।” (पद ४०, पृष्ठ १३५)

‘माती माती सपनीं दसौं दिसि घावै,

गोरपनाथ गारड़ी पवन बेगि ल्यावै । (पद ४५, पृष्ठ १४०)

विरोधमूलक वक्रोक्ति—‘गिगनि मंडल मैं गाय बियाई कागद दही जमाया ।

छाछि छाछि पिडता पीवीं सिघां भापण पाया । (स. १६६)

‘वेलडियां दौं लागी अवधू, गगन पहुँती झाला ।

जिम जिम बेलीं दाझवा लागी, तब मेल्है कूपल डाला । (प. १७, पृ. १०७)

‘कांमनि जलै अगोठी तावै, बिचि बैसंदर धरहंर कांपै ।’

(पद ४७, पृष्ठ १४२)

विशेषोक्ति— ‘चलि रे अविला कोवल मोरी, धरती उलटि गगन कूँ दौरी ।

गईयां बपड़ी सिघ नै घेरै । मृतक पसू सूद्र कूँ उचरै ।

(गोरखबानी, पद ५६)

×

×

×

1. डा. वीरेन्द्र श्रीवास्तव, ‘योगवाणी’ फरवरी, १९७६ में संग्रहीत लेख ‘गोरखबानी’ की नापा और शैली, पृष्ठ २६

चींट्यां परबत डोल्या रे अवधू, गायां वाघ बिडार्या जो ।
सुसलै समदां लहरि मनाई, मृघां चीता मार्या जो ।

(गोरखबानी, पद २७)

×

×

×

‘गगन मंडल मैं ऊंधा कूबा तहां अमृत का बासा ।

सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै निगुरा जाइ पियासा । (सबदी, २३)

×

×

×

गगने न गोपंत तेजे न सोषंत पवने न पेलंत दाई ।

यही भारे न भाजंत उदके न डूबन्त कहौ तौ को पतियाई (सबदी, २४)

गोरखनाथ ने जहाँ सामान्य जनता को सामान्य भाषा में सामान्य आचरण की बातें कहीं हैं, वहाँ अलंकार कम ही आये हैं और जो भी आये हैं, वे सभी साम्यमूलक अलंकार हैं। किन्तु जहाँ गोरखनाथ ने अपने संप्रदाय की गहन बातों को साहित्य के माध्यम से कहना चाहा है तो उसे गहन दर्शन के अभिव्यक्तिकरण के लिए प्रतीकों का सहारा लेना पड़ा है। “अनुभूति के राज्य में अभिव्यक्ति की पूरी पहुँच नहीं होती। अनुभूति तो सूक्ष्मतर वस्तु है, स्थूल जगत् पर दृष्टिपात करने के पश्चात् वाणी दृष्टि के पूरे भाव को पाने में असमर्थ होने के कारण उस दृष्टि को पाया हुआ अनुभव पूरी तरह व्यक्त नहीं कर पाती। तुलसी ने इसलिए ‘गिरा अनयन नयन बिनु बानी’ कहा है। स्थूल दृष्टि के अनुभव को भी जब वाणी की समर्थता पूर्णतः व्यक्त नहीं कर पाती तो चिन्मय सृष्टि के राज्य का वैभव वह कैसे बताये? द्रष्टा अथवा ज्ञानी आत्मसत्ता की सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए इसी कारण से प्रतीकों का सहारा लेता है। प्रतीक शैली द्वारा मर्म समझना हर किसी के वश की बात नहीं। उसके लिए अन्तर्दृष्टि अपेक्षित है। बिना अन्तर्दृष्टि के इस प्रकार की वाणी साधारण मनुष्य को प्रमत्त का प्रलाप लग सकती है।”¹

यही कारण है कि प्रतीकों पर आधारित गोरखनाथ के वैषम्यमूलक अलंकार कुछ दुरुह हो गये हैं।

□

1. डा. शान्ति प्रसाद चन्दोला, ‘योगवाणी’ सितम्बर ७७ में संकलित लेख ‘नायवाणियों का साहित्यिक मूल्यांकन’ पृष्ठ ४०, ४१

५. परवर्ती हिन्दी-साहित्य पर गोरखनाथ का प्रभाव

गोरखनाथ की साधना-पद्धति समाज-सापेक्ष एवं बहुजन हिताय थी। एक ओर उनकी साधना-पद्धति में अनेक धर्मसाधनाओं की अच्छाइयों का समन्वय है तो दूसरी ओर उनकी बुराइयों का बहिष्कार। अतः उनकी साधना-पद्धति में समन्वयवादी एवं क्रान्तिकारी—दोनों दृष्टिकोण निहित हैं। गोरखनाथ के इस समन्वय एवं क्रान्ति ने तत्कालीन दार्शनिक क्षेत्र में एक हलचल मचा दी थी। और यही उनके साहित्य की व्यापकता का मूल कारण है “इस सम्प्रदाय ने निरीश्वरवादी बौद्ध सिद्धों तथा जैन मुनियों की प्रचलित साधनाओं एवं योग की परंपरागत क्रियाओं के साथ शांकराद्वैतवाद तथा शैव सम्प्रदाय की अन्य कतिपय बातों का मेल बिठाकर एक नवीन पद्धति चलाने के यत्न किये। इसके परिणाम का प्रभाव चिरकालीन सिद्ध हुआ और आगे आने वाले अनेक धार्मिक आंदोलनों ने इसके किसी न किसी अंश को अपना लेना आवश्यक समझा। स्वयं बौद्ध सिद्धों के कालचक्रयान नामक उप-सम्प्रदाय ने भी इसकी बहुत-सी बातें ग्रहण कर लीं, जिससे उसके धार्मिक हिन्दू-समाज में खप जाते देर न लगी। गुरु गोरख द्वारा निर्दिष्ट निगुण तथा निराकार की उपासना भक्ति व प्रेम का आधार पाकर आगे और भी लोकप्रिय बन गयी। उनके द्वारा निमित्त तत्व-विचार तथा योग-साधना का ग्रंथ-बिंधन आज तक भी प्रायः उसी रूप में वर्तमान समझा जा सकता है।”¹

नाथ-सम्प्रदाय का रूप गोरखनाथ से पूर्व कुछ और था। गोरखनाथ ने उसे जिस आन्दोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल था। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित अवधारणा थी वहीं दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परंपरागत रूढ़ियों पर कठोर प्रहार भी था। जनजीवन को अधिकाधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए

योगमार्ग को व्यवस्था करने का व्यापक एवं शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने ही किया था ।¹

यही कारण है कि समस्त भारत की धर्म-साधना पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से नाथ-पंथ छाया हुआ है। उनकी दार्शनिक मान्यताएँ लगभग सभी परवर्ती दार्शनिक साहित्यकारों में न्यूनाधिक रूपा से समाविष्ट हैं। गोरखनाथ की धर्म-साधना और साहित्य का परवर्ती हिन्दी लेखकों पर व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है।

नाथ-साहित्य पर—गोरखनाथ का सबसे अधिक प्रभाव समसामयिक तथा परवर्ती नाथ सिद्धों पर पड़ा और यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि नाथसिद्ध तो गोरखनाथ के पक्के अनुयायी थे। ‘योगमार्ग’ का सर्वाधिक विकसित रूप हमें इसी काल में मिलता है। इसी पंथ में ब्रह्मचर्यपालक, बिन्दु साधक महायोगेश्वर गोरखनाथ के एक नवीन एवं बहुमुखी प्रतिभा के साथ अवतरित हुए। इनसे पूर्व भी सिद्धों की परंपरा मिलती है, लेकिन गोरखनाथ के प्रभावशाली व्यक्तित्व के परिणामस्वरूप पूर्ववर्ती तथा परवर्ती सभी साधक इसी साधना-पंथ में अन्तर्भुक्त होते गये।”²

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ‘नाथ सिद्धों की बानियाँ’ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित करायी है। इस संग्रह में संग्रहीत बानियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि गोरखनाथ की योगसाधना का प्रभाव तो इन सिद्धों पर है ही, भाषा और शैली भी उन्होंने गोरखनाथ की ही अपनायी है। इसी कारण हस्तलिखित प्रतियों में यह ढूँढ़ना कठिन हो जाता है कि अमुक वाणी गोरखनाथ की है अथवा किसी अन्य नाथसिद्ध की। प्रमाण के लिए यहाँ कपितय ऐसे उदाहरण दिये जा रहे हैं, जो कथ्य एवं भाषा-शैली की दृष्टि से गोरखनाथ की रचनाओं के एकदम निकट हैं। मिलाकर देखिए—

गोरख—“जिम्ह्या इन्द्री एकै नाल । जो राखै सो बंचै काल ।

पंडित ग्यांनो न करसि गरब । जिम्ह्या जीतो जिन जीत्या सरब ॥³

महादेव —“जिह्वा इंद्री येकै नाल । जे राखै ते बंचै काल ।

बोलत ईस्वर सति सतरूप । तत बिचारै तौ रेष न रूप ॥⁴

गोरख—“अधिक तत्त ते गुरु बोलिये हीणं तत ते चेला ।

मन मानै तो संगि रमौ नहीं तौ रमौ अकेला ॥⁵

बालगुंडाई—“अधिक तत्त ते गुरु बोलाए । सम तत गुरु भाई ।

1. योगवाणी (जून ८२), मध्ययुगीन धर्मसाधना एवं महायोगी गोरखनाथ महन्त—अवेद्यनाथ पृ० ११

2. योगवाणी (मार्च ८१), नाथसिद्धों की बानियों में हठयोग का उपदेश—डा० उदयप्रताप सिंह, पृ० २६

3. गोरखबानी, स० २१६

4. नाथसिद्धों की बानियाँ, पृ० ११५ (५/६८६)

5. गोरखबानी, स० १६१

हीन तत्त ते चेला बोला ऐ । सत्ति सत्ति भापै बाल (गु०) दाई ॥^१

गोरख— “धन जीवन की करै न आस, चित्त न रापै कामनि पास ।

नाद बिद जाके घटि जरै, ताकी सेवा पारबती करै ॥^२

पारबती जी— “धन जीवन की करै न आस, चित्त न रापै कामनि पास ।

नाद बिद जाके घटि जरै, ताकी सेवा पारबती करै ॥^३

गोरख— “सूरां का पंथ हार्यां का बिसराम सुरता लेहु बिचारी ।

अपरचै पिड भिष्या घात है अंति कालि होयगी भारी ॥^४

दत्त जी— “सूरां का पंथ हार्यां का विश्राम, सुरता लेऊ बिचारी ।

अण परचै प्यंड भिष्या मांगै अंतकाल होइगी भारी ॥^५

गोरख— “पाया लो भल पाया लो सबद धान सहेती थिति ।

रूप सहेता दीसण लागा, तब सर्व भई परतीति ॥^६

गोपीचंद— “पाया लो भल पाया लो । संख थांन सहेती थिति ।

रूप सहेती दीसण लागा । पिड भइ प्रतिति ॥^७

गोरख— “पंथ चले चलि पवनां टूटै । तन छो जै तन जाई ।

काया तै कछु अगम बतावै ताकी मूडू माई ॥^८

हणवंत जी— “पंथ चले चलि पवनां टूटै । तन छो जै तन जाई ।

काया तै कछु दूरि बतावै । तिसकी मूडू माई ॥^९

गोरख— “अजपा जपै सुनि मन धरै, पांचौं इंद्रो निग्रह करै ।

ब्रह्म अगनि में होमै काया, तास महादेव बंदै पाया ॥^{१०}

महादेव जी— “अजपा जपै सुनि मन धरै । पांचू इंद्रो निग्रह करै ।

ब्रह्म अगनि में होमै काया । तास महादेव बंदै पाया ॥^{११}

गोरख— “स्वामी बन षंडि जाउं तो बुध्या व्यापै नग्री जाउं त माया ।

भरि भरि पाउं त बिदं बियापै क्यों सोझति जल व्यंद की काया ॥^{१२}

१ नाथसिद्धों की बानियां, पृ० १६ (२३/५८८)

२ गोरखबानी, स० १६

३ नाथसिद्धों की बानियां, पृ० ६८ (५/४३४)

४ गोरखबानी, स० २१६

५ नाथसिद्धों की बानियां, पृ० ५५ (६/३७०)

६ गोरखबानी, स० ८०

७ नाथसिद्धों की बानियां, पृ० १६ (२१/१०६)

८ गोरखबानी, स० २२४

९ नाथसिद्धों की बानियां, पृ० १२७ (१०/७४७)

१० गोरखबानी, स० १८

११ नाथसिद्धों की बानियां, पृ० ११५ (६/६८७)

१२ गोरखबानी, स० ३०

जलंध्रीपाव—“गोपीचंद कहै स्वामी वस्ती रह्युं तो कंद्रप व्यापै ।

जंगलि रह्युं पुधा संतापै ।

आसणि रह्युं तो व्यापै माया ।

पंथि चलूँ तो छीजै काया ।

मोटा पाऊँ तो व्यापै रोग ।

कहौ किसी परि साधूँ जोग ।”¹

गोरख—“एकाएकी सिद्ध नाउं दोइ रमति ते साधवा ।

चारि पंच कुटुम्ब नाउं दस बीस ते लसकरा ।”²

दत्तात्रे—“ऐका ऐकी सिध्या नाउं । दुतोए नांम साधवा ।

व्यारि पांच केटूबा नाऊं । दस बीस ते लसकरा ।”³

निर्गुण साहित्य पर—नाथसिद्धों के बाद गोरखनाथ के साहित्य का सर्वाधिक प्रभाव निर्गुण साहित्य पर पड़ा है, अब इस तथ्य को अनेक विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है । “गुरु गोरखनाथ द्वारा निर्दिष्ट योग-साधना के अन्तर्गत बीज-रूप में प्रायः वे ही बातें प्रधानतः दोख पड़ती हैं जिनका प्रचार आगे चलकर कबीर साहब आदि संतों ने भी किया था ।”⁴ “संत साहित्य की मूल प्रवृत्ति खोजते हुए हमारी दृष्टि सिद्धों और नाथों के साहित्य तक पहुँचती है ।”⁵ “इन योगियों में भारतीय सन्त परंपरा की एक कड़ी मिलती है । परवर्ती संतों के विषय में जो अनेक किंवदंतियाँ हैं अथवा उनकी रचनाएँ हैं उनका स्रोत यहीं मिलता है, जिसको हम सीधे सिद्ध काव्य से उतरते हुए पाते हैं ।”⁶ “गुरु गोरखनाथ के बाद का दूसरा सशक्त एवं समर्थ व्यक्तित्व संत कबीर का है । इन दोनों महापुरुषों की कपितय रचनाओं में न केवल भाव, साम्य है, अस्तु कहीं-कहीं शब्द-साम्य तक पाया जाता है । यह समानता आकस्मिक न होकर लोक जीवन में व्याप्त परंपरा-पोषित उपलब्धियों के कारण भी संभव है ।”⁷

नाथ पंथ एवं संतसाहित्य की अत्यधिक समानता के कारण ही हिन्दी में अनेक तुलनात्मक शोध-कार्य हुए हैं, यथा—१. नाथ-पंथ और निर्गुण संत-काव्य—डा० कोमल सिंह सोलकी, २. नाथ और संत-साहित्य—डा० नागेन्द्र नाथ उपाध्याय

1 नाथसिद्धों की वानियाँ, पृ० ५२ (५/३५६)

2 गोरखबानी, स० ७६

3 नाथसिद्धों की वानियाँ, पृ० ५६ (१०/३६१)

4 उत्तरी भारत की संतपरंपरा-आ० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ५४

5 हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड-डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० २०२

6 भारतीय संतपरंपरा और समाज-डा० रांगेय राघव, पृ० ६०

7 योगवाणी-गोरख विशेषांक (जनवरी १९७७), गुरु गोरखनाथ और संत कबीर

—श्रीनर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ० १०६

३. संतकाव्य में योग का स्वरूप—डा० रामेश्वर प्रसाद सिंह ।

‘हिन्दी-काव्य की निर्गुण धारा स्थान एवं काल दोनों दृष्टियों से पर्याप्त व्यापक रही है। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के संत कवि जयदेव से लेकर अध्यावधि यह धारा अबाध गति से प्रवाहित है। सुदूर पश्चिम के सिंध-पंजाब से धुर पूरब के बंगाल-असम तक एवं दक्षिण के महाराष्ट्र से उत्तर के कश्मीर-क्षेत्र तक इस काव्य-धारा का अमृत-जल जन-जन की तृषा को शान्त करता रहा है।¹ और इन सभी संत कवियों पर न्यूनाधिक रूप से गोरखनाथ के भाव एवं भाषा का प्रभाव लक्षित होता है। कतिपय तुलनात्मक उदाहरण द्रष्टव्य हैं। गोरख ने मछली रूपी मन को पहाड़ पर चढ़ा दिया है और गाय रूपी खरहा को पानी रूपी संसार में जलाकर भस्म करने की बात कही है—

“डूंगरी मछ्छा जलि सुसा पांणी मैं दौं लागा।”²

इसी भाव को कबीर ने अपनी प्रसिद्ध सबदी में इस प्रकार व्यक्त किया है—

‘समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई ।

देखि कबीरा जागि, मछ्छी रूपीं चढ़ि गई।”³

गोरखनाथ की एक उलटबांसी का अंश इस प्रकार है—

“डाल न मूल पत्र नहि छाया । बिण जल पिगुला सींचै जी ।

बिण ही मढीयां मंदला बाजै । यण विधि लोका रोझै जी ।

चींट्यां परबत ढोल्या रे अबधू । गायां वाघ बिडार्या जी ।

सुसलै समदां लहरि मनाई । मृषां चीता मार्या जी।”⁴

और इसी प्रकार की एक उलटबांसी का उदाहरण कबीर में देखिए—

“धौल मंदलिया बैल रबाबी कउबा ताल बजावै ।

पहिरि चोलनां गादह नाचै भैंसा निरति करावै ।

सिंघ ज बैठा पांन कातरै घूस गिलोरा लावै ।

उंदरी बपुरी मंगल गावै कछुआ संख बजावै ।

कहै कबीर सुनहु रे संतौ गडरी परबत छावा ।

क्कवा बैसी अगारै निगलै समद अकासां धावा।”⁵

गोरखनाथ का कहना है कि सभी उपायों को छोड़ दो । केवल पवन रूपी घोड़े पर सहज की जीन कसकर उसे लय की लगाम लगाकर गुरु का ज्ञान प्राप्त करो—

“सहज पलांण पवन करि घोड़ा, लै लगाम चित-चबका ।

1 संत काव्य में योग का स्वरूप—डा० रामेश्वर प्रसाद सिंह पृ० १

2 गोरखबानी, पद २०/३

3 कबीर ग्रंथावली—सं० डा० पारसनाथ तिवारी, पृ० १४८ (२/१४)

4 गोरखबानी, पद ५७

5 कबीर ग्रंथावली—सं० डा० पारसनाथ तिवारी, पृ० ६७ पद ११४

चेतनि अतवार ग्यांन-गुरू करि और तजो सब ढबकाई ।”¹

ऐसा ही रूपक कबीर में भी द्रष्टव्य है। वह कहता है कि प्रेम रूपी चाबुक हाथ में पकड़कर विचार रूपी घोड़े पर जीन-कमकर शाम तक अपने स्वामी से अवश्य मिल लूंगा—

“कबीर तुरी पलांणियाँ, चाबक लीया हाथि ।

दिवस थकां साईं मिलौं, पोछे पड़िहै राति ।”²

ब्रह्मरंध्र में चन्द्रमा के बिना दोनों ने ही चाँदनी का अनुभव किया है—

“नीलर झरणे अमीरस पीवणां षटदल वेध्या जाइ ।

चंद्र बिहूणां तहाँ देख्या श्रीगोरषराई ।”³

“मन लागा उनमन सौं, गगन पहुँचा जाई ।

देख्या चंद्रबिहूणां, तहाँ अलख निरंजन राई ।”⁴

कुण्डलिनी-जागरण, षट्चक्र-वेधन, इडा-पिंगला, ब्रह्मरंध्र तथा अनहदनाद आदि योग-क्रियाओं से सम्बन्धित अनेक रचनाएँ गोरखनाथ की रचनाओं का अनुकरण-मात्र लगती हैं—

गोरखनाथ— “गगन मंडल मैं ऊँघा कूँवा, तहाँ अमृत का बासा ।

सगुरा होइ सु भरि-भरि पीवै, निगुरा जाइ पियासा ।”⁵

कबीर— “आकासै मुखि औँघा कूँवां, पाताले पनिहारि ।

ताका जल कोई हसा पीवै, बिरला आदि बिचारि ।”⁶

तुलसी साहब— “लखि आकाश औँघा कूँवा, तामें सुरति समाना हो ।

गगन गिरा गरजत भई फूटा असमाना हो ।”⁷

गगन मंडल संवधो अन्य उदाहरण मिलाकर देखिए—

गोरखनाथ— “गगन सिधर महि सबद प्रकासा”⁸

“गगन मंडल मैं अनहद बाजै”⁹

“गगन मंडल मैं तेज चमकै ।”¹⁰

1 गोरखबानी, पद १४

2 कबीर ग्रंथावली—सं० डा. पारसनाथ तिवारी, पृ० १६० (१५/३=)

3 गोरखबानी, सं० १७१

4 कबीर ग्रंथावली—सं० डा. पारसनाथ तिवारी, पृ० १६० (२/=)

5 गोरखबानी, सं० २३

6 कबीर ग्रंथावली—सं० डा. पारसनाथ तिवारी, पृ० १७१ (६/३=)

7 तुलसी साहब की शब्दावली, प्रथम भाग, पृ० ३०

8 गोरखबानी, सं० ४

9 गोरखबानी, सं० ३२

10 गोरखबानी, सं० ५१

- कबीर— “गगन गरजि अंघ्रित चुवै, कदली कंवल प्रकास ।”¹
 “गगन दमामा बाजिया, परत निसाँनै घाउ ।”²
- धर्मदास— “गगन मंडल में सतगुरु बोल, सुनि लै सब्द हमारा ।”³
- तुलसी साहब— “गगन मंडल के बीच में झिलमिल झलकत तूर ।”⁴
- भ्रमर गुफा से संबंधित कुछ उदाहरण मिलाकर देखिए—
- गोरख— “भ्रमर गुफा में मन थरि ध्यानै, वैस्या आपण बाली ।”⁵
 “उलटै कमल महंछदल बास, भ्रमर गुफा महि जोति प्रकास ।”⁶
- कबीर— मानसरोवर मुभग जल, हंसा केलि कराहि ।
 मुक्ताहुल मुक्ता चुगै, अब उड़ि अनत न जाहि ।”⁷
- चरनदास— “भँवरगुफा में है तिरबेनी, सुरति निरति लै धावी ।”⁸
- धर्मदास— “भँवरगुफा मे उठत बुलबुला, सो अंजन पिय नैन लगावो ।”⁹
- दरिया साहब— “गगन मंडल बिच रचौ चौतरा भँवर गुफा के घाटे ।”¹⁰
- इसी प्रकार इड़ा-पिंगला से संबंधित कतिपय उदाहरण मिलाकर देखे जा सकते हैं—
- गोरख— “सदा अभ्यास रहै जोगी गंगा जमुना कूले ।
 गंगा जमुना कूले पैसि करिले असनान ।”¹¹
- कबीर— “गग जमुन के अंतरै सहज सुनि लौ घाट ।
 तहाँ कबीर मठ रच्यो मुनिजन जोवै बाट ।”¹²
- दरिया साहब— “इड़ा-पिंगला मुधुम्ना त्रिकुटी संधि मेंझार ।”¹³
- सहजोबाई— “इड़ा-पिंगला ऊपर पहुँच सुखमन पार उधार ।”¹⁴

-
- 1 कबीर ग्रंथावली-सं० डा. तिवारी, पृ० १७१ (६/३५)
 - 2 वही, पृ० १८२ (१४/२६)
 - 3 धर्मदास की शब्दावली, पृ० २७
 - 4 तुलसीसाहब की शब्दावली, भाग १, पृ० ३८
 - 5 गोरखबानी, पृ० १२२
 - 6 वही, पृ० १२४
 - 7 कबीर ग्रंथावली-सं० डा. तिवारी, पृ० १७१ (६/३४)
 - 8 चरनदास की बानी, भाग १, पृ० ४८
 - 9 धर्मदास की शब्दावली, पृ० ३२
 - 10 दरिया साहब की शब्दावली, पृ० ४१
 - 11 गोरखबानी, पृ० १५०
 - 12 कबीर ग्रंथावली-सं० डा० तिवारी, पृ० १७३ (१०/७)
 - 13 दरिया साहब की बानी, पृ० १
 - 14 सहजोबाई की बानी पृ० ५१

धरमदास— 'इड़ा-पिगला दोड़ हैं, त्रिकुटी मन लावो ।'^१

यारी साहब— "गंग जमुन सरमुती मिलावे ।"^२

गुलाल साहब— "गंग जमुन की घाट तो कलस धराइल हो ।"^३

इस प्रकार हम देखते हैं कि संतसंप्रदाय का सीधा संबंध नाथ संप्रदाय से है । उन्होंने नाथ-संप्रदाय की विचार-धारा को मूल रूप में ग्रहण किया । नाथ-संप्रदाय की आचार-निष्ठा, विवेकसंपन्नता, अंधविश्वासों को तोड़ने की उग्रता एवं परंपरागत कर्म-काण्डों की निरर्थकता संत संप्रदाय में सीधी चली आई ।^४

सूफी साहित्य पर

संतसाहित्य तो गोरखपंथ का अनुयायी है ही, सूफी कवियों पर भी गोरखनाथ का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगत होता है । यह प्रभाव जायसी के 'पद्मावत', मुल्ला दाऊद के 'चंदायन', कुतुबन की 'मृगावती', मंझन की 'मधुमालती' और उस्मान की 'चित्रा-वली' पर अधिक एवं स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । आज भी बहुत से मुसलमान फकीर योगियों के वेष में सारंगी बजाते हुए घूमते फिरते हैं और गोरखनाथ को अपना आदि गुरु मानते हैं ।

'भारतीय सूफी अपनी प्रेम-साधना के अन्तर्गत नाथयोगी-संप्रदाय की अनेक योगिक क्रियाओं का भी समावेश करते थे । अपनी प्रेमगाथाओं में उनके द्वारा शरीर के भीतर कल्पित किये गए विविध महत्त्वपूर्ण स्थलों के वर्णन रूपकों की सहायता से किया करते थे ।'^५ उन्होंने गोरखनाथ के पारिभाषिक शब्दों, उनके साधन-मार्ग के निरूपण, उनकी कथाओं एवं वेष-भूषा आदि की चर्चा प्रचुर मात्रा में की है । सींगी, सेली, मेखला, खप्पर, बाघम्बर, भभूत, दण्ड, रुद्राक्ष, कंथा, अधारी आदि वस्तुएँ नाथपथियों की वेष-भूषा के अन्तर्गत आती हैं । 'पद्माव' में राजा रतनसेन का वेष द्रष्टव्य है—

"मेखल सिधीं चक्र धंधारी । जोगबाट रुद्रराह अधारी ।

कंथा पहिरि दंड कर गहा । सिद्ध होइ कहें गोरख कहा ।

मुद्रा सवन कंठ जपमाला । कर उदयान कांध बंध छाला ।

पाँवरि पाँव दीन सिर छाता । खप्पर दीन्ह भेस करि राता ।"^६

इस प्रकार मृगावती की खोज में राजकुंवर अपना योगी का वेष बनाकर निकल पड़ता है—

"किएसि उड़ियानी गोरखपंथा । पायँ पांवरी मेखलि कंथा ।

१ धरमदास की बानी पृ० ५१

२ यारी साहब की रत्नावली पृ० ८

३ गुलाल साहब की बानी, पृष्ठ ११६

४ हिन्दी साहित्य, भाग २—सं० डा. धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ २०४

५ उत्तरी भारत की संत परंपरा—आ० परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ७४

६ पद्मावत—जायसी १२६/१/७

जटा चक्र मुद्रा जपमाला । डंडा कापर केहरि छाला ।
जो गौटा रुद्राख अधारी । भसम किहेसि तिरमूल संवारी ।
कर किंगरी घँडोर मन मेला । तार बजावइ रैन-अकेला ।
सींगी पूरहु नेह सँभारै । जवँ कुरंगिनि खिन न बिसारै ।¹

इसी प्रकार जब लोरिक चन्दा को प्राप्त करने के लिए मंदिर में जाता है तो मुल्ला दाऊद ने उसकी वेषभूषा का वर्णन किया है—

“सुवन फटिक मुदरा सर सेली । कण्ठ जाय रुदरा कै मेली ।
चकर जगौटा गूथी कंथा । पाँय पाँवरी गोरखपंथा ।
मुख भभूत कर गही अधारी । छाला वंस कै आसन मारी ।
दण्ड अखर बैन कै पूरी । नेह चारचा पावँ झोरी ।
कर किंगरी तिह बार बजावइ । तिह चाँदा मुख चितरा पावँ ।²

‘मधुमालती’ में भी मंजून ने कुंवर के योगी वेष का वर्णन इस प्रकार किया है—

“चक्र माथ मुख भसम चढ़ावा, सुअन फटिक मुद्रा पहिरावा ।
उदयानी कसि कै कर सांटी, गून किंगरी बंरागी ठाटी ।
कंथा मेखलि चिरकुटा, जटा परी सिर केस ।
बज्र कछोटा बाँधि कै, किय गोरख का बेस ॥”

उम्मान की ‘चित्रावली’ में भी परेवा गुह ने कुंवर को गोरखपंथी वेष धारण करने का उपदेश दिया है—

“मनि कुण्डल मकराकृत डारहु । फटिक मुंदरा लवन सँवारहु ।
धोवहु चन्दन भसम चढ़ावहु । किंगरी गहहु बियोग बजावहु ।
तजहु सेल कर लेहु धंधारी । और सुमिरनी चक्र अधारी ।
सिंगी पूरहु जटा बड़ावहु । खप्पर लेहु भीख जेहि पावहु ।
काँधे लेहु बाँधि मृगछाला । गोवँ पहिरहु रुद्राषक माला ।
करहु कान जनि एकहु, कहै कोऊ जो लख ।
पहिरि लेहु पग पाँवरी, बोलहु सिरि गोग्गख ॥”

गोरखनाथ के द्वारा उपदष्टि हठयोग का भी भारी प्रभाव इन सूफ़ी कवियों में मिलता है। इड़ा, पिगला, सुषुम्ना, षटचक्र, नवरंध, ब्रह्मरंध आदि से संबंधित पर्याप्त सामग्री इन कवियों में उपलब्ध होती है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं।

गोरख— “चंद सूर दोऊ समि करि राख्य आपँ आप जु मिलिया ।”³

जायसी— “गही पिगला सुखमन नारी ।

1 मृगावती—कुतुबन, १०६/१/४

2 चन्दायन—मुल्ला दाऊद

3 गोरखबानी, पृ० ६२

- सुग्नि समाधि लागि औ तारी ॥^१
- कुतुबन— “चाँद कहा अब सूरज आवउ ।
एकहि रासि बैठि नित छावउ ॥^२
- गोरख— “गगनि सिषर महि सबद प्रकास्या ।
तहँ बूझँ अलष बिनांणी ॥”^३
- जायसी— “दसवं दुआर तारु का लेखा ।
उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा ॥^४
‘ नौ पौरी तेहि गढ़ मझिघारा ।
ओ तहँ फिरहि पाँच कोट बारा ।
दसँव दुआर गुपुत एक ताका ।
अगम चढ़ाव बाट मुठि बाँका ।
भेदै जाइ सोइ वहि घाटी ।
जो लहि भेद चढ़ होइ चाँटी ॥”^५
- मंझन— “मन मत्तंग मारि बस किया । ग्यान महारस अंत्रित पिया ।
सहस उदित अयान साधि कै, लौन्हि सिद्ध अवराधि ।
बारह बरिष रहे बन परबत, लाए जो ब्रह्म-समाधि ॥”^६
- सूफी कवियों पर गोरखनाथ के प्रभाव तथा उनके प्रति आदर-सम्मान की भावना की पुष्टि जायसी के निम्न कथन से हो जाती है—
“बिनु गुरु पंथ न पाइय भूलँ सो जो भेंट ।
जोगी सिद्ध होइ तब, जब गोरख सौ भेंट ॥”^७

कृष्ण भक्ति साहित्य पर

कृष्ण-भक्ति-शाखा के कवि सिद्धान्ततः योग साधना के पक्ष में नहीं जान पड़ते, फिर भी उनके काव्य में योग-भावना तथा हठयोग के संकेत गोरखनाथ की योग-साधना की व्यापकता के परिचायक अवश्य हैं । और यदि भारत के धर्मों की तात्त्विक भावना पर विचार करें तो सगुण भक्ति योग का एक भेद मात्र ही दृष्टिगत होगा । “दार्शनिक दृष्टि से शिवशक्ति और पुरुष प्रकृति की भाँति कृष्ण-राधा भी अभिन्न तत्त्वों के रूप में सम्मान्य हैं । इस शास्त्रीय धारणा को योग-भावना से बिलग समझना बड़ी भूल है । अष्टछाप के कवियों ने समवेत स्वर से वैराग्यपूर्ण जीवन की श्रेष्ठता

- १ पदमावत—जायसी २२/२३५
- २ मृगावती—कुतुबन १३०/२
- ३ गोरखबानी, मवदी ४
- ४ पदमावत—जायसी, २२/२१६
- ५ पदमावत—जायसी,—२२०
- ६ मधुमालती—मंझन, २१
- ७ पदमावत—जायसी, २१७

सर्वत्र प्रतिपादित की है। नैराग्य वस्तुतः योग-साधना का प्रधान अंग है।¹ सूर के समय तक गोरखनाथ का हठयोग जन साधारण में जटिलता एवं चमत्कार के रूप में अधिक प्रयुक्त होने लगा था। उद्धव के प्रति गोपिकाओं की खोज की मनोवैज्ञानिकता यही है कि 'सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावैं।' सूर को योग-भावना एवं हठयोग का पूर्ण ज्ञान था। मात्र सरलीकरण के कारण ही वे सगुण भक्ति में आए। उनके अनेक पदों में हठयोग के संकेत मिलते हैं।² इसी प्रकार नाथयोग के अनेक संकेत हमें भ्रमरगीत-प्रसंग में मिल जाते हैं। सूरदास ने जीव के कल्याण के लिए यज्ञ, जप, योग आदि का भी सुझाव दिया है।³ सूर ने भक्ति को भी योग का ही एक भेद माना है और तीन प्रकार के योग कहे हैं—कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग।⁴

वस्तुतः कर्म, भक्ति एवं ज्ञान को पृथक्-पृथक् साधना-पद्धति मानने से ही हमें सगुण एवं निर्गुण का भेद दृष्टिगत होना है। साधना की चरम सीमा पर ये तीनों एक हो जाते हैं। "एक पक्षी को उड़ने के लिए तीन अंगों की आवश्यकता होती है, दो पंख और एक पतवार स्वरूप पूंछ। ज्ञान और भक्ति मानों दो पंख हैं और योग पूंछ, जो सामंजस्य बनाए रखती है।"⁵

मीराबाई के पदों में भी नाथ-पंथ की पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग योग-भावना के लिए मिल जाता है। उन्होंने योग, गगनमण्डल, सुरत-निरत, त्रिकुटी, अनहदनाद आदि का उपयोग किया है।

शुद्ध साधना-पक्ष में न सही, कृष्णभक्त कवियों ने योग-भावना को भावना-पक्ष में अवश्य स्वीकार किया है। कृष्ण-कथा और उसके पात्रों के अध्यात्मिक रूपक भी गोरखनाथ के रूपकों से प्रभावित जान पड़ते हैं।

राम-भक्ति साहित्य पर

'गोरख जगायो जोगु भगति भगायो लोगु, निगम नियोग तें तो कैलि ही छरो सो है'⁶ के आधार पर विद्वान् तुलसी तथा रामभक्ति साहित्य का गोरख-विरोधी समझ लेते हैं किन्तु तुलसी तथा रामभक्ति साहित्य का अनुशीलन करने पर विदित होता है कि रामभक्ति साहित्य पर गोरखनाथ का प्रभाव कृष्ण भक्ति साहित्य की अपेक्षा अधिक और पर्याप्त है। तुलसीदास का उक्त कथन सूर के समान ही हठयोग की जटिलता एवं तत्कालीन विकृति के प्रति प्रासंगिक खोज मात्र है। "वे गोरखनाथ की योग-साधना

1 योगवाणी (अगस्त ७७)—हिन्दी के भक्ति साहित्य में योग-भावना—डा० शिवशंकर शर्मा पृष्ठ २२

2 सूरसागर, प्रथम खण्ड, पद ३६४ (नाग. प्र. सभा.)

3 वही, पद १११, ३०४

4 वही, पद ३६४

5 भक्तियोग—स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ ८

6 कवितावली—तुलसी, ७/८४

के विरोधी नहीं हैं, विरोधी योग के उस रूप के हैं, जिसको माध्यम बनाकर गोरख-पंथी-योगी भोली-भाली जनता को दिग्भ्रंत कर रहे थे ।”¹

यों तो योग-साधना में रुचि रखने वाले साधकों ने रामचरित मानस की हठ-योग परक टीकाएँ तक कर ली हैं, जैसे—१. सन्त उन्मनी टीका—श्री गुरु सहाय लालजी, २. विजया टीका—श्री विजयानन्द, ३. मानस सिद्धार्थ बोध-पं० छेदीलाल द्विवेदी, ४. मानस टिप्पणी—श्री बेनीदास दादूपंथी; किन्तु अगर तटस्थ भाव से देखें तो भी तुलसी-साहित्य पर योग का प्रभाव हमें पर्याप्त रूप में मिल जाएगा । योगियों की अखण्ड ज्योति से तुलसी ज्ञानयोग की तुलना कीजिए—

“सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा ।

दीप सिखा सोइ परम प्रचण्डा ॥”²

ज्ञानकी के बारे में विश्वामित्र का निम्न कथन योग-सिद्धान्तों से प्रभावित है—

“रागऊ विराग, भोग जोग जोगवत मन,

जोगी जागबलिक प्रसाद सिद्धि लही है ।

ताते न तरनि तें न सीरे सुधा करहु ते,

सहज समाधि निरुपाधि निरबही है ।”³

तुलसी की भाँति ही केशवदास ने भी योग-साधना के महत्त्व को स्वीकार किया है । राजा जनक द्वारा राम के स्वरूप का चित्रण द्रष्टव्य है—

“सिद्ध समाधि सजै अजहूँ न कहूँ जग जोगिन देखन पाई ।

×

×

×

केशव गाधि के नंद हमें वह ज्योति सो मूरतिबंत दिखाई ॥”⁴

गोरखनाथ की योग-साधना का प्रभाव निगुण और सगुण साहित्य के माध्यम से होता हुआ आधुनिक युग तक यत्र-तत्र परिलक्षित हो जाता है । निराला की ‘राम की शक्ति पूजा’ राम को योग-साधना में लीन कर देती है । वे राम के मन को षट्-चक्रों को भेद कर सहस्रार तक पहुँचा देते हैं—

“रह गया एक इन्दीवर, मन देखता पार,

प्रायः करने को हुआ दुर्ग जो सहस्रार ।”⁵

इसी प्रकार नायपंथी प्रभावों से परिपूर्ण संकेत आधुनिक अन्य कवियों में भी मिल जाएँगे ।

परवर्ती हिन्दी-साहित्य पर गोरखनाथ के इस व्यापक प्रभाव का एक कारण

1 योगवाणी, गोरख विशेषांक (जनवरी १९७७) — योगपंथ और तुलसीदास—डा० भगवती प्रसाद सिंह, पृष्ठ ६५

2 रामचरित मानस—तुलसी, ७/७/२

3 गीतावली—तुलसी, ५/८८/३

4 श्री रामचंद्रिका, छठा प्रकाश, पृष्ठ ७६

5 कविश्री—निराला, पृष्ठ ३१

यह भी दृष्टिगत होता है कि संपूर्ण भारतीय धर्म-साधनाओं में योग ही मूल है। योग साधना वह समुद्र है, जहाँ अन्य साधनाओं की समस्त नदियाँ अन्ततोगत्वा समाहित होती हैं। सभी साधनाओं का लक्ष्य जीवात्मा को परमात्मा में समाहित करना होता है। वस्तुतः साधना के दो ही प्रकार हैं—बहिर्मुखी एवं अन्तर्मुखी। जब-जब बहिर्मुखी साधना में विकृतियाँ आयी हैं, तब-तब उसका विरोध करने के लिए अन्तर्मुखी साधना की प्रबलता हुई है; और जब-जब अन्तर्मुखी साधना में विकृतियाँ आई हैं, तब-तब बहिर्मुखी साधना की प्रबलता हुई है। तादात्म्य एवं लयात्मकता इन दोनों का ही अभीष्ट है और यही योग-साधना है।

×

६. गोरखनाथ की प्रासंगिकता और हिन्दी-साहित्य को देन

गोरखनाथ की प्रासंगिकता से तात्पर्य है आज के युग के लिए गोरख की कविता का उपयोग। प्रश्न उठाया जा सकता है कि गोरखनाथ के काव्य में जो कुछ भी है वह तात्कालिक परिस्थितियों से प्रभावित है। उन्होंने जो भी समाज-सुधार का बोझ उठाया हो, अन्धविश्वास और कुरीतियों से संघर्ष किया हो, वह सब उनके उस युग के निमित्त था। आज गोरखनाथ के इस रूप की क्या उपयोगिता है? अर्थात् गोरखनाथ के काव्य की प्रासंगिकता क्या है? आज हम गोरखनाथ को क्यों पढ़ें? वह हमें हमारे समाज को, हमारे देश को, हमारे साहित्य को क्या लाभ पहुँचा सकता है? ये प्रश्न महत्वपूर्ण भी हैं और आकश्यक भी।

गोरखनाथ पर ही नहीं अन्य विगत कवियों पर भी प्रासंगिकता का प्रश्न उठ खड़ा होता है। वर्तमान युग व समाज की बात छोड़िए, आचार्य शुक्ल ने तो गोरखनाथ और संतसाहित्य को तत्कालीन उपयोगिता की दृष्टि से भी स्वीकार नहीं किया। ऐसे और भी विद्वान् हैं, जिन्होंने गोरख-काव्य की तत्कालीन एवं प्रासंगिक उपयोगिताओं पर सन्देह व्यक्त किया है। कुछ विद्वान् ऐसे भी हैं जिन्होंने गोरख की तात्कालिक उपयोगिता के साथ-साथ उन्हें नितान्त प्रासंगिक भी माना है।

“हिन्दी साहित्य की मूल चेतना लोकात्मक है। जीवन्त अनुभवों एवं समाज के विविध संस्कारों से गुजरती हुई लोकचेतना के अनेक घरातलों को झेलकर इस भाषा तथा साहित्य ने अपने को प्राणवान् बनाया है। आज जिसे हिन्दी साहित्य के आदिकाल की निकृष्ट सामग्री के नाम से पुकारा जाता है, उसी अनुभव, उसी भाषा तथा उसी अभिव्यक्ति से इसे चैतन्य मिला है। जैन सिद्ध तथा नाथसाहित्य के सर्जकों एवं साधकों ने इस भाषा को अनुभव समृद्धि दी है, रचनात्मक शक्ति से पोषित किया है। इसको इतिहास के परिशिष्ट में डाल देना इतिहास लेखकों का अन्याय है।”¹

गोरखनाथ की कविता को नकारने के विद्वानों ने अनेक कारण दिये हैं। कहीं तो वे कहते हैं कि इनकी रचनाओं में लोकमंगल की भावना नहीं है और कहीं कहते हैं

1. डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह, योगवाणी, जनवरी, १९८३ ई० में संकलित लेख ‘हिन्दी साहित्य की मूल चेतना के विकास में नाथसंप्रदाय का योगदान’ पृ० २८८

कि इनकी भाषा ही अटपटी, बेमेल खिचड़ी और सधुक्कड़ी है। कहीं कहते हैं कि रहस्यमयी भावनाओं के कारण इनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो गयी है और कहीं कहते हैं कि इनकी रचनाओं में काव्य-तत्त्व ही नहीं है। कहीं कहते हैं कि इनकी भक्तिधारा ही भारतीय समाज व्यवस्था (वर्ण व्यवस्था) के विरुद्ध विदेशी धारा है और कहीं कहते हैं कि सभी अशिक्षित और सामान्य कोटि के अशास्त्रज्ञ लोग थे।

सर्वप्रथम गोरखनाथ की भाषाई विवेचना आवश्यक है। देखना यह है कि हिन्दी भाषा के विकास में गोरखनाथ का क्या योगदान है? यद्यपि शुक्ल जी ने गोरखनाथ को सिद्धों की परम्परा से पृथक् स्वीकार कर लिया है किन्तु “नाथ-ग्रन्थ सिद्धों की परम्परा से ही छटकर निकला है, इसमें कोई सन्देह नहीं।”^१ कहकर भाषाई दृष्टि से वे वज्रयानी सिद्धों और नाथसिद्धों को एक ही साथ रखते हैं तभी तो इन दोनों को प्रकरण दो में अपभ्रंश काव्य के अन्तर्गत विवेचित करते हैं। शुक्ल जी जब नाथ-ग्रन्थ की भाषा का अलग से विवेचन करने लगते हैं तो उनकी भाषा को वज्रयानी सिद्धों की भाषा से पृथक् रूप देते हैं। “इस प्रकार नाथ-ग्रन्थ के इन जोगियों ने परम्परागत साहित्य की भाषा या काव्य भाषा से, जिनका ढाँचा नागर अपभ्रंश या व्रज का था, अलग एक ‘सुधक्कड़ी’ भाषा का सहारा लिया, जिसका ढाँचा कुछ खड़ी बोली लिए राजस्थानी था।”^२ नाथ-ग्रन्थ की इन रचनाओं को देश-भाषा की पुस्तकें स्वीकारते हुये भी शुक्ल जी ने नाथ-साहित्य को देश भाषा काव्य के अन्तर्गत नहीं रखा है जबकि देश-भाषा काव्य के अन्तर्गत विवेचित रासो साहित्य की भाषा को अपभ्रंश भाषा स्वीकार करते हैं। “अपभ्रंश के योग से शुद्ध राजस्थानी भाषा का जो साहित्यिक रूप था वह डिगल कहलाता था।”^३ शुक्ल जी की भाँति ही अनेक विद्वानों के इस विरोधाभास का मूल कारण है आदिकालीन भाषा-सम्बन्धी अस्पष्ट धारणा। ये विद्वान् अपभ्रंश, प्राकृताभास हिन्दी और हिन्दी—तीनों को अलग-अलग करके नहीं देख सके हैं।^४ हमारे विचार से हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अपभ्रंश साहित्य का विवेचन नहीं किया जाना चाहिए। इसी दृष्टि से हम वज्रयानी सिद्धों के साहित्य को अपभ्रंश भाषा वा होने के कारण हिन्दी में नहीं लेना चाहते जबकि नाथ-साहित्य, हिन्दी-भाषा में होने के कारण हिन्दी-साहित्य के इतिहास में आना चाहिए और शुक्ल जी के देश-भाषा काव्य में स्थान मिलना चाहिए। अपभ्रंश और हिन्दी के अन्तर के उदाहरण के लिये दो उद्धरण पर्याप्त हैं—

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १८

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २१

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०

४. क-“इस प्रकार अपभ्रंश या प्राकृताभास हिन्दी में रचना होने का पता हमें विक्रम की सातवीं शताब्दी में मिलता है।”—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १०

ख-“ऐसी अपभ्रंश या पुरानी हिन्दी का पूरा प्रचार शब्द साहित्य या काव्य-रचनाओं में भी पाया जाता है।”—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७

१ “पंडिअ सअल सन्त वक्खाणइ । देहहि बुद्ध बसंत न जाणइ ।
अवणागमण ण तेन विखंडिअ । तीनि गिलज्ज भणइ हउं पंडिअ ॥”

—सरहपाद

२ “गगन मंडल मै ऊंधा कूबा, तहाँ अमृत का बासा ।

सुगरा होइ मु भरि भरि पीवै, निगुरा जाइ पियासा ॥” —गोरखनाथ
डा० हजारो प्रसाद द्विवेदी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि “अपभ्रंश को पुरानी हिन्दी कहने का विचार भाषा-शास्त्रीय और वैज्ञानिक नहीं है। भाषा-शास्त्र के अर्थ में जिसे हम हिन्दी कहते हैं वह इस साहित्यिक अपभ्रंश से सौधे विकसित नहीं हुई। अपभ्रंश को अब कोई भी पुरानी हिन्दी नहीं कहता।”^१

विद्वान् चाहे गोरखनाथ की भाषा को सिद्धों की भाषा के साथ विवेचित करें, चाहे उसे पचरंगी, मिलोजुली तथा सधुक्कड़ी कहें और चाहे सधुक्कड़ी भाषा में तिरस्कार का भाव छिपा हो किन्तु गोरख की सधुक्कड़ी भाषा बिल्कुल वही है, जिसे आज हम साहित्यिक हिन्दी कहते हैं। इस साहित्यिक हिन्दी की प्रारम्भिक स्थिति हो कुछ ऐसी थी, जिसमें शुक्ल जी को मिलाजुला रूप दृष्टिगत हुआ। वैसे शुक्ल जी ने इस भाषा के स्वरूप का स्पष्ट विवेचन एक स्थल पर कर भी दिया है—“खड़ीबोली मुसलमानों की भाषा हो चुकी थी। मुसलमान भी साधुओं की प्रतिष्ठा करते थे, चाहे वे किसी दीन के हों। इससे खड़ीबोली दोनों धर्मों के अनपढ़ लोगों को साथ लगाने वाले और किसी एक के भी शास्त्रीय पक्ष से सम्बन्ध न रखने वाले साधुओं के बड़े काम की हुई। जैसे इधर अंग्रेजों के काम की हिन्दुस्तानी हुई।”^२

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से साहित्यिक हिन्दी का विकास जिस नाथ-पन्थ से होते हुए सन्त साहित्य तक चला है, उसे भी साहित्य न मानकर हिन्दी-साहित्य के इतिहास में प्रमुख स्थान न देना एक विडम्बना ही है।

जहाँ तक गोरखनाथ के भाषा-शिल्प का प्रश्न है सो शुक्ल जी ने उसे साहित्य की कोटि में लिखा ही नहीं। यद्यपि गोरखनाथ के भाषा-शिल्प पर शुक्ल जी ने अलग से कोई सविस्तार चर्चा नहीं की है किन्तु उनकी जो धारणा कबीर इत्यादि निर्गुण सन्तों के प्रति थी, लगभग वही नाथसिद्धों के प्रति भी थी। कबीर की प्रशंसा में शुक्ल जी उनको ‘प्रतिभा बड़ी प्रखर’ और उनकी बातें ‘व्यंग्य चमत्कारपूर्ण’ तो स्वीकार करते हैं, जैसे—

“यद्यपि वे पढ़े-लिखे न थे, पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी, जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली व्यंग्य-चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं।”^३

“कबीर की उक्तियों में कहीं-कहीं विलक्षण प्रभाव और चमत्कार है। प्रतिभा

१. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल प्रथम प्रवचन
२. चिन्तामणि भाग ३, फुटनोट, पृ० २०७
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ८०

इनमें बड़ी प्रखर थी, इसमें सन्देह नहीं।¹ किन्तु एक बार भी यह कहने का साहस नहीं कर पाये कि कबीर एक प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी दृष्टि में तो 'कबीर के रूपक और अन्योक्तियाँ मात्र 'अपढ़' लोगों को चकित किया करतीं थीं।² तथा सन्त कवियों की "भाषा और शैली अधिकार अव्यवस्थित और ऊटपटांग थी।"³

किन्तु वास्तविकता तो यह है कि अनपढ़ कबीर के व्यंग्य और वक्रोक्ति पर न जाने कितने हजारी प्रसाद विवेदी जैसे पढ़े लिखे और विद्वान् साहित्यकार भी मुग्ध हैं। "इस कदर सहज और सरस ढंग से चकनाचूर करने वाली भाषा कबीर के पहले बहुत कम दिखाई दी है। व्यंग्य वह है, जहाँ कहने वाला अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो। कबीरदास ऐसे ही व्यंग्यकर्ता थे।"⁴ कबीर के एक पद की टीका करते हुए डा० पारसनाथ तिवारी लिखते हैं — "इन्हीं गम्भीर व्यंजनाओं के कारण उन्होंने 'तुम्ह जनि जानहु गीत है' की चेतावनी दी है। 'मसि कागद' न छूने वाले 'जुलाहे' की ध्वनि और व्यंजनापूर्ण ये काव्योक्तियाँ उनके लिए चुनौती के रूप में हैं जो उसके काव्य में कोई उत्कृष्टता नहीं पाते।"⁵

जहाँ तक गोरखनाथ के काव्य-शिल्प का प्रश्न है मो यथास्थान इस पुस्तक में उस पर विस्तार से विवेचन किया गया है और कविता के सभी गुणों की कसौटी पर कसकर गोरख-काव्य को देखा गया है तथा इस परिणाम पर भी पहुँचा गया है कि गोरखनाथ की रचनाएँ साहित्यिक कृतियों में स्थान पाने की अधिकारिणी हैं फिर भी हमें यह न भूलना चाहिए कि गोरखनाथ के लिए काव्य-शिल्प महत्वपूर्ण नहीं था। उनके लिए महत्वपूर्ण था लोकानुभव की अनुभूति और लोकसामान्य के लिए उसकी अभिव्यक्ति। डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह का ध्यान इस लोकानुभव पर बड़ी गहराई से गया है—“हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ तथा इतिहास लेखक एक बहुत बड़ी विसंगति से घिरे हुए हैं। हिन्दी-काव्य अभिजात्य की रुचियों एवं संस्कारों का काव्य नहीं है। उसका साहित्यिक वैभव कलात्मक निष्ठा तथा शास्त्रीयता से ही अनुप्राणित नहीं है। उसे इसकी चिन्ता नहीं है कि 'रस' काव्य की आत्मा है, अलंकार अपरिहार्य तत्त्व है, वक्रता जीवन्तता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने भाषा-साहित्य की चर्चा तो अवश्य की है, किन्तु इस साहित्य की मूल चेतना की ओर उनकी दृष्टि नहीं गयी है।"⁶

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ८२

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ८१

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७३

4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० १६४

5. डा० पारसनाथ तिवारी, कबीर वाणी संग्रह, पृ० १८३, १८४

6. डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह, योगवाणी, जनवरी, १९८३ ई० में संकलित लेख 'हिन्दी-साहित्य की मूल चेतना के विकास में नाथसंप्रदाय का योगदान' पृ० २२६

लोकानुभव से युक्त साहित्यकार युगट्रुष्टा और युगस्रष्टा होता है तथा उसकी प्रासंगिकता शाश्वत होती है अतः गोरखनाथ आज भी प्रासंगिक हैं।

गोरखनाथ पर दूसरा आरोप लगाया जाता है कि उनकी रचनाओं में लोक-मंगल की भावना नहीं है। आचार्य शुक्ल लिखते हैं—“उनकी रचनाओं का जीवन की स्वाभाविक सरणियों, अनुभूतियों और दशाओं से कोई सम्बन्ध नहीं। वे साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र हैं, अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकतीं। उन रचनाओं की परम्परा को हम काव्य या साहित्य की कोई धारा नहीं कह सकते।”¹ सन्त-साहित्य के बारे में वे लिखते हैं—“शिक्षितों का समावेश कम होने से इनकी बानी अधिकतर साम्प्रदायिकों के ही काम की है, उसमें मानव-जीवन की भावनाओं की वह विस्तृत व्यञ्जना नहीं है जो साधारण जनसमाज को आकर्षित कर सके। इस प्रकार से सन्तों की परम्परा यद्यपि बराबर चलती रही और नये-नये पन्थ निकलते रहे पर देश के सामान्य-साहित्य पर उनका कोई प्रभाव नहीं रहा।”²

यद्यपि शुक्ल जी नाथ पंथ और सन्तसाहित्य से पूर्व की परिस्थितियों का सही अंकन करते हुए यह स्वीकारते हैं कि “इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस समय मुसलमान भारत में आये उस समय देश के पूर्वी भागों में (बिहार, बंगाल और उड़ीसा में) धर्म के नाम पर बहुत दुराचार फैला था।”³ और यह भी स्वीकार करते हैं कि हिन्दू और मुसलमानों में दूरियाँ बढ़ती जा रही थीं तथा “अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?”⁴

किन्तु फिर भी इन परिस्थितियों से जूझते हुए, विद्रोह और क्रान्ति करते हुए, बाह्याचार और आडम्बरों को फटकारते हुए हिन्दू और मुसलमानों की एकता का प्रयास करते हुए, विकृतियों और दुष्प्रवृत्तियों में फँसे हुए समाज को उबारने का भरमक प्रयास करते हुए, पतित और दीन जनों को भी गले लगाकर उनके आत्मगौरव को जाग्रत करते हुए जिन नाथों और सन्तों ने एक युग क्रान्ति का ही संचार कर दिया, शुक्ल जी ने उन्हें इन परिस्थितियों से इस रूप में जोड़कर ही नहीं देखना चाहा। “यक्षवाद के विलास से यदि एक ओर उच्च वर्गों में विलास बढ़ा जा रहा था तो दूसरी ओर जनसमाज में उसके प्रभाव से व्यभिचार की मात्रा बढ़ती जा रही थी। समाज भीतर ही भीतर गलता जा रहा था। जनसमाज को इससे मुक्त करने वाला व्यक्ति गोरखनाथ था, तभी उसका नाम उसके शताब्दियों तक आदर और भय से अपने हृदय में बसा लिया।”⁵

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६२
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १५
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६३
5. डा० रांगेय राघव-गोरखनाथ और उनका युग, पृ ७५

आचार्य शुक्ल इन सब बातों से अनभिज्ञ नहीं थे और यत्र-तत्र अपनी ज्ञेयता का प्रमाण भी देते हैं—“योगियों की इस हिन्दू-शाखा ने (नाथ-पंथियों ने) वज्रयानियों के अशील और बीभत्स विधानों से अपने को अलग रखा ।.....गोरख ने पतंजलि के उच्च लक्ष्य, ईश्वर प्राप्ति को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया ।”¹

“अतः उन्होंने दोनों के (हिन्दू और मुसलमानों के) विद्वेष-भाव को दूर करके साधना का एक सामान्य मार्ग निकालने की सम्भावना समझी थी और वे उसका संस्कार अपनी शिष्य-परम्परा में छोड़ गये थे ।”²

“इसके पहले ही गोरखनाथ के अनुयायी हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के लिए अन्तःसाधना के एक सामान्य मार्ग का उपदेश देते आ रहे थे ।”³

इसी प्रकार निगुण सन्तों के बारे में शुक्ल जी का कहना है कि “इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति-पद्धति का प्रचार था, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों यांग दे मर्कें और भेद-भाव का कुछ परिहार हो ।.....सारांश यह कि ईश्वर पूजा की उन भिन्न-भिन्न बाह्य विधियों पर से ध्यान हटाकर, जिनके कारण धर्म में भेदभाव फैला हुआ था, यह शुद्ध ईश्वर-प्रेम और सात्विक जीवन का प्रचार करना चाहते थे ।”⁴

अगर शुक्ल जी इतने पर ही अपनी धारणा समाप्त कर देते तो विवाद का कोई विषय नहीं था किन्तु उन्होंने तो नाथ और सन्तों के इस ‘उपकार’ को और ‘स्तुत्य’ प्रवास को मात्र अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता के लिए ही उपयोगी माना जैसे इस उपकार का सम्बन्ध समाज से है ही नहीं या अशिक्षित और निम्न श्रेणी के लोग समाज का अंग ही नहीं हैं। वे लिखते हैं—“अशिक्षित और निम्न श्रेणी की जनता पर इन सन्त महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है। उच्च विषयों का कुछ आभास देकर, आचरण की शुद्धता पर जोर देकर, आडम्बरों का तिरस्कार करके, आत्मगौरव का भाव उत्पन्न करके इन्होंने उसे ऊपर उठाने का स्तुत्य प्रयत्न किया ।”⁵ और अगर यहाँ तक भी बात समाप्त हो जाती तो भी सन्तोष था किन्तु शुक्ल जी का निष्कर्ष तो यह है कि “अर्थ—शून्य बाहरी विधि-विधान, तीर्थाटन, पर्वस्नान आदि की निस्सारता का संस्कार फैलाने का जो कार्य वज्रयानी मिट्ठों और नाथ-पन्थी जोगियों के द्वारा हुआ उसका उल्लेख हो चुका है। पर उनका उद्देश्य ‘कर्म’ को उस तंग गढ़े से निकालकर प्रकृत धर्म के खुले क्षेत्र में लाना न था बल्कि एकबारगी किनारे धकेल देना था। जनता की दृष्टि को आत्मकल्याण और लोककल्याण विधायक सच्चे कर्मों की ओर ले जाने के बदले उसे वे कर्म क्षेत्र से ही हटाने में लग गये थे। सामान्य अशिक्षित या अर्धशिक्षित जनता पर इनकी बानियों का प्रभाव इसके

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १७
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १६
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७०
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७२
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७३

अतिरिक्त और क्या हो सकता था कि वह सच्चे शुभ कर्मों के मार्ग से तथा भगवद्-भक्ति की स्वाभाविक हृदय पद्धति से हटकर अनेक प्रकार के मन्त्र-तन्त्र और उपचारों में जा उलझे और उसका विश्वास अलौकिक सिद्धियों पर जा जमें।”¹

वास्तव में आचार्य शुक्ल के सोच की असंगतियाँ इतने प्रकार से सामने आ चुकी हैं कि अब उनके बारे में कोई संदेह नहीं रह गया है। नाथ साहित्य और सन्त-साहित्य के बारे में उनकी जो असंगतियाँ हैं, वे मामूली भूल-चूक के कारण नहीं, वरन् उनकी दृष्टि की आधारभूत सोमा एवं विसंगति के कारण हैं। उन्होंने व्यक्ति और समाज को एक दूसरे का पूरक न समझकर व्यक्ति को समाज के निमित्त समझा और परिणाम यह हुआ कि समाज की कीमत अधिक हो गई व्यक्ति की कम।² भारतीय प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग दर्शन की दो शाखाएँ एक ही भूमि पर खड़ी हैं किन्तु शुक्ल जी ने इन्हें परस्पर विरोधी बना दिया है। उन्होंने लोकधर्म की त्यागमूलक भावना का विवरण हमारे सामने नहीं रखा। “शुक्ल जी का यह दार्शनिक विपर्यय भारतीय अध्यात्मशास्त्र के लिए अन्यायपूर्ण हो गया है।”³

“फिर यह जिज्ञासा होती है जिसे हम आज लोकधर्म नाम दे रहे हैं क्या वही या लगभग वही भिन्न-भिन्न युगों में ईश्वरेच्छा, राजाज्ञा, परस्परा, बहुसंख्या, लोकतन्त्र, मनुष्यता, प्रगतिशीलता, जनवादिता आदि-आदि नामों से जाना गया अथवा इनमें परस्पर कोई तात्त्विक और मूलभूत अन्तर है?”⁴

वस्तुतः लोकमंगल के दो रूप हैं—नैतिकता और मानवता। यही समष्टि और व्यष्टि हैं, यही प्रवृत्ति और निवृत्ति हैं तथा यही साधनावस्था और सिद्धावस्था हैं। आचार्य शुक्ल साहित्य को समाज की दृष्टि से देखते हैं और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखते हैं किन्तु मूलतः इन दोनों दृष्टियों में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। व्यष्टि और समष्टि दोनों अन्योन्याश्रित हैं। दोनों को पृथक्-पृथक् करके नहीं देखा जा सकता किन्तु इस विवेचन से हमारा तात्पर्य यह कदापि नहीं कि व्यक्ति का महत्त्व समाज से अधिक है। देखना यह है कि क्या गोरखनाथ ने अपने साहित्य में समाज को कोई महत्त्व नहीं दिया अथवा उनकी रचनाओं में लोकमंगल का नितान्त अभाव है?

अगर नाथसंप्रदाय में अथवा संतसाहित्य में आगे चलकर कुछ विकृतियाँ आ गई हों तो इससे इन संप्रदायों के साहित्य की उपलब्धि समाप्त नहीं हो जाती और न पूरे साहित्य पर ही यह आक्षेप लगाया जा सकता। विकृतियाँ हर पंथ में आई हैं अथवा आ सकती हैं। शुक्ल जी इस परिस्थिति को स्वीकार करते हैं—“साधना के जो तीन अवयव—कर्म, ज्ञान और भक्ति—कहे गये हैं, वे सब काल पाकर दोषग्रस्त हो

-
1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६४
 2. जैनेन्द्र कुमार, आलोचक रामचन्द्र शुक्ल-गुलाबराय, पृष्ठ ५४
 3. नन्ददुलारे वाजपेयी—आलोचक रामचन्द्र शुक्ल-गुलाबराय, पृ० ६७
 4. दस्तावेज, लोकधर्म, हिन्दी आलोचना तथा आचार्य शुक्ल-अजित कुमार, पृ० १०६

सबते हैं। 'कर्म' अर्थशून्य विधि-विधानों से निकम्मा हो सकता है, 'ज्ञान' रहस्य और गुह्य की भावना से पाखण्डपूर्ण हो सकता है और 'भक्ति' इन्द्रियोपभोग की वासना से कलुषित हो सकती है।¹ भारतीय धर्मसाधना का यह उत्थान-पतन तो चलता ही रहा है। जब-जब धर्मसाधना की स्थिति इतनी अधिक अन्तर्मुखी हुई है कि उसने बाहरी जगत् एवं समाज से अपना नाता ही तोड़ लिया है तब-तब लोकमंगलकारी चरित्रों के माध्यम से तुलसी जैसे मनीषियों ने समाज को जगत् में रमण करने का अवसर दिया है, समाज को अथवा बहिर्मुखी प्रवृत्ति को अधिक महत्त्व दिया है। और जब-जब धर्मसाधना इतनी अधिक बहिर्मुखी हुई है कि बाह्य आडम्बरों, अन्धविश्वासों कुरीतियों और मोह-ममता में फँसकर व्यष्टि और समष्टि-दोनों ही तत्त्वों को भुला दिया गया है—मूलतत्त्व को ही छोड़ दिया गया है तब-तब गोरखनाथ जैसे मनीषियों ने अन्धविश्वासों का विरोध करते हुए अन्तर्मुखी प्रवृत्ति पर अधिक बल दिया है। हमारी दृष्टि में दोनों ही लोकमंगलकारी हैं।

यह तो शुबल जी द्वारा भी स्वीकार किया जा चुका है कि गोरखनाथ के समय सामाजिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक (राजनैतिक भी) परिस्थितियाँ अत्यधिक विकृत थीं। इन विकृतियों के विरुद्ध गोरखनाथ ने बड़ा संघर्ष किया था। उदाहरण के लिए गोरखनाथ की केवल एक रचना 'नरवैद्योघ' के विचार पर्याप्त होंगे—

'काम, क्रोध और अहंकार को छोड़ो; मन, माया और विषय-विकारों को भी छोड़ दो; किसी जीव की हत्या मत करो; तृष्णा और लोभ को भी त्याग दो; तन्त्र-मन्त्र, वैद्यक, यंत्र, गुटिका, घातु आदि पाखण्डों को छोड़ दो; जड़ी-बूटी का नाम मत लो; राजद्वार में पांव भी मत दो; स्तम्भन, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन को छोड़ दो; तीर्थ, व्रत कभी मत करो, पर्वतों पर चढ़कर प्राण मत त्यागो, अनेक शिष्यों की टोली बनाकर मत रहो, रस-रसायन, गुटिका के चक्कर में मत पड़ो; श्रृंगीनाद को छोड़ दो, सुगन्ध और भाँग का भक्षण मत करो।'

गोरखनाथ के इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने उन सब तन्त्रविधान और अन्तर्मुख साधना का भी विरोध किया है, जिनके लिए कि आचार्य शुबल ने उन पर आरोप लगाया है। गोरखनाथ द्वारा निदिष्ट यह विधि-निषेध लोकमंगल और लोक-रक्षा के लिए ही है। वज्रयानी सिद्धों, कापालिकों और शाक्तों में गोरखनाथ से पूर्व अनेक प्रकार का अनाचार फैला हुआ था। "जनसमूह जिन्हें चातक-वृत्ति से देख रहा था, वे निरं दंभी, आचरणहीन, मदिरा, धतूरा, अफीम एवं भाँग भकोसने वाले, नाना प्रकार की विषयवासनाओं में निमग्न थे।"²

इस प्रकार आचरणहीनता में डूबे हुए समाज को सचेत करना और आडम्बरों से उबारने के लिए यत्न करना लोकमंगल नहीं तो क्या है? गोरखनाथ की रचनाओं से

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६८

2. डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह, योगवाणी, मार्च ८४ में 'गोरख साहित्य और लोकहित, लेख, पृ० ४३

ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें समाज की विकृतियों पर भारी चिन्ता और आक्रोश व्यक्त करते हुए समाज को सही रास्ते पर लाने का प्रयास किया गया है। लोकमंगल का अर्थ राक्षसी वृत्तियों के विरुद्ध तलवार लेकर लड़ना ही नहीं है अन्य अनेक प्रकार से उनका विरोध करना तथा उनके विरुद्ध जन-चेतना जाग्रत करना भी है।

गोरखनाथ ने हिन्दू और मुसलमान—दोनों की धार्मिक, अन्धविश्वासी कट्टरता को फटकारते हुए दोनों की एकता का भरसक प्रयास किया। यह लोकमंगलकारी कृत्य गोरखनाथ से होता हुआ संत-परंपरा तक चला है। जब घर में ही क्लेश हो रहा हो, भाई-भाई में संघर्ष हो रहा हो तब किसके ऊपर हथियार उठाया जाये? 'चोरी का बदला डकैती से कैसे लिया जाये?' ऐसी स्थिति में समन्वय और समझौते का प्रयास भी लोकमंगलकारी ही होता है।

गोरखनाथ पर तीसरा आरोप उनकी रहस्यवादी भावना को लेकर लगाया जाता है। आचार्य शुक्ल रहस्यवाद के दो भेद करते हैं—स्वाभाविक रहस्यवाद और अभारतीय रहस्यवाद। वे स्वाभाविक रहस्यवाद की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—“स्वाभाविक रहस्य भावना बड़ी मधुर और रमणीय भावना है, इसमें सन्देह नहीं।”¹ किन्तु वास्तव में वे रहस्यवाद के सिद्धान्ततः विरुद्ध हैं। वे कहते हैं “जिस तथ्य का हमें ज्ञान नहीं, जिसकी अनुभूति से वास्तव में कभी हमारे हृदय में स्पन्दन नहीं हुआ, उसकी व्यंजना का आडम्बर रचकर दूसरों का समय नष्ट करने का हमको कोई अधिकार नहीं।”²

एक स्थान पर शुक्ल जी लिखते हैं—“अब विचार करने की बात है कि किसी अगोचर या अज्ञात के प्रेम में आँसुओं की आकाश गंगा में तैरते या मुँदे नयन-पलकों के भीतर किसी रहस्य का सुखमय चित्र देखने को ही—तक भी तो कोई हर्ज न था—कविता कहना कहाँ तक ठीक है?”³

बाबू गुलाबराय ने इस वक्तव्य पर टिप्पणी देते हुए कहा है कि ‘ही’ का दावा तो रहस्यवादी भी नहीं करते। वे आगे कहते हैं—“जहाँ तक अज्ञात का प्रश्न है सगुण ईश्वर भी आजकल के बुद्धिवादियों के लिए उतना ही रहस्यमय है, जितना कि निर्गुण। वास्तव में आजकल के लोगों को निर्गुण के मानने में इतनी आपत्ति नहीं होती, जितनी सगुण के मानने में, सगुण ईश्वर के लिए भी एक सीमित जनता में आलम्बनत्व की भावना उत्पन्न होती है।”⁴

शुक्ल जी तो निर्गुण शाखा को भक्ति मार्ग के अन्दर स्वीकार ही नहीं करते—“भक्तिमार्ग का सिद्धान्त है भगवान को बाहर जगत् में देखना। मन के भीतर देखना—

1 चिन्तामणि भाग १, पृष्ठ १३०

2 चिन्तामणि, भाग २, पृष्ठ ६३

3 चिन्तामणि, भाग २, पृ. ५६

4 बाबू गुलाबराय—आलोचक रामचन्द्र शर्मा, पृ. १२४

यद् योगमार्ग का सिद्धान्त है, भक्तिमार्ग का नहीं।”¹ इस परिभाषा के आधार पर मोरा और महादेवी वर्मा की रचनाएँ भी योगमार्ग का सिद्धान्त बन जाएँगी और तुलसी की ‘विनयपत्रिका’ के सम्बन्ध में भी सोचना पड़ेगा। दरअसल भक्त अपने भगवान को चाहे भीतर देखे चाहे बाहर, उसके लोकरक्षक रूप पर उसका भरोसा बराबर बना रहता है। “भारतीय वाङ्मय में रहस्यभावना का वर्णन वेदों से लेकर अद्यतन हिन्दी साहित्य तक प्राप्त होता है, उसके प्रतिपादन के लिए जिन आध्यात्मिक या साहित्यिक तत्त्वों की आवश्यकता है उनकी उपेक्षा करके वर्तमानवादों की तुलना पर इसे हल्का-भारी ठहराना असंगत प्रतीत होता है।”²

शुक्ल जी काव्य के क्षेत्र में अव्यक्त और अज्ञात की अनुभूति से व्याकुल रहने वाले कवियों को धर्मसाधना में जाने की सलाह देते थे “वस्तुनः इस मत के प्रति उनका आग्रह इतना अधिक था कि ऐसे बड़े-बड़े सन्तों और भक्त कवियों का महत्त्व भी वे स्वीकार न कर सके, जिन्होंने सब प्रकार के साम्प्रदायिक मनोभावों पर कसकर आघात किया था और अपने परम उपास्य को उन्हीं मनोरागों के भीतर से शुक्ल जी ने प्रकृति के मोहक रहस्य को देखा था।”³

शुक्ल जी की आपत्ति केवल धर्मतत्त्व, संगीततत्त्व और लोकोत्तर तत्त्व तक ही सीमित नहीं, इन सूत्रों को परस्पर जोड़ते हुए वे इन्हें अपनी केन्द्रीय विचारधारा से जा मिलाते हैं। “शृङ्खला कितनी अटूट है—आनन्द की सिद्धावस्था जुड़ी है माधुर्य से, माधुर्य भाव की उपासना रहस्य से, रहस्य कबीर-नाथ-सिद्ध से।”⁴

अपने इसी दृष्टिकोण के चलते सिद्धों और रोगियों के रहस्यवाद के प्रति भी उनके भीतर कोई सहानुभूति नहीं मिलती, बल्कि विरोध का स्वर ही प्रधान है। जाहिर है कि सिद्धों, नाथों और कबीर आदि की रहस्यानुभूति के सामाजिक आधारों का विज्ञान-सम्मत विश्लेषण न दे सके। यह उनकी दृष्टिगत सीमा है।⁵

डा० रामविलास शर्मा को भी शुक्ल जी की रहस्यवाद के प्रति धारणा के बारे में कहना पड़ा कि “शुक्ल जी के सामने रहस्यवाद का वर्ग—आधार स्पष्ट न था, इसलिए उनका विरोध करने के लिए उन्हें अभारतीयता के कमजोर तर्कों का सहारा लेना पड़ा।”.....मध्यकालीन कवियों का रहस्यवाद—भारत और योरोप दोनों जगह—अक्सर जातिप्रथा, सामंती भेदभाव, ऊँच-नीच के विचार और पुरोहितों के विरोध के साथ जुड़ा हुआ था। मध्यकालीन रहस्यवाद का सम्बन्ध मुख्यतः किसानों, कारीगरों, अद्धतों आदि से था।”⁶

1 आ० शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ६

2 डा० विजयेन्द्र नाथक—आलोचक रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३८

3 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—आलोचक रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २५

4 अजित कुमार—दस्तावेज, लोकधर्म, हिन्दी आलोचना तथा आचार्य शुक्ल, पृ० १०६

5 रामनारायण शुक्ल, दस्तावेज—आचार्य शुक्ल और ‘दूसरी परम्परा की खोज’, पृ० १८४

6 डा० रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, पृ० १८८

गोरखनाथ के रहस्यवाद ने उस समय समाज में बड़ी क्रान्तिकारी भूमिका अदा की थी। उन्होंने मनुष्य में ब्रह्म के उर्जन करके मनुष्य मात्र की समानता की घोषणा की थी। धर्म, संप्रदाय, वर्ण, मतमतान्तर आदि के भेदों का विरोध करके मानवता की प्रतिष्ठा की थी। बोधे पोथीज्ञान की दुहाई देकर जनवादी आन्दोलन और विचारों को कुचलने से बचाने के लिए गोरखनाथ के रहस्यवाद की देन सामान्य नहीं है।

जहाँ तक गोरखनाथ की कविता में चमत्कारी भावों का प्रश्न है सो आस्तिक जनसमूह धर्म और अध्यात्म में चमत्कारी घटनाओं को आश्चर्यमयी श्रद्धा से स्वीकार करने के लिए तत्पर रहता है। चमत्कारिक घटनाओं का सहारा सगुण भक्तों ने भी लिया है। भगवान राम के द्वारा सिला से चरण स्पर्श करते ही उसकी अहल्या बनने की घटना पर, क्रोधपूर्वक धनुष पर बाण चढ़ाते ही समुद्र के द्वारा हाथ जोड़कर क्षमा-याचना करने पर, हनुमान द्वारा समुद्र-लंघन की घटना पर, संजीवनी बूटी लेने गये हनुमान द्वारा पर्वतखण्ड ही हाथ पर उठाकर आकाशमार्ग से रातोंरात लका में पहुँच जाने की घटना पर, मुरसा के मुँह में हनुमान के छोटे-बड़े होने की घटना पर, राम के बाण द्वारा मारीच के अनेक योजन दूर जा गिरने पर अगर श्रद्धालुजन विश्वास कर लेता है तो वह योगी और सन्तों के द्वारा किये गये परकाया प्रवेश नाड़ीशोधन, कुण्डलिनी जागरण आदि पर भी उतना ही विश्वास कर लेगा। जहाँ तक इन चमत्कारों से भोली-भाली जनता के ठगने का प्रश्न है सो उसी का विरोध तो गोरखनाथ ने किया है। चमत्कारों से ठगने की बात चाहे सगुण भक्तों की हो और चाहे निर्गुण सन्तों की। हठयोगियों की हो चाहे वज्रयानियों की। शाक्तों की हो चाहे कापालिकों की, गोरखनाथ ने किसी को भी नहीं बखशा है—

“पावड़ियाँ पग फिलसँ अवधू लोहै छीजंत काया।

नागा मूनी दूधाघारी एता जोग न पाया ॥

दूधाघारी पर धरि चित। नागा लकड़ी चाहै नित।

मोनों करै म्यंत्र की आस। बिन गुर गुदड़ी नहीं बेसास ॥¹

कुछ विद्वानों ने नाथ और संत-साहित्य का विरोध इसलिए भी किया है कि ये सब निम्न जाति के थे। शुक्ल जी लिखते हैं—“नाथसंप्रदाय भी जब फैला तब उसमें भी जनता की नीची और अशिक्षित श्रेणियों के बहुत से लोग आये जो शास्त्र-ज्ञान संपन्न न थे, जिनकी बुद्धि का विकास बहुत सामान्य कोटि का था।”²

वे आगे लिखते हैं—“वज्रयानी के अनुयायी अधिकतर नीची जाति के थे अतः जाति-पांति की व्यवस्था से उनका असन्तोष स्वाभाविक था। नाथसंप्रदाय में भी शास्त्रज्ञ विद्वान् नहीं आते थे।”³

हो सकता है कुछ विद्वानों को वर्णव्यवस्था में अधिक आस्था होने के कारण

1 गोरखबानी, सबदी, ३६, ४०

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २०

3 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६६

नाथ और सन्तों द्वारा आडम्बरों, अंधविश्वासों एवं कुरीतियों का विरोध इसलिए पसन्द न आया हो क्योंकि विरोध करने वाले नीची जाति के थे। शुक्ल जी भी वर्ण-व्यवस्था के पक्षपाती थे। लोकरक्षा तथा स्थिति। इसी प्रक्रिया के कारण शुक्ल जी सन्त कवियों को टीका करते हैं, उनका आक्रमण भारतीय वर्णव्यवस्था पर बड़ा कठोर था। तुलसी ने भी इसी प्रक्रिया को दृष्टिपथ में रखकर सन्त कवियों को फटकारा था।”¹

शुक्ल जी का यह सामन्तवादी दृष्टिकोण इस वक्तव्य में और भी स्पष्ट है—
“यदि उच्च वर्ग का कोई मनुष्य अपने धर्म से च्युत है, तो उसकी विगर्हणा, उसके शामन और उसके सुधार का भार राज्य के या उसके वर्ग के ऊपर है, निम्न वर्ग के लोगों पर नहीं। अतः लोकमर्यादा की दृष्टि से निम्न वर्ग के लोगों का धर्म यही है कि उस पर श्रद्धा का भाव रखें, न रख सकें तो कम से कम प्रकट करते रहें।”² और इसके समर्थन में तुलसी की अर्द्धाली उद्धृत करते हैं—

“पूजिय बिप्र सील-गुन-होना। सूद्र न गून-गन-ग्यान प्रबीना।”

यहाँ दो बातें विचारणीय हैं। एक तो यह है कि नाथ-सन्त निम्न जाति के थे इसलिए उन्होंने उच्च जाति का विरोध किया अथवा शास्त्रों का खण्डन किया इसलिए उनकी रचनाएँ महत्त्व नहीं रखती—ऐसा कहना पूर्वाग्रहपूर्ण है। दूसरी बात यह है कि यह कहना भी नितान्त भ्रामक है कि नाथों और सन्तों में सभी निम्न जाति के थे अथवा शास्त्रज्ञ न थे। गोरखनाथ, चौरंगीनाथ, गोपीचन्द, भर्तृहरि, अजयपाल, दत्त जी इत्यादि उच्च जाति के एवं शास्त्रज्ञ थे। गोरखनाथ, भर्तृहरि, दत्त जी ने संस्कृत में भी अनेक ग्रन्थ लिखे थे। हाँ इतना अवश्य है कि इन लोगों ने समाज के विभिन्न विभेदों की समाप्ति करके समाज में तिरस्कृत लोगों को भी गले लगाया था और इसी कारण उनके संप्रदाय में अथवा आगे चलकर सन्त संप्रदाय में निम्न जाति के लोगों की संख्या अधिक हो गयी थी। मुक्तिबोध की स्थापना तो यहाँ तक है कि “निचली जातियों के बीच से पैदा होनेवाले सन्तों के द्वारा निर्गुण भक्ति के रूपा में भक्ति आन्दोलन एक क्रान्तिकारी आन्दोलन के रूप में पैदा हुआ किन्तु आगे चलकर ऊँची जाति वालों ने इसकी शक्ति को पहचानकर इसे अपनाया और उसे अपने विचारों के अनुरूप ढालकर कृष्ण और राम की सगुण भक्ति का रूपा दे डाला, जिससे उसके क्रान्तिकारी दाँत उखाड़ लिए गये। इस प्रक्रिया में कृष्णभक्ति में तो कुछ क्रान्तिकारी तत्व बचे रह गये लेकिन रामभक्ति में जाकर तो रहे सहे तत्व भी गायब हो गये।”³

भारत के सामाजिक ढाँचे में सदैव से देखा गया है कि कुछ सामन्त शास्त्रज्ञ विद्वान्, पंडित कलाविद् अपने छल-बल से समाज को नियन्त्रित करके एक जाल जैसा निर्मित किये हुए, शेष जनसमुदाय को उसी में उलझाये हुए प्रतीत होते हैं। यही तथा-

1 शिवनाथ—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, उपक्रम, पृ० २८

2 आचार्य शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ४६

3 डा० नामवर सिंह—दूसरी परम्परा की ध्वज, पृ० ८४-८५ से उद्धृत

कथित शिष्ट वर्ग अपने को लोकेतर सिद्ध करके उसकी जीवन-यात्रा के लिए संस्कृति के मानक आदर्शों की स्थापना में लगा हुआ अपने कौशल से बाध्य करता रहा है कि वे उनके वैचारिक आग्रहों के अनुरूप जीवन-यापन करें। अज्ञ, असंस्कृत, सामान्य, निरीह, लोक-समुदाय अपने अनेक विश्वासों को व्यावहारिक जीवन-संगति के साथ संजोये हुए उन आदर्शों की लीक पर चलता रहता है। लोक-यात्रा के लिए निर्मित इन सीढ़ियों को तोड़ने के लिए समय-समय पर अनेक विचारक मनीषियों का जन्म हुआ है। कृष्ण, महावीर, गौतम बुद्ध, गोरखनाथ जैसे साधक-सिद्ध इसलिए अवतरित होते हैं। इनका अवतरण रूढ़ियों से ग्रस्त-व्रस्त लोक-जीवन को उनसे मुक्त करके यथार्थ के घरातल पर उन्हें प्रतिष्ठित करने के लिए होता है।¹

समीक्षात्मक प्रतिमानों को लागू करते समय किसी भी समीक्षक के लिए विशेष रूप से साहित्य-लेखक के लिए यह आवश्यक है कि आलोचनात्मक ईमानदारी निभाने के लिए दृष्टिगत सीमा के साथ-साथ वह ऐतिहासिक सीमाओं का भी ध्यान रखे। समाज की छाया तत्कालीन साहित्य पर अवश्य पड़ती है। समाज की परिस्थितियों को समझकर लोकमंगल के लिए संघर्ष करना ही साहित्यकार का धर्म है। गोरखनाथ में यह संघर्ष निहित है। आचार्य शुक्ल जैसे कतिपय विद्वान् गोरखनाथ के वर्ग-चरित्र और तदनुगुण सामाजिक सम्बन्धों में इनके पक्ष के ठोस मूल्यांकन में निश्चित रूप से असफल रहे हैं। “लोक-जीवन के लिए उनका सबसे बड़ा योगदान यही है कि उन्होंने दिग्भ्रमित के लिए ब्रह्मानुभूति का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित किया। जिसे शास्त्रज्ञ अज्ञेय कहते हैं; मन, वाणी, कर्म से अगोचर बनाते हैं, उस ब्रह्म को चाक्षुष विषय बनाकर का उनका प्रयास अपने में अद्भुत है। वे नास्तिक नहीं हैं, अवैष्णव नहीं हैं। वेद-विरोधी नहीं हैं, वे तान्त्रिक भी नहीं हैं और आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल द्वारा कथित अपने इन्द्रजालिक कार्यों से जन-मानस को दिग्भ्रमित करने वाले भी वे नहीं हैं। वे भक्ति को भगाने वाले भी नहीं हैं, वे ब्रह्म के विलक्षण आस्वाद के भोक्ता साधक हैं। साधना से ब्रह्मानुभव को, उप विलक्षण आनन्दास्वाद को सामान्य लोकमानस का विषय बना देना ही उनके जीवन एवं साधना का चरम लक्ष्य था।”²

अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि खड़ीबोली साहित्यिक हिन्दी की उत्पत्ति एवं विकास-परम्परा को बनाये रखने की दृष्टि से; अन्धविश्वासों कुरीतियों, पाखण्डों एवं शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की दृष्टि से; तत्कालीन धर्मों में फैले हुए अनाचार एवं पापाचार का पर्दा फाश करने की दृष्टि से; साम्प्रदायिक भावना को दूर कर हिन्दू-मुसलमानों में समन्वयात्मक भावना पैदा करने की दृष्टि से; समाज में तिरस्कृत एवं निम्न जाति के लोगों को भी धर्म एवं समाज में सम्मानपूर्ण

1 डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह—योगवाणी, मार्च १९५४ ई० में संकलित लेख गोरखसाहित्य और लोकहित, पृ० ४२

2 डा० योगेन्द्र प्रताप सिंह, योगवाणी, अप्रैल १९५४ में संग्रहीत लेख ‘गोरखसाहित्य और लोकहित’ पृ० २०

स्थान दिलाने की दृष्टि से; भक्ति एवं आस्था का रास्ता प्रशस्त कर जाने की दृष्टि से; लोकभाषा, लोक-जीवन और लोकसंस्कृति से जुड़े होने की दृष्टि से; गोरखनाथ के साहित्य को हिन्दी-साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान देना ही पड़ेगा। इन उपलब्धियों के कारण वे आज भी प्रासंगिक हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए उनकी देन को ससम्मान स्वीकार किया जाना चाहिए।

७. विशिष्ट हिन्दी रचनाएं

वसती न सुन्यं सुन्यं न वसती अगम अगोचर ऐसा ।
 गगन-सिंघर महि बालक बोलै ताका नाँव ध्रुवहुगे कैसा ॥ १ ॥
 अदेषि देषिवा देषि विचारिवा अदिमिटि राषिवा चीना ।
 पाताल की गंगा ब्रह्मांड चढ़ाईवा तहाँ विमल-बिमल जल पीया ॥ २ ॥
 इहाँ ही आछै इहाँ ही अलोप । इहाँ ही रचिलै तीन बिलोक ।
 आछै संगै रहै जूवा । ता कारणि अनंत सिद्धा जागेस्वर हूवा ॥ ३ ॥
 वेद कतेब न पाणीं बाणीं । सब ढंकी तलि आणीं ।
 गगनि सिंघर महि सबद प्रकास्या । तहं बूझै अलस बिनाणीं ॥ ४ ॥
 वेदे न सास्त्रे कतेबे न कुराणे पुस्तके न बंछ्या जाई ।
 ते पद जानां बिरला जोगी और दुनी सब धंधे लाई ॥ ५ ॥
 हसिवा पेलिवा रहिवा रंग, काम क्रोध न करिवा संग ।
 हसिवा पेलिवा गाईवा गीत, दिढ करि राषि आपनां चीत ॥ ६ ॥
 हसिवा पेलिवा धरिवा ध्यान । अहनिमि कथिबा ब्रह्म गियांन ।
 हसै पेलै न करै मन भंग । ते निहचल सदा नाथ कै संग ॥ ७ ॥
 सारमसारं गहर गंभीर गगन उछलिया नादं ।
 मानिक पाया फेरि लुंकाया झूठा वाद-विवादं ॥ ८ ॥
 कोई वादी कोई विवादी जोगी कौं वाद न करनां ।
 अठसठि तीरथ समंदि समावै यूँ जोगी को गुरुमुषि जरनां ॥ ९ ॥
 अह निमि मन लै उनमन रहै, गम की छाँड़ि अगम की कहै ।
 छाड़ै आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूँ ताका दास ॥ १० ॥
 अजपा जपै सुनि मन धरै पांचौं इंद्रो निग्रह करै ।
 ब्रह्म अर्गनि मैं होमै काया, तास महादेव बंदै पाया ॥ ११ ॥
 धन जोवन की करै न आस, चित्त न राखै कामनि पास ।
 नाद विद जाकै घटि जरै, ताकी सेवा पारबती करै ॥ १२ ॥
 बाले जोवनि जे नर जती, काल दुकालां ते नर सती ।
 फुरतै भोजन अलप अहारी, नाथ कहै सो काया हमारी ॥ १३ ॥
 सबदहि ताला सबदहि कूँची, सबदहि सबद जगाया ।
 सबदहि सबद सूँ परचा हुआ, सबदहि सबद समाया ॥ १४ ॥

गगन मंडल में ऊँघा कूवा तहां अमृत का वासा ।
 सगुरा होइ मु भरि भरि पोवै निगुरा जाइ पिघासा ॥ १५ ॥
 बास सहेता सत्र जग बास्या, स्वाद सहेता मोठा ।
 साच कहूँ तो सतगुर मानै रूप सहेता दोठा ॥ १६ ॥
 हवकि न बोलिबा, ठवकि न चालिबा धीरै धारिबा पावै ।
 गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरप रावै ॥ १७ ॥
 नाथ कहै तुप मु राहु रे अवधू दिढ करि रापहु चोया ।
 काम क्रोध अहंकार निबारी तो सबे दिसंतर कीया ॥ १८ ॥
 स्वामी बन षंडि जाउं तो पुध्या व्यापे नग्री जाउं तो माया ।
 भरि भरि षाउं त बिंद बियापे क्यों सोभति जल व्यंद की काया ॥ १९ ॥
 थोड़ा बालें थोड़ा षाइ तिस घटि पवनां रहै समाइ ।
 गगन-मंडल में अनहद बाजै प्यडं पड़ै तो सतगुर लाजै ॥ २० ॥
 अवधू अहार तोड़ी निद्रा मोड़ी कबहु न होइगा रोगी ।
 छठ छ मास काया पलटिबा ज्यूँ काँ को बिरला बिजोगी ॥ २१ ॥
 अवधू निद्रा कै घरि काल जंजाल अहार कै घरि चोर ।
 मैथून कै घरि जुरा गंरासै अरध-उरध लै जोर ॥ २२ ॥
 घटि घटि गोरप बाही ब्यारी, जो निपजै सो होइ हमारी ।
 घटि घटि गोरप कहै कहांणीं, काचें भांडे रहे न पांणीं ॥ २३ ॥
 घटि घटि गोरप फिरै निरुता को घट जागे को घट सूता ।
 घटि घटि गोरप घटि घटि मीन, आपा परचें गुरु मुषि चीन्ह ॥ २४ ॥
 पाबड़ियां पग फिलसँ अवधू लोहै छीजंत काया ।
 नागा मूनि दूधाधारी ऐता जोग न पाया ॥ २५ ॥
 दूधाधारी पर घरि चित, नागा लकड़ो चाहै नित ।
 मानी करै म्यंत्र की आस, बिन गुरु गुदड़ी नहीं बेसास ॥ २६ ॥
 धूतारा ते जे धूतै आप, भिष्या भोजन नहीं संताप ।
 अहूठा पटण में भिष्या करै, ते अवधू सिवपुरो संचरै ॥ २७ ॥
 गिरही सो जो गिरहै काया, अभि अंतरि की त्याग माया ।
 सहज सोल का धरै सरीर, सो गिरही गंगा का नीर ॥ २८ ॥
 मनवां जोगी माया मढ़ी, पंच तत ले कंथा गढी ।
 षिमा षड़ासण ग्यान अधारी, सुमति पावड़ी डंड बिचारी ॥ २९ ॥
 यहु मन सकती यहु मन सोव, यहु मन पांजु तत का जीव ।
 यहु मन ले जे उनमन रहै, तो तीनि लोक की बातां कहै ॥ ३० ॥
 अभावस कै घरि झिलमिल चंदा, पूनिम कै घरि सूर ।
 नाद कै घरि व्यंद गरजै, बाजंत अनहद तूर ॥ ३१ ॥
 केता आवै केता जाई, केता मार्ग केता पाई ।

केता रूप विरष तलि रहै, गोरष अनभै कासों कहै ॥३२॥
 मन में रहिणां भेद न कहिणां, बोलिबा अमृत बांणी ।
 आगिला अगनी होइबा अवधू, तो आपण होइबा पांणी ॥३३॥
 नग्री सोभंत बहु जल मूल बिरषा, सभा सोभत पंडिता पुरषा ।
 राजा सोभंत दल प्रवांणी, यूं सिधा सोभंत सुधि बुधि की बांणी ॥३४॥
 उत्तर खंड जाइबा सुनिफल षाइबा, ब्रह्म अगनि पहिरिवा चीर ।
 नीभर भरण अमृत पीया यूं मन हुआ घोर ॥३५॥
 हिन्दू ध्याने देहुरा मुसलमान मसीत ।
 जोगी ध्याने परमपद जहां देहुरा न मसीत ॥३६॥
 हिंदू आपे राम को मुसलमान षुदाइ ।
 जोगी आपे अलष कौं तहां राम अछे न षुदाइ ॥३७॥
 प्यडे हांड तो मरे न कोई, ब्रह्मंडे देष सब लोई ।
 पण्ड ब्रह्मंड निरतर बास, भणंत गोरष मछ्यंद्र का दास ॥३८॥
 गोरष कहै सुणहरे अवधू जग में ऐस रहणां ।
 आपे देषिवा कानै सुणिबा मुख थै कछू न कहणां ॥३९॥
 नाथ कहै तुम आपा राषी, हट करि बाद न करणां ।
 यहू जुग है कांटे की बाड़ी, देषि देषि पग घरणां ॥४०॥
 डंडी सो जे आप डंडे, आवत जाती मनसा षंडे ।
 पंचों इद्रो का मरदं मान, सो डंडी कहिये तत्त समान ॥४१॥
 आसण बंसिबा पवन निरोधिबा, थान मान सब धंधा ।
 बरत गोरषनाथ आतमां विचारंत, ज्युं जल दोसी चंदा ॥४२॥
 सबद एक पुछिवा कहौ गुरु दयाल, बिरिधि थै क्यूं करि होइबा बाल ।
 फूला फूल कली क्यूं होई, पूछे कहै तो गोरष सोई ॥४३॥
 सुणौ हा देवल तजौ जंमाल, अमिय पीवत तब होइबा बाल ।
 ब्रह्म अगनि सीवत मूल फुल्यो फून कली फिरि फूल ॥४४॥
 अवधू काया हमारो नालि बोलिये, दारू बोलिये पवन ।
 अगनि पलाता अनहद गरज ब्यंद गोला उड़ि गगन ॥४५॥
 काजी मुलां कुराण सगाया, ब्रह्म लगाया बेद ।
 कापड़ा संन्यासी तीरथ भ्रमाया न पाया नृबाण पद का भेद ॥४६॥
 देवल जात्रा सुनि जात्रा, तीरथ जात्रा पांणी ।
 अतीत जात्रा सुफल जात्रा, बोल अमृत बांणी ॥४७॥
 संन्यासी सोई करे सब नास, गगन मंडल महि मांडे आस ।
 अनहद सूं मन उनमन रहै, सो संन्यासी अगम की कहै ॥४८॥
 सुणि गुणवंतां सुनि बुधिवंता, अनंत सिधां की बांणी ।
 सोस नवावत सत गुरु मित्रिया, जागव रैणि बिहांणी ॥४९॥

बड़ बड़ कूले मोटे मोटे पेट, नहीं रं पूता गुरु सों भेट ।
 पड़ पड़ काया निरमल नेत, भई रे पूता गुरु सों भेट ॥ ५० ॥
 कहणि सुहेली रहणि दुहेली, कहणि रहणि बिन थोथी ।
 पढ़्या गुण्या मुवा बिलाई पाया, पंडित के हाथि रह गई पोथी ॥ ५१ ॥
 आसण दिढ़ अहार दिढ़ जे न्यद्रा दिढ़ होई ।
 गोरष कहै भूणों रं पूता मरं न बूढ़ा होई ॥ ५२ ॥
 पंडित ग्यान मरो वया भूझि, औरं लेहु परमपद बूझि ।
 आसन पवन उपद्रव करे, निसिदिन आरम्भ पचि पाच मरे ॥ ५३ ॥
 पांये भी मरिये अणपांये भी मारये, गोरष कहै पूता संजंमि हीं तरिये ।
 मधि निरंतर कीजे बास, निहचल मनुवा थिर होइ सास ॥ ५४ ॥
 अवधू मन चंगा तो कठौती ही गगा । बांध्या मेलहा तो जगत्र चेला ।
 बदत गोरष सति सरूप । तत बिचारं ते रेष न रूप ॥ ५५ ॥
 सोषि साषि विसाह्या बुरा, सुपिनं मे घन पाया पड़ा ।
 परषि परषि ले आयै घरा, नाथ कहै पूता पोटा न परा ॥ ५६ ॥
 ग्यान सरीषा गुरु न मिलिया चित्त सरीषा चेला ।
 मन सरीषा मेलू न मिलिया तीर्थं गोरष फिरे अकेसा ॥ ५७ ॥

पद

(१)

बोल्या गोरष घर जोई, ये तत बूझै बिस्ला कोई, मेरे ग्यानीं ।
 जोज्यो जोज्यो रे जहूँ बा बन जोज्या, तत राख्यो तरियाली ।
 आषण इन्द्री जेणी आप बसि राख्यो तेणे पाया सर्व निरंतर, मेरे ग्यानीं ।
 मन मांहे तेणे तन तार्यां मन बिसवासें मिलणां ।
 मन में कुम्भ कलस रस भरिया, तेणे मनवें अलप लाषाया, मेरे ग्यानीं ।
 पं र जोई ने एदा पुरिष पधार्या, पुरिष नी पारिषा पाई ।
 पुरिष मिलि पुरिष रस राख्या, पुरिष पुरिष निपाया, सेरे ग्यानी ।
 जिहि घरिचंद सूर नहि, ऊगै, तिहि घरि होसा उजियारा ।
 तिहां जे आसण पूरो तो सहज का भरो पियाला, मेरे ग्यानीं ।
 मन मांहिला होरा बीधा सो सोधीने लोणां, सोपांणां सो पीवणां ।
 मछिद्र प्रसादें जती गोरष बोल्या, बिमल रस जोई जोई नै मिलणां, मेरे
 ग्यानीं ॥ १ ॥

(२)

सोनां ल्यो रस सोनां ल्यो, मेरी जाति सुनारी रे ।
 घंमणि घमीं रस जाषणि जांम्यां,
 तब गगन महारस मिलिया रे ॥
 आपें सोनां नै आप सुनारी, मूल चक्र अंगोठा ।

अहरणि नाद नै ब्यंद हयोडा, घटिस्सूँ गगन बईठा ।
 अषै आरण नै विषै कोइला, सहज फक, दो नलियाँ ।
 चंद सूर दोऊ समि करि राण्या आपं आप जु मिलिया ।
 रीत का काम मासे की चोरी, रती में मासा चोरै ।
 मासा चोरि रहै मासे में, इहि विधि गरथै जोरै ।
 अरधे सोनां, उरधे सोनां, मध्ये सोनम् सोनां ।
 तीनि सुन्यं की रहनीं जानै, ता घटि पाप न पुंनं ।
 उनमनि डांडी मन, तराजू, पवन कीया गदियांनां ।
 आपं गोरखनाथ जोषण बंठा, तब सोनां सहज समानां ॥ २ ॥

(३)

गुरदेव स्यंभ देव सरीर भीतरिये ।
 आत्मां उत्तिम देव, ताही की न जाणौं सेव ।
 आन देव पूजि पूजि इमहों मरिये ॥
 नवे द्वार नवे नाथ, तूवेणीं जगन्नाथ, दसवें द्वारि केदारं ।
 जोम जुगति सार ती भी तिरिये पारं ।
 कथंत गोरखनाथ विचारं ॥ ३ ॥

(४)

मनसा मेरी ब्यौपार बांधी, पवन पुरषि उत्पनां ।
 जाग्यो जोगी, अध्यात्म लागी, काया पाटण में जानां
 इकबंस सहस षटसां आदू, पवन परषि जप माली ।
 इला प्यंगुला सुषमन नारी, अह्निसि बहै प्रनाली ।
 षटसां षोडि कवल दल धारा, तहां बसी ब्रह्मचारी ।
 हस पवन ज फुलन पैठा, नौसै नदी पनिहारी ।
 गगा तीर मतारा अवधू, फिरि फिरि बणिजां कीजै ।
 अरध बहन्ता उरधै लीजे, रवि सस मेला कीजै ।
 चंद सूर दोऊ गगन बिल्धा, भईला घोर अंधारं ।
 पंच बाहक जय न्यद्रा पौढ़्या, पगढ़्या पोलि पगारं ।
 काया कथा, मन जोगोटा, सतगुर मुझ लापाया ।
 भणत गोरखनाथ रुड़ा राखी नगरी चार मलाया ॥ ४ ॥

(५)

अवधू बोल्या तत्त बिचारी, पृथ्वी में बकबाली ।
 अष्टकुल परवत जल बिन तिरिया, अदबुद अचंभा भारी ।
 मन पवन अगम उजियाला रवि ससि तार गयाई ।
 तीनि राज त्रिविधि कुल नांहो, चारि जुग सिधि बाई ।

पांच सहस्र मै षट अपूठा, सप्त दीप अष्ट नारी ।
नव पड पृथी इकबीस मांही, एकादसि एक तारी ।
द्वादसी त्रिकुटी यला पिगुला, चवदसि चित्त मिलाई ।
पौडस कवल दल सोल बतीसी, जुरा मरन भौ गमाई ।
दसवै द्वार निरंजन उनमन बासा, सबदे उलटि समानां ।
भणंत गोरखनाथ मछोद्रे नां पूता अबिचल थोर रहांना ॥ ५ ॥

(६)

रमि रमिता सौ गहि चोगानं, काहे भूलत हो अभिमानं ।
घरन गगन बिचि नहीं अंतरा, केवल मुक्ति मंदानं ॥
एक मै अनंत अनंत मै एकै, एकै अनंत उपाया ।
अंतरि एक सी परचा हूवा, तब अनंत एक मै समाया ।
अहरणि नाद नै व्यंद हथौड़ा, रवि ससि पालां पवनं ।
मूल चापि डिड बासणि बैठा, तब मिटि गया आवागवनं ।
सहज पलांन पवन करि घोड़ा, ली लगांम चित्त चबका ।
चेतनि असबार ग्यानं गुरु करि, ओर तजौ सब ढबका ।
तिल कै नाकं तूभवन सांछया, कीया भात्र विधाता ।
सो तो फिर आपण हीं हूवा, जाकौं दूढ़ण जाता ।
आस्ति कहूं तो कोइ न पतीजे, बिन आस्ति क्यूं सीधा ।
गोरख बाली सुणौ मछिद्र होरे हीरा बीधा ॥ ६ ॥

(७)

तत बणिजील्यो तत बणिजील्यो, ज्यूं मोरा मन पतियाई ।
सहज गोरखनाथ बणिज कराई, पच बलद तो गवाई ।
सहज सुमावै बाषर ल्याई, मोरे मन उड़ियांनो आई ।
सुरहट घाट अम्हे बणिजारा, सुनि हमारा पसारा ।
लेण न जाणौं देण न जाणौं, एद्दा बणिज हमारा ।
मणंत गोरखनाथ मछिद्र का पूता, एद्दा बणिज ना अरथी ।
करणीं अपणीं पार उतरणां, वचन लेणां साथी ॥ ७ ॥

(८)

मांहरा रे बीरागी जोगी, अहनिस्ति जोगी जोगणि संग न छाई ।
मानसरोवर मनसा भूलति आवै, गगन मंडल मठ मांडे रे ॥
कौण अस्थानिकि तोरा सासू नै सुसरा, कौण अस्थानिकि तोरा बासा ।
कौण अस्थानिक तू नै जोगणि भेंटी, कहां मिल्या घर बासा ।
नाभ अस्थानिक मोरा सासू नै सुसरा, ब्रह्म अस्थानिक मोरा बासा ।
इला प्यंगुला जोगण भेंटी, सुपमन मिल्या घर बासा ।

काम क्राध वाली चूनां कीधा, कंदप कोया कपूरं ।
मन पवन दो काथ सुपारा उनमनी तिलक सींदूर ।
ग्यान गुरु दोऊ तुबा अम्हारे, मनसा चेतनि डांडो ।
उनमनी ताती बाजन लागी, यहो विधि तृष्ण पाडीं ।
एण सतगुरि अम्हे परणांब्या अबला बाल कुवारी ।
मछिद्र प्रसाद श्री गोरष बोल्या, माया नां भौ टारी ॥८॥

(९)

तत वेली लो तत वेली लो अवधू गोरषनाथ जांणीं ।
डाल न मूल पटुप नहीं छाया बिराघि करै बिन पांणीं ।
काया कुंजर तेरी बाडी अवधू सतगुर बेलि रुपांणीं ।
पुरिष पांणती करै धनियांणीं दीकें बालि घरि जांणी ।
मूल एढा जेढा ससिहर अवधू पान एढा जेढा भाणं ।
फल एढा जेढा पूनिम चंदा जोउ-जोउ जाण सुजांणं ।
वेलडियां दां लागी अवधू गगन पट्टती भाला ।
जिम जिम वेलो दाभुवा लागी तब मेल्लै कूपल डाला ।
काटत वेली कूपल मेल्लै सींचतडां कुमलाये ।
मछिद्र प्रसाद जती गोरष बोल्या नित नवेलडी चाये ॥९॥

(१०)

बूझी पंडित ब्रह्म गियांन गोरष बोले जाण सुजांन ।
बीज बिन निसपती मूल बिन बिरषा पान फूल बिन फलिया ।
बांभ केरा बालूडा प्यंगुल तरवरि च दया ।
गगन बिना चंद्रम वाह्मांड बिन सूरं भूभ बिन रचिया थानं ।
ए परमारथ जे नर जांणें ता घटि परम गियांन ।
सुनि न अस्थूल ल्यांग नहीं पूजा घुनि बिन अनहद गाजै ।
बाडी बिन पटुप पटुप बिन साइर, घुनि पवन बिन भुंगा छाजै ।
राह बिन गिलिया अगनि बिन जलिया अम्बर बिन जलहर भरिया ।
यहु परमारथ कहौ हो पंडिता, रुग जूग स्याम अथरवन पडिया ।
ससंमवेद सोहं प्रकासं धरती गगन न आदं ।
गंग जमुन बिच षेलो गोरष, गुह मछिद्र प्रसादं ॥१०॥

(११)

बदत गोरषनाथ दसवीं द्वारी सुगं नै केदार चढिया ।
इकबीस ब्रह्मण्ड ना सिषर ऊपरि ससमवेद ऊचरिया ।
द्वादस दल शीतरि रवि सक्ती ससि षोडस सिव पांनं ।
मूल सहस्रर जीव सींच घरि उनमनी अचल धियापनं ।
नाद अनाहद गरजै गेणं, पछिम ऊग्या भाणं ।

दक्षिण डीवी उत्तर नाचै, पाताल पूरव तांण ।
चंद सूर नौ मुद्रा कोन्हो, धरणि भस्म जल मेला ।
नादा व्यंदो सींगी अकासी, अलष गुरु, नां चेला ।
तीन सौ साठि थैगली कंथी इकबीस सहंस छसी घागं ।
बहतुरि नाड़ी सुई नवासी, बावन बीर सीया लागं ।
इली सोधि घरि प्यंगुली पूरी, सुषमनी चढ़ असनानं ।
मछिद्र प्रसादं जती गोरष बोल्या, निरंजन सिधि नै थानं ॥११॥

(१२)

गोरष लो गोपालं लो गगन गाइ दुहि पीवै लो ।
महो बिरोलि अंमी रस पीजे, अनभी लागा जो जै लो ।
ममिता बिनां माइ मुइ, पिता बिनां मूवा छोरुलो ।
जाति बिहूनां लाल ग्वालिया, अहनिस चारै गोरु लो ।
अनहद सबदै संष ब्लाया, काल महादल बलिया लो ।
काया कै अंतरि गगन मंडल मै, सहजे स्वामी मिलिया लो ।
ऐसी गणवती घर बारि हमारै, गगन मंडल मै लाधी लो ।
इहि लागि रह्या परिवार हमारा, लेहि निरंतरि बांधी लो ।
कानां पूछां सींग बिबरजित बर्न बिबरजित गाई लो ।
मछिद्र प्रसादं जती गोरष बोल्या, तहां रहै ल्यो साई लो ॥१२॥

(१३)

अवधू ऐसा ग्यान बिचारो, ता मै भिलमिलि जोति उजाली ।
जहां जोग तहां रोग न व्यापै, ऐसा परपि गुर करनां ।
तन मन सुं जे परचा नाहीं, तो काहे को पचि मरना ।
काल न मिट्या जंजाल न छूट्या, तप कशि हूवा न सूर ।
कुल का नास करै मति कोई, जो गुर मिले न पूरा ।
सप्त घात का काया पीजरा, ता मांहि जुगति बिन सूबा ।
सतगुरु मिली तो ऊबरै बाबू, नहीं तो परलो हूवा ।
कंद्रप रूप काया का मंडप, अंबिरथा कांइ उलींचो ।
गोरष कहै सुणीं रे भौदू, अरंड अंमी कत सीचीं ॥१३॥

(१४)

आऊं नहीं जाऊं निरंजन नाथ को दुराई ।
प्यं ॥ ब्रह्मांड षोजंता, अम्हे सब सिधि पाई ।
काया गढ़ भीतरि नव लष पाई ।
दसवै द्वारि अवधू ताली साई ।
काया गढ़ भीतरि देव देहुरा कासी ।
सहज सुमाइ मिले अबिनासी ।

वदंत गोरपनाथ सुणी नर लोई ।
काया गढ़ जोतैगा बिरला कोई ॥ १४ ॥

(१५)

अवधू ऐसा नग्र हमारा तिहां जोबो ऊजू द्वारं ।
अरध उरध वजार मड्या है, गोरष कहै बिचार ।
हरि प्राण पातिसाह साह बिचार काजी ।
पच तत ते उजहदार मन पवन दोऊ हस्ती घोड़ा गिनान ते अपै भंडारं ।
काया हमारं सहर बोलिये मन बोलिये हुजदारं ।
चेतनि पहरं कोटवाल बोलिये, तो चोर न भंक द्वारं ।
तीन से साठि चोरा गढ़ रचीले सोलह षणिले पाई ।
नव दरवाजा प्रगट दीसै, दसवां लष्यां न जाई ।
अठारह भार कोट कठ नरा लाइले, बहतर कोठड़ी निपाई ।
नव सुत्र ऊपरं जंत्र फिरं, तब काया गढ़ लिया न जाई ।
अनहद घड़ो धड़ियाल बजाइले परम जोति दुइ दीपक लाई ।
काम क्रोध दोइ गरदनि मारिले ऐसी अदली पातिसाही, बागै आदम चलाई
तहां सत्य बोबो संनौष साहजादा, पिमा भगति द्वेहाई ।
आदिनाथ नाती मछिद्रनाथ पूता, काया नगरी गोरष बसाई ॥ १५ ॥

(१६)

सति सति भाषंत श्रो गोरष जोगी, अमे तो रहिबा रंगे ।
अलेष पुरसि जिनि गुर मुषि चीन्ह यां, रहिबा तिस कं सगे ।
सत जुग मधे जुग एक रचीला, बिसहर एक निपाया ।
ग्यान विहूणां गण गंवध अवधू, सबहीं डसि डसि पाया ।
त्रेता जुग मधे जुगदोइ रचीला राम रमाइणा कीन्हां
नर बंदर सब लड़ि लड़ि मूये, तिन भी ग्यान न चीन्हां ।
द्वापर जुग मधे जुग तीन रचीले, बहु डम्बर बहु भार ।
करौं पांडौ लड़ि लड़ि मूये, नारद कीया संघारं ।
कालजुग मधे जुग चारि रचीला, चूकिला चार बिचारं ।
घरं घरि ददी घरि घरि बादी, घरि घरि कथण हारं ।
मछिद्र प्रसादे जतो गोरष बोल्या कोई बिरला पार उतरिया ॥ १६ ॥

(१७)

ऐसा जाप जपौ मन लाई, सोहं सोहं अबपा गाई ।
आसण दिढ करि घरी धियान, अहंनिसि सुमिरो ब्रह्म गियानं ।
जाग्रत न्यंद्रा सुलप अहारं, काम क्रोध अहंकार निवारं ।
नासा अग्र निजु ज्यो बाई इड़ा प्यंगुला मधि समाइ ।
छसे सहस इकीसों जाप, अनहद उपजै आपहि आप ।

बंरु नालि में ऊगै मूर, रोम रोम धुनि बाजै नूर ।
उलटै कमल संहंसदल वास, भ्रमर गुफा महि जोति प्रकास ।
सुणि मथुरा सिव गोरष कहै, परम तत ते साधू लहै ॥१७॥

(१८)

कैसें बोलौ पंडिता देव कौनै ठाई,
निज तत निशारतां अम्हें तुम्हें नाहीं ।
पषाणची देवली पषाण चा देव,
पषाण पूजिला कैसें फटीला सनेह ।
सरजीव तेड़िया निरजीवी पूजिला,
पाप ची करणी कैसें दूतर तिरीला ।
तीरथि तीरथि सनांन करीला,
बाहर धोये कैसें भीतरि भेदीला ।
आदिनाथ नाती मछीन्द्रनाथ पूता,
निज तत निहारै गोरष अवधूता ॥१८॥

(१९)

पंडित जण जण बाद न होई, अणवोल्या अवधू सोई ।
पत्रे ब्रह्मा कली बिसना, फल मधे रुद्रम् देवा ।
तीनि देव का छेद किया, तुम्हें करहु कौन की सेवा ।
येकडंडो दुडंडी त्रियडंडी भगवान् हूवा ।
बिघ्न को तिन पार न पायौ, तीरथां भ्रमि भ्रमि मूवा ।
येक काल मुहां जटा धारी, ल्यंग उपासिका हूवा ।
महादेव को तिन पार न पायौ, राप रोलि रोलि मूवा ।
च रिं महाधर बारह चेला, येकंकारीं हूवा ।
कायम को तिन पार न पायौ, जोति बालि बालि मूवा ।
चौदसियांनै पुनमिया, जैन व्रतधारी हूवा ।
बरहंत को तिन पार न पायौ, केस लौचि लौचि मूवा ।
येक मुलानम् दौई कुरानम्, ग्यारह पुरपाणी हूवा ।
अलह को तिन पार न पायौ, बंग देइ देइ मूवा ।
नौ नाथ नै चौरासी सिद्धा, आसणधारी हूवा ।
जोग की तिन पार न पायौ, बन पंडां भ्रमि भ्रमि मूवा ।
पंच तत्र कीं काया विनसी राषि न सक्था कोई ।
काल दवन जब ग्यांन प्रकास्या, वदंत गोरष सोई ॥१९॥

(२०)

भणंत गोरषनाथ काया गढ़ लेवा ।
काया गढ़ लेवा जुगे जुगी जीवा ।

काया गढ़ भीतरि नी-अप पाई, जंत्र फिरै गढ़ लिया न जाई ।
 ऊँचे नीचे परवत झिल्लमिलि पाई, कोठड़ी का पांणी पूरण गढ़ जाई ।
 इहां नहों उहां नहों त्रिकुटी मंझारी, सहज सुनि मैं रहनि हमारी ।
 आदिनाथ नाती मछिंद्रनाथ पूता, कायागढ़ जीतिले गोरष अवधूता ॥२०॥

(२१)

कासौं झूझीं अवध राई, विषय न दोसै कोई ।

जासौं अब झूझीं रे आत्मा राम सोई ।

आपण हीं मछ कछ आपण हीं जाल,

आपण हीं धीवर आपण हीं काल ।

आपण हीं स्यंघ वाघ आपण हीं गाइ ।

आपण हीं मारीला, आपण हीं पाइ ।

आपण हीं टाटीं फड़िका, आपण ही बंध,

आपण हीं मृतग, आपण हीं कंध ।

न्हाइवे कौं तीरथ न पूजिबे कौं देव,

भणंत गोरषनाथ अलष अभेव ॥२१॥

(२२)

मेरा गुरु तीनि छंद गावै,

ना जाणौं गुर कहां गैला, मुझ नींदड़ी न आवै ।

कुम्हरा कै घरि हांडी आछै, अहोरा कै घर सांडी ।

बमना कै घरि रांडी आछै, रांडी सांडी हांडी ।

राजा कै घरि सेल आछै, जंगल मध्ये बेल ।

तेली कै घरि तेल आछै, तेल बेल सेल ।

अहीर कै घरि महकी आछै, देवल मध्ये ल्यंग ।

हाटी मध्ये हींग आछै, हींग ल्यंग स्यंग ।

एकै सुत्रै नाना वणियां, बहु भांति दिखलावै ।

भणंत गोरषि त्रिगुणीं माया सतगुरु होइ लषावै ॥२२॥

(२३)

बांधी बांधी बछरा पीओ पीर ।

कलि अजरावर होय सरीर ।

आकास की धेन बछा जाया ।

ता धेन कै पूछ न पाया ।

वारह बछा सोलह गाई ।

धैनु दुहावत रैन बिहाई ।

अचरा न चरै धेन कचरा न पाई ।

पंच ग्वालियां को मारण धाई ।

याही घेन का दूध जू मीठा ।

पीवै गोरखनाथ गगन बईठा ॥ २३ ॥

(२४)

आवै संगै जाइ अकेला । ताथै गोरख राम रमेला ।

काया हंस संगि ह्वै आवा । जाता जोगी किनहूँ न पावा ।

जीवत जग मैं भूवां मसाणं । प्राण पुरिस कीया पयाणं ।

जामण मरणां बहुरि विओगी । ताथै गोरख भैला जोगी ॥ २४ ॥

(२५)

चेला सब सूता नाथ मतगुर जागै । दसवै द्वारि अवधू मधुकरी मांगै ।

सहजै पपरा सुभमनि डंडा । पांच संगती मिलि पेलै नव पंडा ।

गंग जमन मधि आसण वालो । अनहुद नाद काल भै टालो ।

गगन मंडल मैं रमूँ अकेला । उरध मुषि बंक नालि अमीरस झोला ।

कथंत गोरखनाथ गुरु उपदेसा । मित्यां संत जन टल्या अंदेशा ॥ २५ ॥

(२६)

सांभलि राजा बोल्या अवधू । सुणी अनोपम वांणी जी ।

निरगुण नारी सूं नेह करंतो । झवकै रैणि विहांणी जी ।

डाल न मूल पत्र नहि छाया । विण जल पिग्ना सीचै जी ।

विण ही मढीयां मंदला वाजै । यण विधि लोका रीझै जी ।

चींट्यां परबत ढोल्या रे अवधू । गायां बाध बिडार्याजी ।

सुसलै समदां लहरि मनाई । मृघां चीता मार्या जी ।

ऊझड़ मारगि जाता रे अवधू । गुर विण नहीं प्रकासा जी ।

जोत्या गोरख अव नहीं हारै । समझि ररालै पासा जी ॥ २६ ॥

(२७)

तुझि परि वारी हो अणघड़ोया देवा ।

घड़ी मूरति कूं सब कोई सेवै, ताहि न जाणे भेवा ।

तू अविनासी आहू कहोंए, मोहि भरोसा पड़ीया ।

सब संसार घड़्या है तेरा, तू किनहूँ नहि घड़ीया ।

दस औतार औतिरिया तिरिया, त्रै पणि राम न होई ।

कमाई अपनी उनहूँ पाई, करता औरै कोई ।

तू पूरण ब्रह्म पुरुष प्रथमी का, मूरति मूरति सारा ।

श्रवणां सुण्यां न नेनां देष्या, तेरा घड़ण हारा ।

तू तौ आप आप तैं हूवा, तू देष्यां उजियारा ।

गोरख कहै गुरू कैं सबदां तू हीं घड़ने हारा ॥ २७ ॥

८. हिन्दी रचनाओं की टीका एवं अर्थ

सबदी

(१)

अगम्य एवं अगोचर (परम तत्त्व) ऐसा है कि न तो उसे अस्तित्व भाव (बसतो) से जाना जा सकता है और न शून्य भाव से जाना जा सकता है। अर्थात् परम तत्त्व को न तो हम यह कह सकते हैं कि वह कुछ है और न यह कह सकते हैं कि वह कुछ नहीं है। वह बालक तो आकाश-मण्डल में बोलता है, फिर उसका नाम कैसे रख सकते हो ?

बसतो=अस्तित्व, सुन्य=शून्य, अस्तित्व रहित। 'सुन्य न बसतो' दोबारा कहने से वीप्सा अनंकार के माध्यम से कथन पर जोर दिया गया है कि ऐसा बिल्कुल नहीं है। अगम=परम तत्त्व तक किसी को पहुँच नहीं है। अगोचर=उस परम तत्त्व तक इन्द्रियों की पहुँच भी नहीं है। गगन-सिपर=नाथ योग में ब्रह्मरंध्र को गगन शिखर कहा जाता है। ब्रह्म का निवास वहीं पर है। ब्रह्म पाप-पुण्य, जरा-मरण एवं काल से परे है अतः उसे बालक कहा गया है। ब्रह्मरंध्र का बालरूप परम तत्त्व ही नाथ संप्रदाय का साध्य आदर्श है।

(२)

न देखे हुए (ब्रह्म) को देखना चाहिए। देखकर विचार करना चाहिए। पाताल (मूलाधार चक्र) की गंगा (कुण्डलिनी शक्ति) को ब्रह्माण्ड (ब्रह्मरंध्र) में चढ़ाना चाहिए। वहीं योगी ने निर्मल रस पीया है।

ब्रह्म का मात्र साक्षात्कार ही सिद्धों का अभीष्ट नहीं है, उसका मनन-चिन्तन भी अपेक्षित है। योगी कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर जब ब्रह्मरंध्र में पहुँचा देता है तभी वह अमृत रस का पान करता है। यही सिद्धावस्था है। पाताल=मूलाधार चक्र। गंगा=कुण्डलिनी शक्ति। लोक प्रचलित तो यह है कि गंगा ब्रह्माण्ड से नीचे आयी है किन्तु यहाँ गंगा को पाताल से ब्रह्माण्ड में चढ़ाने की बात कही है, यह विरोधाभास है। यही उलटबाँसी है। ऐसी उलटबाँसियाँ नाथ-बाणियों में बहुत मिलती हैं। कबीर पर इन्हीं उलटबाँसियों का प्रभाव पड़ा है।

(३)

यहाँ ही अर्थात् ब्रह्मरंध्र या सहस्रार में ही अक्षय परब्रह्म रहता है। यहीं तीनों लोकों की रचना हुई। ऐसा अक्षय परब्रह्म जो हमारे साथ रहता है, उसी कारण अनन्त सिद्ध योगेश्वर हो जाते हैं।

यह ब्रह्माण्ड ब्रह्म का ही व्यक्त स्वरूप है। ब्रह्मरंध्र ब्रह्म का केन्द्र है। वहीं से वह अपना प्रसार सर्वदिक् करता है।

‘अलोप’ शब्द के सम्बन्ध में डा० बड़थवाल लिखते हैं—

“अलोप=गुप्त। निषेध वाचक ‘अ’ का बहुधा जनसाधारण को बोली में व्यर्थ ही आगम हो जाता है। उसका कोई अर्थ नहीं लिया जाता; जैसे वृथा के लिए अविवर्था।”

(४)

(परब्रह्म-परमात्मा एकमात्र अनुभव का वस्तुतत्त्व है, उसका ठीक-ठीक निर्वचन) न वेद कर पाते हैं, न किताबी धर्मों की पुस्तकों और न चारों खानि की वाणी। ये सब तो उसे आच्छादन के नौचे ले आये हैं। अर्थात् सत्य को प्रकट करने के बदले उसके ऊपर आवरण डाल दिया है। (अगर परब्रह्म-परमात्मा का अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त करना है तो) ब्रह्मरंध्र (गगन शिखर) में समाधि द्वारा जो शब्द प्रकाश में आता है, उसमें विज्ञान रूप अलक्ष्य ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करो।

षांणीं वांणीं=चार प्रकार की वाणी जैसे—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बंखरी। कतेब=धर्मग्रन्थ। ढंकी=ढक्कन, आच्छादन। आंणीं=आनय=ले आई गयी।

(५)

वेदों, शास्त्रों, धार्मिक पुस्तकों तथा कुरान आदि ग्रन्थों में जिस (परम पद) को नहीं बाँचा जा सकता (समझा जा सकता) उस परम पद ब्रह्म को किसी बिरले योगी ने जाना है। बाकी दुनिया तो (सांसारिक) धंधों में ही लगी हुई है।

गोरखनाथ की इस भावना का प्रभाव कबीर आदि संतों पर भी पड़ा—

“पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सौ पंडित होय ॥”

गोरखनाथ के समय इस्लाम और कुरान का प्रचार भारत में होने लगा था।

(६)

हँसना चाहिए, खेलना चाहिए, मस्त रहना चाहिए। काम-क्रोध का साथ न करना चाहिए। हँसो, खेलो तथा गीत गाओ (कोई बात नहीं) किन्तु अपने चित्त को दृढ़ करके रखो।

गोरखनाथ का कहना है कि इस संसार का उपभोग इस प्रकार करना चाहिए कि चित्त-वृत्ति चंचल न हो।

(७)

हँसना, खेलना और ध्यान धरना चाहिए। रात दिन ब्रह्म-ज्ञान को कहना चाहिए। किन्तु जो हँसते-खेलते अपने मन को भंग नहीं होने देते, वे निश्चल होकर सदैव ब्रह्म के साथ रमण करते हैं।

हँसना-खेलना अर्थात् राग-रंग, आनन्द-उत्सव मनाना बुरा नहीं है किन्तु मन को संयत रखना परमावश्यक है।

निश्चल = निश्चल अथवा निश्छल।

(८)

साधक को ब्रह्मरंध्र में जो अनहत नाद सुनाई दिया, वह सार का भी सार और गंभीर से गंभीर है। यह अनहत नाद सारी माणिक्य साधक को प्राप्त होने पर भी संसार से छिड़ा रहा। इसके सम्बन्ध में सारा बाद-विवाद झूठा है।

अनहत नाद स्वसंवेद्य है। उसकी अनुभूति ही सच्ची है। जिसे अनुभूति होती है उसके लिए वह संसार का सार, तत्त्व है और गंभीर से गंभीर भाव है किन्तु सांसारिक व्यक्तियों की समझ में वह भाव नहीं आता, इसी कारण वे इस आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में बाद-विवाद करते हैं। वस्तुतः यह बाद-विवाद झूठा है।

नाद = एक विशेष ध्वनि, जो योगी को तब सुनाई पड़ती है, अब वह अपनी कुण्डलिनी शक्ति को साधना के द्वारा ब्रह्मरंध्र में पहुँचा देता है।

(९)

सांसारिक व्यक्ति खण्डन-मण्डन में लगे रहते हैं—बाद-विवाद करते रहते हैं किन्तु योगी को बाद-विवाद नहीं करना चाहिए। उसे शास्त्रार्थ में नहीं पड़ना चाहिए। जिस प्रकार अड़सठ तीर्थ (तीर्थ स्थानों वाली अड़सठ नदियाँ) समुद्र में समाहित हो जाते हैं। उसी प्रकार शिष्य का विश्वास गुरुमुख वचनों में होना चाहिए।

गुरुमुषि = गुरुमुख = गुरु के उपदेशात्मक वचन।

जरना = जीर्ण करना, पचाना।

शिष्य को चाहिए कि गुरु वचनों को आत्मसात् कर जाए। यह अत्मीकरण पूर्ण विश्वास के बिना असम्भव है। गुरु की महत्ता प्रदर्शित है। आगे संत साधकों में भी यह गुरु महत्ता मिलती है।

(१०)

जो (साधक) रात-दिन अपने मन को लेकर (बहिर्मुखी स्थिति से हटाकर अन्तर्मुखी स्थिति में लगाकर) उन्मनावस्था में रहता है, गम्य (प्रस्तुत जगत्) की बातें छोड़कर अगम्य (परोक्ष आध्यात्मिकता) की बातें कहता है, सब आशाओं (आस्थाओं-आसक्तियों) को छोड़ देता है, और निराश (आसक्ति-रहित) रहने लगता है उससे ब्रह्मा भी कह देता है कि मैं तुम्हारा दास हूँ।

उनमन = उन्मनी अवस्था साधक की वह तटस्थ अवस्था है जिसमें वह समस्त

सांसारिक आकर्षणों से मुक्त होकर आत्मानन्द में लीन हो जाता है।

गम=गम्य, जहाँ तक पहुँचा जा सके। संसार गम्य है, क्योंकि उस तक सब की पहुँच हो जाती है।

अगम=अगम्य, जहाँ तक पहुँचा न जा सके। ब्रह्म अगम्य है।

आसा=आशा, आस्था। निरास=निराशा, तटस्थता।

(११)

जो अजपा का जाप करता है ब्रह्मरंध्र (शून्य) में मन को लीन कर लेता है, पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है, अपने शरीर को ब्रह्माग्नि में होम देता है, उसके चरणों की वंदना महादेव भी करता है। अर्थात् उसका अस्तित्व योगेश्वर शिव से भी महान् हो जाता है।

अजपा=गोरखनाथ ने माला द्वारा किये जाने वाले जाप का खण्डन किया है इसीलिए अजपा जाप की स्थापना की है। अन्तर्मुखी वृत्ति से मन को एकाग्र रखना ही अजपा जाप है।

सुन्ती=ब्रह्मरंध्र।

(१२)

जो धन और यौवन की आशा नहीं करता, आसक्ति नहीं रखता, स्त्री में मन नहीं लगाता, जिसके शरीर में नाद और बिंदु जीर्ण होते रहते हैं, पावन्ती भी उसकी सेवा करती है।

नाद=अनहदनाद। बिंदु=शुक्र। जर=जीर्ण करता है। योगी अनहदनाद को अपने अन्दर पूर्ण रूप से स्वायत्त करता है और शुक्र को ऊर्ध्वगामी बनाकर शरीर में ही पचाता है। या जीर्ण करता है।

(१३)

बाल्यावस्था और यौवन में जो व्यक्ति संयम के द्वारा इन्द्रिय-निग्रह करते हैं वे समय-असमय में सर्वदा अपने सत पर स्थिर रह सकते हैं। वे पुरतों से भोजन करते हैं, कम खाते हैं। गोरखनाथ कहते हैं कि हमारी काया ऐसी ही है।

सच्चे साधक की पहचान यही है कि वे भोजन भट्ट नहीं होते। जो संन्यासी खाने-पीने को अधिक महत्त्व देते हैं, गोरख ने उन पर व्यंग्य किया है। साथ ही अपनी स्थिति भी बता दी है।

(१४)

शब्द ही ताला है, शब्द ही कुंजी है। शब्द ने ही शब्द को जगाया। शब्द का ही शब्द से परिचय हुआ और शब्द में ही समा गया।

शब्द ताला इसलिए है कि वह परमतत्त्व को बन्द किये रहता है। जब पर-तत्त्व स्थूल आवरणों से आवद्ध हो जाता है तो स्रष्टि की रचना होती है। शब्द कुंजी इसलिए है कि शब्द की धारा पकड़ कर ही मूल अधिष्ठान तक वापस आना पड़ता है समस्या का ताला उसी से खुलता है। समस्या है वापस आने की। अन्तरो शब्द

(नाद) का जागरण शब्द (गुरु उपदेश) के द्वारा होता है, यही शब्द का शब्द से परिचय है। जब इस प्रकार स्थूल शब्द के द्वारा सूक्ष्म शब्द से परिचय हो जाता है तब स्थूल शब्द सूक्ष्म मूल शब्द में समा जाता है।

(१५)

आकाश मंडल (ब्रह्मरंध्र) में एक औंधे मुंह का कुंआ है जिसमें अमृत का वास है। जो अच्छे गुरुवाला होता है, वह तो (उसमें से अमृत) भर-भर कर पीता है और जो बिना गुरुवाला (अथवा गलत गुरुवाला) होता है वह प्यासा ही चला जाता है। (उस अमृत को नहीं पी पाता।)

गगन मंडल = ब्रह्मरंध्र। ऊंधा कुंआ = सहस्रार दल चक्र कमल। अमृत — आत्मतत्त्व।

गुरु की महत्ता प्रतिपादित है। बिना गुरु के आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती।

गोरख की यह सबदी कबीर की निम्न सबदी से तुलनीय है—

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।

ताका पांणी को हंसा पीवं, बिरना आदि बिचारि ॥

(१६)

(ब्रह्म की) सुगंधि से सारा संसार सुगंधित है। उसके स्वाद से सारा संसार मीठा है। वह ब्रह्म (अपने सम्पूर्ण) रूप के साथ दिखाई देता है, अगर इस सत्य को कहें तो केवल गुरु ही विश्वास कर सकता है।

स्वाद सहेता मीठा—जिसको ब्रह्मानन्द का आस्वाद मिल जाता है उसके लिए संसार के दुःख की कटुता मिट जाती है और जगत् आनन्दमय अर्थात् मीठा हो जाता है।

बास सहेतो सब जग बास्या = ब्रह्म जगत् में सुगंधि के समान व्याप्त है।

रूप सहेता मीठा = सारा जगत् ब्रह्म के रूप से ही सुन्दर है। गोरख की सौन्दर्य भावना द्रष्टव्य है।

(१७)

झट से अचानक नहीं बोल उठना चाहिए। (सोच-समझकर बोलना चाहिए) पैर पटक कर नहीं चलना चाहिए। सम्यक्ता के साथ तसल्ली से मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए। चलते समय धीरे-धीरे पैर रखना चाहिए। गर्व नहीं करना चाहिए। सहज स्वाभाविक स्थिति में रहना चाहिए। यह गोरखनाथ का कथन है।

यह उपदेश मात्र साधकों के लिए ही नहीं है, सांसारिक भी इस पर अमल कर सकते हैं।

(१८)

गोरखनाथ कहता है कि हे अवधूतो सुनो ! अपने चित्त को दृढ़ करके रखो। काम, क्रोध और अहंकार का निवारण कर दो। अगर ऐसा कर लिया तो समझ लो

कि सभी देश-देशान्तर का भ्रमण हो गया।

योगी अपना घर बनाकर नहीं रहते थे और विरक्त भावना की पुष्टि के लिए देश-देशान्तर का भ्रमण करते रहते थे। गोरख के समय केवल धूमने-फिरने को ही साधू लोग अधिक महत्त्व देने लगे थे। गोरखनाथ ने इस प्रवृत्ति का खण्डन किया है।

(१६)

हे स्वामी, अगर मैं बन खण्ड (बन प्रदेश में) जाता हूँ तो क्षुधा व्यापती है, नगर (बस्ती) में जाता हूँ तो माया आकृष्ट करती है और भर-भर कर खाता हूँ तो काम-वासना सताती है। इस जल-बिन्दु (शुक्र) से परिपूर्ण शरीर को किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है ?

पुध्या=क्षुधा, भूख। बिंद=शुक्र, वीर्य।

सौजति > सिध्यते > सिद्ध हो सकती है। जलब्यंद=जल-बिन्दु=शुक्र।

गोरख कहता है कि स्थान-भेद से समस्या का समाधान नहीं हो सकता। जंगल में खाने की समस्या, बस्ती में माया के आकर्षण की समस्या, राजसी और तामसो भोजन करने से काम-वासना की समस्या। इसलिए कहीं भी रहो शुक्र को उर्ध्वगामी बनाओ। तभी काया सिद्ध हो सकती है। काया सिद्ध होने पर सब कुछ सिद्ध हो जाता है क्योंकि 'यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे'।

(२०)

जो थोड़ा बोलता है और थोड़ा खाता है, उसके शरीर में पवन (प्राणवायु) समाया रहता है। आकाश मंडल (ब्रह्मरंध्र) में अनाहद नाद होता रहता है। (इस साधन के होते हुए भी) यदि शिष्य का शरीर-पात हुआ जाए तो सद्गुरु के लिए लज्जा की बात है।

(२१)

हे अवधूत आहार तोड़ो (कम खाओ), निद्रा को मोड़ दो (वापस कर दो), फिर कभी भी रोगी नहीं होंगे। छूटे छमासे कायाकल्प करना चाहिए। ऐसा कोई-कोई बिरला योगी ही कर सकता है।

जो जमकर खाते रहते थे, नींद भर सोते रहते थे, उन पर गोरख ने करारा व्यंग्य किया है। साथ ही शिष्य को उपदेश भी है।

काया पलटिबा=नाग, बंग, वनास्पति आदि रासायनिक क्रियाओं से नाथपंथ में कायाकल्प का बिधान था।

(२२)

हे अवधूत ! निद्रा के घर काल का जंजाल है। (जीव अधिक निद्रा से शीघ्र काल-प्रसित होता है।) आहार के घर चोर रहता है अर्थात् अधिक आहार करने से काम रूपी चोर शरीर में प्रवेश कर जाता है। मैथुन के घर बुढ़ापा प्रसित कर लेता है अतः अधःगामी शुक्र को उर्ध्वगामी बनाना चाहिए। (फिर कामदेव, बुढ़ापा और

कान किसी को भी चिन्ता नहीं रहेगी ।)

गोरख ने शुक्र रक्षा अथवा ब्रह्मचर्य पर बहुत अधिक जोर दिया है इसका कारण तत्कालीन तन्त्र साधना में व्याप्त व्याभिचार रहा है ।

(२३)

गोरख ने प्रत्येक व्यक्ति की शरीर-रूपी क्यारी को बोया है किन्तु वही क्यारी अपनी है जो उपज जाए । गोरख प्रत्येक शरीर में कहानी कहता है—उपदेश करता है किन्तु कच्चे बर्तन में पानी नहीं रह सकता ।

गोरखनाथ ब्रह्मलीन होने के कारण ब्रह्मरूपा है । ब्रह्म बीज रूप में हर व्यक्ति के अन्दर विद्यमान है किन्तु वही शरीर सार्थक है, जिसमें ब्रह्म रूपी बीज उग जाता है अर्थात् ब्रह्मानुभूति हो जाती है । गोरखनाथ हर व्यक्ति को उपदेश भी करते हैं किन्तु जिस प्रकार कच्चे बर्तन में पानी नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान से रहित कच्चे शरीर में उपदेश भी नहीं ठहर सकता ।

बाहो—बोई (बावै पाठ भेद भी मिलता है)

निपज—उगती है । कहाँगी—कहानी—उपदेश ।

भांडै—भाण्ड, बर्तन ।

(२४)

गोरख प्रत्येक घर में चुपचाप फिरता है और देखना रहता है कि कौन घर सो रहा है और कौन घर जाग रहा है । हरेक घर में गोरख है और हरेक घर में मत्स्येन्द्र है । गुरु-शिक्षा से आत्म-परिचय प्राप्त करो ।

गोरख का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म प्रत्येक शरीर में विद्यमान है और उसे यह भी पता रहता है कि कौन ब्रह्मानुभूति के लिए सजग है और कौन सजग नहीं है । मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ दोनों ही ब्रह्मरूप हैं अतः प्रत्येक शरीर में ये दोनों विद्यमान हैं । गुरु विद्यमान है तो उसके प्रभाव से शिष्य भी विद्यमान है । तभी गोरख उपदेश देता है कि अपनत्व का परिचय गुरु मुख (गुरु-उपदेश) से ही प्राप्त किया जा सकता है ।

गुरु-महत्ता ध्वनित है ।

निरुता—निः+रुत—शब्द रहित, ध्वनि रहित ।

सूता—सोया हुआ । मीन—मत्स्येन्द्रनाथ ।

चौन्ह—पहचान, प्राप्त कर

(२५)

हे अवधूत ! पावड़ी पहनने वाले का पैर फिसलता है । लोहे (की संकलों) से शरीर नष्ट होता है । नागा, मौनी और केवल दूध पीकर रहने वालों ने भी योग नहीं पाया ।

गोरखनाथ के समय योग साधना की अनेक प्रक्रियाएँ थीं । कुछ साधक पावड़ी पहनने थे, कुछ शरीर को लोहे की शृंखलाओं से जकड़े रहते थे । कुछ तंगे रहते थे,

कुछ केवल दूध पीकर ही रहते थे और कुछ मौन धारण किये रहते थे। गोरख ने इन सभी हठधर्मिताओं का खण्डन किया है। गोरख की योग-साधना शरीर को वश में करने के इन बाहरी उपायों में विश्वास नहीं करती।

फिलसूँ=फिसलता है। छीजत=छीजती है, नष्ट होती है।

गोरख की यह खण्डन की प्रवृत्ति कबीर में खूब देखी जा सकती है।

(२६)

दूध पर ही रहने वाले का मन सदा दूसरे के घर रहता है (दूध आने की आस लगाए रहता है।) नंगा रहने वाला (शरीर को तपाने के लिए) सदैव लकड़ी चाहता है। मौन रहने वाला एक साथी की अपेक्षा रखता है। बिना गुरु के गुदड़ी पर भी विश्वास नहीं हो सकता।

गोरख का तात्पर्य यह है कि चाहे दूधधारी हो, चाहे नागा हो, चाहे मीनो हो और चाहे गुदड़ी साधु हो, जब तक उसका कोई सच्चा गुरु नहीं है, तब तक उसकी ये सभी साधनाएँ निरर्थक हैं। निरर्थक ही नहीं बल्कि आसक्ति युक्त हैं। साधना के लिए आसक्ति मुक्त होना आवश्यक है।

गोरख ने समसामयिक परंपरावादी आसक्त साधकों पर करारी चोट की है।

म्यंत्र=मित्र। बेसास=विश्वास।

(२७)

सच्चा अवधूत वही है जो अपने को ठग लेता है अहंकार को वश में कर लेता है। वह भिक्षा के भोजन के लिए शरीर रूपी नगर में ही भिक्षा करता है। वह अवधूत शिवलोक (ब्रह्मरंध्र) में संचरण करता है।

धूतारा=१. धूर्त, २. अवधूत (अवधूत > धूत > धूतारा।)

गोरख का कहना है कि अवधूत धूर्त होता है, किन्तु वह सांसारिक धूर्त नहीं होता, आध्यात्मिक धूर्त होता है। सांसारिक धूर्त सांसारिकों को ठगता है, आध्यात्मिक धूर्त अहंकार को ठगता है।

अहूठ=साढ़े तीन। पटण=नगर। सिवपुरी=ब्रह्मरंध्र। संचरै=संचरण करता है, घूमता है।

गोरख के समय अधिकांश ऐसे योगी होते थे, जो भ्रमण करते रहते थे और भिक्षा माँगकर पेट भरते रहते थे। वे उसी क्रिया को करते हुए अपने को अवधूत की श्रेणी में गिनते थे। गोरखनाथ ने योग-साधना में शरीर-साधना पर अधिक बल दिया है। वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाने पर अधिक जोर दिया है।

(२८)

योगी सांसारिक गृहस्थियों की भाँति नहीं होता। अगर वह होता भी है तो ऐसा 'गिरही' (प्रसित करने वाला) होता है कि अपने शरीर को ही प्रसित करता है—वश में कर लेता है। वह अन्तःकरण से माया को त्याग देता है, शील का शरीर धारण किये रहता है। वह गृही योगी गंगा के नीर के समान निर्मल होता है।

गोरख के समय अनेक योगी अपनी गृहस्थी बनाकर रहने लगे थे। गोरख कहता है कि फिर गृहस्थी और योगी में अन्तर क्या रहा। ऐसे गृहस्थी योगी तो शुद्ध गृहस्थियों से भी निकृष्ट थे अतः वह गृहस्थी योगियों की परिभाषा बताते हुए कहता है कि योगी की गृहस्थी तो इस शरीर पर ही आधारित है।

(२६)

शरीर रूपी मढ़ी में मन रूपी जोगी रहता है। उाने पांच तत्त्वों को लेकर कंथा बनाई है। उसके पास क्षमारूपी खड़ासन, ज्ञानरूपी अधारी, सद्बुद्धि रूपी खड़ाऊँ और विचार रूपी डंडा है।

गोरखनाथ ने इस सबदी में जहाँ एक ओर नाथ सिद्धों की वेष-भूषा पर प्रकाश डाला है वहीं बाह्य युक्तियों का खण्डन कर आन्तरिक साधना पर बल दिया है नाथ-पंथ में मढ़ी, कंथा, खड़ासन, अधारी, पावड़ी, डंडा आदि बाह्य युक्तियाँ हैं, जिनका सहारा योगी लेता था। गोरखनाथ ने इनके स्थान पर क्रमशः शरीर, पाँच तत्त्व, क्षमा, ज्ञान, सद्बुद्धि, सुविचार आदि पर अधिक बल दिया है। इस पिण्ड में सब कुछ है, उसकी साधना करो।

मढ़ी = कुटिया। कंथा = गुदड़ी (योगी का वस्त्र विशेष)।

खड़ासन = खड़े-खड़े बैठने का आनन्द प्राप्त कराने वाला एक यंत्र। अधारी = काठ के डंडे में लगा हुआ पोड़ा। पावड़ी = काठ की चट्टी (खड़ाऊँ)। डंडा = योगी का विशेष प्रकार का डंडा।

प्रस्तुत सबदी में रूपक अलंकार द्रष्टव्य है।

(३०)

यही मन शिव है, यही मन शक्ति है, यही मन पंच तत्त्वों से निमित्त जीव है। इस मन को लेकर जो उन्मनादस्था भ रहता है, वह तीनों लोकों की बातें कह सकता है।

योग साधना में मन का बहुत बड़ा महत्व है। परब्रह्म ही मन का अधिष्ठान है। मायाके संयोग से ब्रह्म ही मन के रू में अभिव्यक्त होता है। मन से ही पंच-भूतात्मक शरीर की सृष्टि होती है।

‘मनःद्विविधः प्रयुक्तः’। माया रहित मन ब्रह्म है। साध्य है। मायायुक्त मन चंचल होता है।

(३१)

जब अमावस्या के घर चन्द्रमा झिलमिलाने लगता है और उस पूर्णिमा के घर सूर्य का संयोग हो जाता है तो नाद में बिन्दु समाकर गर्जना करने लगता है और अनहद का तूर बजने लगता है।

अभिप्राय यह है कि चन्द्रमा सहस्रार में स्थित रहता है किन्तु जब तक व्यक्ति समाधिस्थ नहीं होता तब तक चन्द्रमा न तो अपना प्रकाश ही दिखाता है और न अमृतस्नाव ही होता है, सहस्रार में अमावस्या का-सा अन्धकार छाया रहता है।

जब सहस्रार में चन्द्रमा झिलमिलाने लगता है तो मूलाधार स्थित सूर्य भी ब्रह्मरंध्र में जाकर चन्द्रमा से संयोग कर लेता है। ऐसी स्थिति में बिन्दु (शुक्र) भी ऊर्ध्वगामी होकर ब्रह्मरंध्र में पहुँचता है और अनहद का कारण बनता है।

इस सबदी में उलटबाँसी है। लोक में तो अमावस्या को चन्द्र दिखाई नहीं देगा। सूर्य और चन्द्रमा भी एक स्थान पर नहीं मिलेंगे किन्तु यहाँ ऐसा दिखाया गया है। ऐसी उलटबाँसियाँ कबीर में खूब देखी जा सकती हैं।

(३२)

कितने ही साधक ऐसे हैं, जो आते-जाते रहते हैं अर्थात् देशाटन को ही अधिक महत्त्व देते हैं। कितने ही साधक ऐसे हैं, जो माँगते-खाते हैं अर्थात् भिक्षा को ही अधिक महत्त्व देते हैं। कितने ही ऐसे हैं, जो (वस्तियों का त्याग) कर वृक्षों के नीचे रहते हैं अर्थात् मात्र गृह-त्याग को ही अधिक महत्त्व देते हैं। फिर गोरख अभय ज्ञान किसको करे। (सब तो बाहरी बातों) में पड़े हुए हैं। अन्तर्मुखी वृत्ति किसी की भी नहीं।

देशाटन, भिक्षान्न, गृह-त्याग आदि स्थितियाँ तो साधना के बाहरी रूप मात्र हैं, इन्हें साध्य समझ लेना भ्रम है। इस सबदी में गोरख की समसामयिक परिस्थितियाँ अंकित हैं।

(३३)

मन में रहना चाहिए (प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी बनाना चाहिए)। अपने मन के रहस्य को किसी से नहीं कहना चाहिए (क्योंकि जो समझेंगे नहीं तो विश्वास नहीं करेंगे) अमृत के समान मौठी वाणी बोलनी चाहिए। अगर कोई व्यक्ति तुम पर आग बबूला हो जाए, तो तुम्हें पानी हो जाना चाहिए (अर्थात् शान्त भाव से रहना चाहिए)।

इस सबदी में योगी को व्यावहारिक उपदेश दिया गया है। क्रुद्ध व्यक्ति के सामने भी नम्रता दिखाना महानता का लक्षण है।

‘आग बबूला होना’, ‘पानी होना’ अच्छे मुहावरे हैं।

(३४)

जिस प्रकार नगरी जल से (तालाबों से) सुशोभित होती है, वृक्ष जड़ से सुशोभित होता है, सभा पंडित लोगों से सुशोभित होती है, राजा प्रामाणिक (विश्वसनीय) सेना से सुशोभित होता है, उसी प्रकार सिद्ध पुरुष शुद्ध बुद्धि की वाणी से सुशोभित होता है।

कितनी सुन्दर उदाहरण-माला है। अगर सिद्ध पुरुष में शुद्ध बुद्धि नहीं है तो फिर सिद्धि काहे की।

दल=सेना । प्रवांणी=प्रामाणिक (विश्वसनीय) । सिद्धा=सिद्ध । सुद्धि=शुद्ध ।

(३५)

उत्तराखण्ड जाना चाहिए। शून्यफल खाना चाहिए। ब्रह्माग्नि का वस्त्र पहनना चाहिए। झरने से झरते हुए अमृत को पीना चाहिए। इस प्रकार मन स्थिर हो जाएगा।

गोरख के समय तपस्वी लोग योग-साधना के लिए उत्तराखण्ड (बदरिकाश्रम आदि स्थानों में) जाकर झरने का जल पीते थे यथा कन्दमूल फल खा कर रहते थे। किन्तु गोरखनाथ का कहना है कि यह सब कुछ तो इस शरीर में ही विद्यमान है। उत्तराखण्ड=ब्रह्मरंध्र। शून्यफल=ब्रह्मरंध्र में मिलने वाला फल अर्थात् ब्रह्मानुभूति गेरुआ वस्त्र=ब्रह्माग्नि। झरने से झरने वाला जल=ब्रह्मरंध्र में झरता हुआ अमृत।

(३६)

हिन्दू देवालय में ध्यान करते हैं, मुसलमान मसजिद में किन्तु योगी उस परमपद का ध्यान करते हैं, जहाँ न मन्दिर है और न मस्जिद।

योगी के लिए यह परम पद सर्वत्र है। देवालय, मठ, मसजिद और इनके अतिरिक्त भी, सब जगह उसे परमात्मा का सहज बोध सुलभ होता है।

(३७)

हिन्दू राम के नाम का आख्यान करते हैं अर्थात् राम के नाम से अग्ने उपास्य परमात्मा का ध्यान करते हैं और मुसलमान खुदा के नाम का आख्यान करते हैं किन्तु योगी अलक्ष्य के नाम का आख्यान करते हैं, वहाँ न राम है और न खुदा।

योगी के अलक्ष्य ब्रह्म में राम और खुदा जैसा पृथक्-पृथक् स्वरूप नहीं है। वह तो नामरूप से परे अब्बाड, अनादि, परम चैतन्य महत्तत्त्व है।

(३८)

ईश्वर यदि शरीर में होता तो कोई नहीं मरता। यदि ब्रह्मांड में होता तो उसे सब लोग देखते। मत्स्येन्द्र का दास गोरख कहता है कि वह पिंड और ब्रह्मांड दोनों से परे है।

ईश्वर पिंड में भी है और ब्रह्मांड में भी है किन्तु उसका अस्तित्व मात्र इन्हीं में बँधकर नहीं रहता अतः वह इन दोनों से परे है।

गोरखनाथ ने अग्नी अनुभूतियों के आधार पर अनेक परम्पराओं का खण्डन किया है।

(३९)

गोरखनाथ कहता है कि हे अवधू, सुनो। संसार में इस प्रकार रहना चाहिए कि आँखों से देखते रहना चाहिए, कानों से सुनते रहना चाहिए किन्तु मुँह से कुछ नहीं कहना चाहिए।

गोरखनाथ साधक को उपदेश देते हैं कि उसे सांसारिक प्रपंच में नहीं पड़ना चाहिए, तटस्थ रहना चाहिए।

(४०)

गोरखनाथ कहता है कि तुम आत्मा की रक्षा करो, आत्मज्ञान करो। हठपूर्णक वाद-विवाद नहीं करना चाहिए। यह संसार कांटे की बाड़ी के समान है। अतः देख-देख कर कदम रखना चाहिए।

बाड़ी=खेत। झाड़ियों के खेत में देख-देखकर चलना ही होगा। यह संसार भी कंटकाकीर्ण है, साधक को यहाँ भी सँभलकर चलना चाहिए। उपमा द्रष्टव्य है।

(४१)

सच्चा दंडी साधु वह है, जो अपने अहंकार को दंडित करता है। आती-जाती मनमा (इच्छा) को खंडित करता है, पाँचों इन्द्रियों का मान मर्दित करता है। वह दंडो ब्रह्मतत्त्व के समान कहा जा सकता है।

गोरखनाथ ने बाह्याचारों का खण्डन किया है। दण्डी साधु अपने हाथ में दंड लिए रहते हैं। दंड में श्लेष के माध्यम से गोरख कहता है कि बाहरी दंड से कुछ नहीं होगा, अपने अहंकार को दंडित करो अर्थात् 'अहं' पर काबू पाओ।

(४२)

आसन लगाकर बैठना, प्राणवायु को निरोधना और पद एवं सम्मान की कामना करना—सब सांसारिक धंवे ही हैं। गोरखनाथ कहते हैं कि आत्मतत्त्व का विचार करने से सारा जगत् वैसे ही ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जान पड़ता है जिस प्रकार जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है।

थान-मान=कोई पद और उसका सम्मान। कोई विशेष स्थान पर ही तपस्या करना और मान प्राप्त करना।

सब धंधा=बाहरी साधन मात्र।

गोरख का अभिप्राय यह है कि बाहरी उपकरणों से अथवा बाहरी साधनों से सिद्धि पूर्ण नहीं होती। पूर्ण सिद्धि के लिए आत्म-विवेचन आवश्यक है।

(४३ + ४४)

हे दयालु गुरु ! एक शब्द (प्रश्न) पूछूँगा, उत्तर दीजिएगा। वृद्ध से बालक कैसे हो जाएगा ? खिला हुआ फूल कली कैसे हो सकता है। पूछने पर जो बताए वही गोरख है।

हे देवलनाथ ! सुनो, जगत् के जाल को छोड़ दो। अमृत का पान करो तो बालक हो जाओगे। ब्रह्माग्नि से मूल को सींचने से खिला हुआ फूल भी फिर से कली हो जाता है।

इन दो सबदियों में से पहली सबदी में यह जिज्ञासा की गई है कि साधक वृद्धावस्था में भी बालरूप कैसे हो जाता है। दूसरी सबदी में इसका उत्तर दिया गया है कि कुण्डलिनी जागरण के द्वारा ब्रह्मरंध्र में अमृत-पान करने से वृद्धावस्था भी बालरूप में परिवर्तित हो जाती है।

ऐसा लगता है कि प्रश्न देवलनाथ ने गोरख से किया है और गोरखनाथ ने

देवलनाथ को उत्तर दिया है। यह प्रश्नोत्तर की शैली नाथसिद्धों में प्रचलित थी। आध्यात्मिक गहनता को सरल बनाने के लिए यह शैली अच्छी है। इन सबदियों से यह भी सिद्ध होता है कि देवलनाथ गोरख का कोई जिज्ञासु शिष्य रहा होगा।

(४५)

हे अवधूत ! हमारी काया नाल कही जा सकती है, पवन (प्राणवायु) बारूद कही जा सकती है। अनहद रूपी अग्नि से धमाका रूपी नाद होता है। बिन्दु रूपी गोला ब्रह्मरंध्र रूपी आकाश में उड़ जाता है।

यहाँ नाल का तात्पर्य बन्दूक की नाल से नहीं है, बारूद का गोला छोड़ने वाली नाल से है, जो जमीन पर रखकर नीचे से अग्नि का पलीता लगाकर बारूद के गोले को आकाश में उड़ा देती है और वह गोला आकाश में जाकर धमाका करता है तथा प्रकाश करता है। शादी-व्याहों में ऐसे गोले छोड़े जाते हैं। अच्छा सांग्रूपक है। शुक्र को ऊर्ध्वरेता बनाने की प्रक्रिया का वर्णन है।

(४६)

काजी-मुल्ला कुरान से लगे रहे, ब्राह्मण वेद से लगे रहे, कापड़ी संन्यासी तीर्थों में भ्रमण करते रहे किन्तु निर्वाण-पद का भेद किसी ने नहीं पाया।

कापड़ी संन्यासी = गंगोत्तरी से जल लाने वाले, कावर लाने वाले।

सभी आड़म्बरों को एक स्वर से फटकारने वाली यह शैली कबीर में खूब देखी जा सकती है।

गोरख के समय तक इस्लाम का प्रचार भारत में हो गया था।

(४७)

देवालय की यात्रा शून्य यात्रा है। तीर्थ की यात्रा मात्र पानी की यात्रा है। सफल यात्रा तो अतीत यात्रा है, जहाँ सन्त अमृत बाणी बोलता है।

मंदिर अथवा तीर्थों की यात्रा में भी मन का विकार न मिटा, मनसा-वाचा कर्मणा शुद्धता नहीं आयी तो ये यात्राएँ मात्र दिखावा हैं—शून्य हैं, पानी हैं। संन्यासी की वास्तविक आध्यात्मिक यात्रा तो वहीं सफल होती है जहाँ उसे सन्तों का सत्संग मिलता है, उनकी अमृतमयी वाणी सुनने को मिलती है।

सुनि जात्रा = व्यर्थ यात्रा। पाणी = निष्फल

अतीत जात्रा = पृथक् यात्रा (ऊपर की दोनों यात्राओं से पृथक्) अथवा संन्यासी की यात्रा। अतीत = संन्यासी। कबीर इत्यादि सन्तों में मूर्तिपूजा और तीर्थ स्थानों की अंध श्रद्धा का जो खंडन मिलता है, उसका मूल स्वर गोरखनाथ में देखा जा सकता है।

(४८)

संन्यासी वह है, जो अपने सर्वस्व का नाश (त्याग) कर देता है। केवल शून्य मंडल में (मिलनेवाली ब्रह्मानुभूति की) आशा लिए रहता है। अनाहत नाद को सुनकर मन की उन्मनावस्था में लीन किये रहता है। वह संन्यासी (स्वानुभव से)

अगम परब्रह्म का कथन करता है।

संन्यास और सर्वनाश में गोरखनाथ ने ध्वन्यात्मक साम्य बिठाला है।

गोरखनाथ ने प्रस्तुत सबदी में संन्यासी के स्वरूप और स्वभाव, स्थिति और गुण-धर्म का वर्णन किया है।

(४६)

हे गुणवानो ! हे बुद्धिमानो !! अनन्त सिद्धों की वाणी सुनो। मिर भुकाते हुए (विनम्रतापूर्वक आदेश-पालन करते हुए) सद्गुरु से मिलने पर रात्रि भी जागते हुए बीत जाती है।

यह संसार एक रात्रि के समान है। मानव की अज्ञानावस्था ही निद्रावस्था है। अगर किसी को सद्गुरु मिल जाए और वह उसके उपदेशों का विनम्रतापूर्वक पालन करे तो उसका जीवन ज्ञानमय अवस्था में व्यतीत होता है।

(५०)

जिनके बड़े-बड़े कूल्हे हैं और मोटे-मोटे पेट (तोंद) हैं, हे पुत्र (शिष्य) ! समझ लो कि उनकी गुरु से भेंट नहीं हुई। और जिनका शरीर खड़-खड़ (चर्वी रहित) है तथा नेत्र कातिमय हैं, हे पुत्र (शिष्य) ! समझ लो उनकी गुरु से भेंट हो गयी।

अगर साधक ने सद्गुरु के आदेशानुसार योग-साधना की है तो उसका शरीर हल्का किन्तु कान्तिमय तथा निरोग हो जाएगा। और अगर साधक कहे जाने वाले व्यक्ति का शरीर मोटा-ताजा तथा रोगीला है तो या तो उसे सद्गुरु नहीं मिला या फिर सद्गुरु के उपदेशानुसार उसने साधना नहीं की। साधक की पहचान तो उसके शरीर को देखकर ही हो जाती है।

जो संन्यासी अच्छा खासा भोजन करते हुए अपने शरीर को ही पुष्ट करते रहते हैं, उनके प्रति व्यंग्योक्ति द्रष्टव्य है।

नेत = १ नेत्र, २ मंथन की डोरी। नासारंध्रों में नेत्र (डोरी) का उपयोग होता है। इसी से 'नेत्री' क्रिया का नाम बना है। दूसरे अर्थ को ग्रहण करने पर 'निरमल नेत्र' का अर्थ होगा—जिसके नासारंध्र निर्मल हैं।

(५१)

कहना आसान है (किन्तु उस कहे हुए के अनुसार) रहना अथवा आचरण करना कठिन है। बिना आचरण के मात्र कथन थोड़ा है—खोखला है। पढ़ा-गुना तोता बिल्ली ने खा लिया। ऐसे ही पंडित के हाथ में पोथी रह गयी।

गोरखनाथ मनसा-वाचा-कर्मणा में समन्वय चाहते हैं ! अनुभूति और व्यावहारिकता को वे अधिक महत्त्व देते हैं। आध्यात्मिक सूत्रों को मात्र रटने से मनुष्य सच्चा साधक नहीं हो सकता। चन्द शब्दों को रटनेवाला तोता अपने को बिल्ली से नहीं बचा पाता। मात्र पोथियों को रटनेवाला पंडित अपने को काल से नहीं बचा पाता। ऐसा ज्ञान किस काम का ? अनुभवहीन जानियों पर बड़ी करारी

घोट है ।

कबीर के “पोयी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोइ” में भी यही-ध्वनि है ।

मुहेली = सुलभ > सुलह > मुहेली ।

दुहेली = दुर्लभ > दुल्लह > दुहेली ।

(५२)

अगर साधक का आसन दृढ़ हो जाए, आहार दृढ़ हो जाए और निद्रा दृढ़ हो जाए, तो गोरख का कहना है कि हे शिष्यो, सुनो ! (ऐसी स्थिति में वह साधक न तो मरता है और न बूढ़ा होता है ।

गोरख का कहना है कि साधक को कुछ नियमों से दृढ़ होना चाहिए । उसका आसन अविचल, आहार अल्प और निद्रा क्षीण होनी चाहिए । इन साधनों को साधते हुए साधक अजर-अमर हो जाता है ।

(५३)

हे ज्ञानी पंडितो ! (तुम बाह्याडम्बरों में) जुझकर क्यों मर रहे हो । वह परमपद अर्थात् वास्तविक आन्तरिक ज्ञान और ही है । उसको समझ लो । (इस आन्तरिक ज्ञान के बिना) आसन और प्राणायाम उपद्रव ही करते हैं । (बिना ज्ञान के ये आसन और पवन-निरोध) रात-दिन पच-पच मरने पर भी प्रारम्भ अवस्था में ही रहते हैं ।

गोरखनाथ आसन और प्राणायाम का सम्बन्ध आध्यात्मिक ज्ञान से मानते हैं । जो साधक बिना ज्ञान के अथवा बिना गुरु-निर्देश के योगासन और प्राणायाम इत्यादि करते हैं, इससे कोई लाभ नहीं । ये क्रियाएँ बहिर्मुखी हैं । अन्तर्मुखी तो ज्ञान है । परमपद की प्राप्ति उसी से होती है ।

(५४)

अधिक खाने से भी मरो, न खाने से भी मरो । गोरख कहता है कि हे पुत्रो संयम से ही तरो । निरन्तर मध्यम मार्ग में ही वास करना चाहिए । मध्यम मार्ग का अनुसरण करने से मन निश्चल और श्वास स्थिर हो जाता है ।

अतिवाद का विरोध और मध्यमवाद का समर्थन गोरखनाथ पर बौद्ध साधना का प्रभाव स्पष्ट करता है ।

‘मनुवा’ शब्द की ध्वनि द्रष्टव्य है । इससे मन की चंचलता लक्षित हो रही है । कबीर ने भी ऐसा प्रयोग किया है—‘मनुवा तो दहुँ दिसि फिर’ ।

(५५)

हे अवधूत ! अगर मन चंगा (शुद्ध) है तो कटीती में ही गंगा है अर्थात् जहाँ चाहो वहाँ गंगा विद्यमान है क्योंकि गंगा-सेवन से जो फल बताये गये हैं वे मन की शुद्धता से स्वयं प्राप्त हो जाते हैं । यदि माया के बन्धन में पड़े हुए मन को (अथवा जीब को) मुक्त कर दिया तो सारा जगत् चेला हो जाएगा । गोरख सत्य स्वरूप का

वर्णन करता है—जो उस तत्त्व का विचार करेंगे, वे स्वयं रूप और रेखा से रहित हो जाएंगे ।

“मन चंगा तौ कठौती हो गंगा” प्रसिद्ध कहावत बन गयी है ।

‘चंगा’ पंजाबी भाषा में चलता है । पंजाबी भाषा के अनेक शब्द गोरखनाथ की भाषा में मिल जाते हैं ।

कबीर ने भी शरीर शुद्धि की अपेक्षा मन की शुद्धि पर अधिक बल दिया था—

“काया माजसि कोन गुना, जो घट भीतर है निगुना ।”

यदि शरीर को ही स्नान आदि से शुद्ध कर लिया और मन में दूषित विचार भरे रहे तो व्यक्ति सदाचारी नहीं हो सकता । मन के शुद्ध और संयमित तथा पवित्र विचारों से सबल होने पर कठौती का जल ही गंगाजल है ।

(५६)

(सांसारिक ज्ञान प्राप्त कर मनुष्य ने) सीख-साख कर बुरा व्यवसाय किया, ऐसे ही जैसे किसी को स्वप्न में पड़ा हुआ धन मिला हो और उसने परख-परख कर आगे रख लिया हो । गोरखनाथ कहता है कि हे पुत्रो ! वास्तव में तो यह धन न खरा है न खोटा ।

धन तो है ही नहीं । वह तो मात्र स्वप्न है, फिर खरे छोटे का प्रश्न ही क्या ? सांसारिक ज्ञानियों की स्थिति भी ऐसी ही है । वे समझते हैं कि हम परख-परख कर ज्ञान संचित कर रहे हैं किन्तु यह सारा व्यवसाय ही गलत है, भ्रम है ।

बिसाह्या=व्यवसाय > व्यवसाया > बिसाया > बिसाह्या, व्यवसाय किया ।

खड़ीबोली का आधुनिकतम रूप इस सबदी में देखा जा सकता है । अन्य प्रतियों में इस सबदी का जो पाठ भेद मिलता है उसमें भी खड़ीबोली का स्पष्टतः रूप मिलता है । पाठ-भेद इस प्रकार है—

सीषी साषी बिसाया बुरा । नाथ कहै रे पूता छोटा न परा

सौषिबा सबद बिसायबा परा । डारिबा छोटा लेबा परा ।

(५७)

ज्ञान के समान गुरु नहीं मिला, चित्त के समान चेला नहीं मिला और मन के समान मित्र नहीं मिला । इसलिए गोरख अकेला फिरता है ।

गोरखनाथ इस सबदी में एकदम अन्तर्मुखी हो गये हैं । बाहरी गुरु, चेला और मित्र के स्थान पर आन्तरिक ज्ञान, चित्त और मन को महत्त्व दे रहे हैं । अगर इन तीन आन्तरिक शक्तियों में ध्यान केन्द्रित किया जाए तो बाहरी गुरु चेला और मित्र की कोई आवश्यकता नहीं । ये तीनों भी तो यही काम करते हैं, सम्भवतः कर भी नहीं पाते ।

‘साध न चलें जमात’ कहकर कबीर ने भी साधु संन्यासियों की भीड़-भाड़ को नकारा है । यहाँ गोरख ने भी अकेले फिरने की बात कहकर भीड़-भाड़ को नकारा है ।

पद

(१)

गोरख कहता है कि अपने शरीर रूपी घर को खोजो। (शरीर की आध्यात्मिक संरचना को समझो)। हे मेरे जानियो ! इस तत्त्व को कोई विरला ही समझता है। जिन्होंने इस सम्पूर्ण वन रूपी शरीर को खोज लिया है, उन्होंने परमात्मतत्त्व को त्रिगुणात्मयी माया से परे रखा है। इन्द्रियों को आसनों से उन्होंने अपने बस में रखा है। हे मेरे जानियो ! उन्होंने निरन्तर अतीत ब्रह्म को प्राप्त कर लिया है। उन्होंने मन में ही शरीर को तार लिया है। मन की यह स्थिर स्थिति आस्था से प्राप्त होती है। मन में कुम्भ अथवा कलश रस से भरा हुआ है। हे मेरे जानियो ! उन साधकों ने ही मन में अलक्ष्य ब्रह्म को देखा है, परन्तु हे भाई ! जिसने ऐसे पुरुष (ब्रह्म) को हृदय में पधराया, उसने पुरुष की परख कर ली। ऐसे पुरुष (ब्रह्म) से मिलकर ब्रह्मानन्द की रक्षा की। हे मेरे जानियो ! इसी प्रकार पुरुष (ब्रह्म) से पुरुष उत्पन्न हुआ। ऐसे शरीर रूपी घर में बिना चन्द्रमा और बिना सूर्य के उगे हुए ही उजाला हो जाएगा अर्थात् जो साधक अपने शरीर में ब्रह्म की स्थिति अनुभव कर लेता है, उसके ब्रह्मरन्ध्र रूपी घर में बिना सूर्य और चन्द्रमा के ही परमात्मा की दिव्य ज्योति अभिव्यक्त रहती है, अगर वहीं आसन लगाओ, तो सहजामृत का प्याला भर लो। मन के अन्दर का बिधा हुआ होरा (आत्म ज्ञान) साधक का प्राप्य है, वही उसका खाना-पीना है। मत्स्येन्द्र के प्रसाद से यती गोरख कहता है कि उस हीरे को देख-देखकर ही निर्मल रस प्राप्त होता है।

‘यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे’ के अनुसार गोरखनाथ की योग-साधना इस शरीर के अन्दर ही चलती है। उस साधना के मूल में रहता है मन। अगर मन स्थिर हो गया है, मन में ही शरीर की सारी संरचना समाहित हो गयी है, तो साधक ब्रह्मरन्ध्र के ब्रह्म को त्रिगुणात्मयी माया से अलग करके देख सकता है। वही साधक का अभीष्ट है।

जोई=खोजो। जोज्यौ=खोजा।

जहूँबा=सारा। तरियाली=त्रियाली=त्रिगुणी माया। जेण=जिसने। तैने=उसने। पै र जोई नै=परन्तु हे ! जिसने। नी=की। निपाया=निष्पन्न किया, उत्पन्न हुआ, मांहिला=मैंका, मध्यका, के बीच का।

भाषा की दृष्टि से इस पद पर राजस्थानी का प्रभाव है किन्तु सर्वत्र आकारान्तता मूल में खड़ीबोली की ही है।

(२)

अरे (स्वर्ण-लालसा में फँसे हुए लोगो) ! मेरी जात भी सुनार की है, मुझसे

आत्मानन्द अमृत रस रूपी सोना ले लो । मैंने श्वास-क्रिया की धौंकनी से इस रस को जमाया है । इसीलिए मुझे ब्रह्मरंध्र में महास्वर्ण रस मिल गया है (इस स्थिति में) मैं आप ही सोना हूँ, आप ही सुनार हूँ । (मेरी सोना बनाने की प्रक्रिया इस प्रकार होगी—) मूलाधार शक्ति अंगीठी होगी, अनहद नाद निहाई (अहरण) होगी, बिन्दु का हथौड़ा होगा । अशय रूपी जंगल और विषय रूपी कोयला होगा । इड़ा और पिंगला रूग दो नालियों से धीरे-धीरे फूँककर, इस प्रकार आकाश में बँठा-बँठा सोना गर्दूंगा । मैंने इड़ा और पिंगला (चन्द्र और सूर्य) दोनों को आसान कर दिया है । वे एक दूसरे में मिल गयीं हैं । एक रत्ती के काम में से एक मासे की चोरी करके जो रत्ती में से माँसा चुराता है और माँसा चुराकर फिर रत्ती में ही रहता है, वह इस प्रकार धन जोड़ता है । मेरे नीचे भी सोना, ऊपर भी सोना और बीच में भी सोना ही सोना है । जो साधक इन तीनों स्थानों की रहनी (स्वरूप) को जानता है, उस शरीर में पाप पुण्य नहीं रहते । मेरा मन तराजू के समान है, उन्मनावस्था तराजू की डंडी के समान है और प्राणवायु तोलने के छह माँसे के बाँट (गदियानां) के समान है । जब गोरखनाथ स्वयं ही तोलने के लिए बँठा, तब सोना सहज में समाहित हो गया ।

गोरखनाथ के समय तान्त्रिक साधक रासायनिक क्रियाओं से सोना बनाकर सामारिक व्यक्तियों को आकर्षित किया करते थे । गोरखनाथ ने उस अंशट, आसक्ति और मोह से मुक्त करने के लिए योग-साधना की क्रियाओं को ही सोना बनाने की क्रिया से रूपायित किया है । यहाँ ऐसा अर्थ नहीं लेना चाहिए कि गोरख का जन्म सुनार जाति में हुआ था । रूपक का निर्वाह गोरखनाथ ने बहुत अच्छा किया है ।

धमणि=धौंकनी । धमों=धमनियाँ=श्वास-प्रक्रिया । अहरण=अहरन, निहाई । घटिस्वू=गर्दूंगा । बईठा=बैठे-बैठे । अप=अशय । आरण=अरण्य । गदियांना=गद्याण, छह माँसे के बराबर की एक तौल ।

रत्ती का काम.....गरथ जोरै=पंचतत्त्वनिमित्त स्थूल शरीर ही रत्ती के बराबर (अल्प मात्रा में) है । मासा-परब्रह्म परमात्मा इसमें व्याप्त है ।

इसी स्थूल शरीर में परब्रह्म का अनुभव करते हुए हम जीवात्मा के रूप में निवास करते हैं । इस प्रकार साधक परमात्मा रूपी ध्वनि ग्रन्थित करता है, जोड़ता है ।

गम्भीर आध्यात्मिकता के वर्णन में भी गोरखनाथ की रोचक काव्यात्मिकता इस पद में द्रष्टव्य है ।

(३)

गुरुदेव और स्वयंभूदेव शरीर के भीतर ही हैं । सर्वोत्तम देवता है आत्मा । उसी की सेवा नहीं जानते हो । अन्य देवताओं को पूज-पूजकर व्यर्थ ही मरते हो । नवद्वारों (इन्द्रियों के नौ रंध्र) में नौ नाथ हैं । त्रिवेणी (त्रिकुटी) में जगन्नाथ हैं और दसवें द्वार (ब्रह्मरंध्र) में केदार नाथ हैं । अगर योग की यह सारयुक्ति समझ में आ

जाए तो गोरखनाथ विचारपूर्वक कहते हैं कि संसार से पार हो जाओ ।

गोरखनाथ को इस अन्तर्मुखी साधना का सर्वाधिक प्रभाव कबीरदास पर पड़ा है

‘कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहि

ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया देखै नाहि ।’

‘मन मन्दिर दिल द्वारिका, काया कासी जान

दम द्वारे का देहुग, तामें जोति पिछान ।’

स्यंभ = स्वयंभू शिव । आंन = अन्य । इमहीं = योही, व्यर्थ ही । भो = भव ।

(४)

हे मेरी मनसा (इच्छा) ! तुम अपना व्यापार बाँधो । प्राण पुरुष उत्पन्न हो गया है (इस प्रकार के प्राणायाम से) जगा हुआ जोगी अध्यात्म में लग गया है । उसे शरीर रूपा नगर में प्रवेश करना है । इक्कीस हजार छह सौ साँसे ही प्राण रूपी पुरुष को जयमाला है । यह प्राणवायु इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की नलियों में दिन-रात बहती रहती है । षटदल कमल अर्थात् स्वाधिष्ठान चक्र और षोडश दल कमल अर्थात् विशुद्ध चक्र जहाँ हैं वहीं ब्रह्मचारी (साधक) रहता है । नौ सौ नदियाँ (सम्पूर्ण नाड़ी जाल) पनिहारिन हैं । प्राणधारा से हंस (आत्मा) को सींचती हैं, जिससे आत्मा रूपी बेल पुष्पित होती है । गंगा के किनारे (इड़ा नाड़ी में) तर्बूज (शौचलता दायक ज्ञान) उत्पन्न हो जाता है । हे अवधूत धूम-धूमकर वाणिज्य करो । नीचे बहने वाले (अमृत) को ऊपर ले जाइए । चंद्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी का मेल कीजिए । ब्रह्मरन्ध्र में चंद्र और सूर्य दोनों नाड़ियाँ विलुप्त हो गईं और फलस्वरूप (बाह्यार्थों के लिए) घोर अंधकार हो गया । पाँचों सैनिक (पंचेन्द्रियाँ) जब नींद में सो गये तो प्राकार का फाँटक खुल गया । नगरी में चोर प्रविष्ट हो गये । (आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश हो गया) गोरखनाथ कहते हैं कि इस रहस्य को सुरक्षित रखो यह रहस्य मुझे तो सतगुरु ने बताया है कि मन योगपट्ट है और काया उसको गुदड़ी है ।

पाटण = नगर । इक्कीस सहस्र षटसाँ = इक्कीस हजार छह सौ (२१६००) प्रतिदिन बाहर-भीतर जाती हुई साँसों की संख्या २१६०० है । गोरखनाथ इन साँसों के साथ ‘सोहं हंसा’ का जाप ही ‘अजपा जाप’ मानते हैं । षटसाँ = षटदल कमल (स्वाधिष्ठान चक्र) षोड़ि = षोडश दल कमल (विशुद्ध चक्र) । नौ सै नदी = शरीर का सम्पूर्ण नाड़ी-जाल । मतीरा = तर्बूज । वाणिजां = वाणिज्य, व्यापार । रबि सस = सूर्य नाड़ी और चंद्र नाड़ी (इड़ा और पिंगला) । गगन = ब्रह्मरन्ध्र । विलुधा = विलुप्त हुआ । पच वाहक = पंच पदाति > पायक > बायक > वाहक, पाँच सैनिक (पाँच इन्द्रियाँ) । पोलि = पौरी । पगारं = प्राकार, परकोटा । बोगोटा = योगपट्ट । जोगोटा एक प्रकार का वस्त्र है, इसे योगी अपने कंधे पर रखता है और ध्यान करते समय इससे सिर से पैर तक, पूरा अंग ढक लेता है । मलाया = छूटे हुए, प्रविष्ट हुए ।

शरीर रूपी नगरी और ब्रह्मरंध्र रूपी किले का रूपक आगे चलकर सूफी साधकों में विस्तार से देखा जा सकता है।

(५)

अवधूत ने विचार कर जो तत्त्व कहा है, वह शरीर में सुरति का समाना है। दूसरी ओर यह तत्त्व संसार के लिए बकवास है। (आगे पूर्णिमा और अमावस्या को मिलाकर सोलह तिथियों के बहाने योग का वर्णन किया गया है।)

पड़वा ; यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अष्टकुल पर्वत बिना जल के हो तैर गये। दोज ; मन और पवन के संयम से सूर्य, चन्द्रमा और तारे छिप गये हैं फिर भी अगम ज्योति प्रकट हो गयी। तोज ; त्रैगुण्य के परिवार का राज्य नहीं रहा। चोष ; जगत् में सिद्धि बज रही है। पंचमी ; सहस्रार में स्थिति हो गयी। छठ ; प्रवृत्ति उलटी (अन्तर्मुखी) हो गयी। सप्तमी ; दीप बल उठा है। अष्टमी ; कुण्डलिनी शक्ति जग गयी। नौमी ; नौ खण्ड पृथ्वी और इक्कीस ब्रह्माण्ड (शरीर के ही) भीतर हैं। (दशमी का उल्लेख बाद में है।) एकादशी ; एकतार समाधि लगी हुई है। द्वादशी ; इड़ा और पिंगला का त्रिकुटी में मेल हो गया। तेरस का उल्लेख नहीं है। चौदस ; चित्त लीन हो गया है। पूर्णिमा अथवा अमावस्या) षोडश दल कमल (विशुद्ध चक्र के सिद्ध होने से बत्तीसों लक्षण प्राप्त हो गये तथा जरा-मरण एवं भव-भीति नष्ट हो गयी। दसमी ; दसवें द्वार में निरंजन ने उन्मनावस्था में बास किया और उलटकर उत्पत्तिकारक शब्द में समा गया। मत्स्येन्द्र नाथ का पुत्र गोरख कहता है कि इस प्रकार अविचल और स्थिर हो गया।

तिथियों के बहाने योग साधना का वर्णन करने का अभिप्राय अन्तर्मुखी वृत्ति की ओर उन्मुख करना ही है। बकबाली=१ बंक बली=सुरति का समाना, २ बकवास। अष्टकुल पर्वत=डा० बड़धवाल लिखते हैं—“महाभारत के अनुसार कुंज पर्वत सात ही हैं—महेन्द्र, मलय, सत्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विष्णु और पारिपात्र। संभवतः योग मार्ग वालों ने हिमवत् को भी उसमें जोड़ा हो। हिमवत् का योगियों में बड़ा महत्त्व माना जाता है।”

अदबुद=अद्भुत। बाई=बज रही है। षट=षोडश। दल कमल=विशुद्ध चक्र। तारी=समाधि। यला=इड़ा। सबदै उलटि समाना=साधक को उत्पत्ति शब्द से होती है और उन्मनी समाधि के द्वारा वह उलटकर शब्द में ही समा जाता है।

(६)

रामते राम (परब्रह्म) से चौगान का खेल खेलो। अभिमान में क्यों भूलते हो। पृथ्वी और आकाश के बीच कोई अन्तर नहीं। यह अभेद-दृष्टि ही मुक्ति का मैदान है। एक (परब्रह्म) में ही अनन्त सृष्टि का बास है। और अनन्त सृष्टि में एक ही परब्रह्म का निवास है। एक परब्रह्म से ही अनन्त उत्पन्न हुआ है। अगर अंतस में उस एक से परिचय हो गया तो अनन्त भी उस एक में समा गया। अनाहत नाद

अहरन है, बिन्दु (शुक्र) हथौड़ा है और इड़ा-पिगला नाड़ियाँ हवा करने की धौकनी है। मूलाधार को दबाकर जब दृढ़ आसन से बैठता तो आवागमन मिट गया। सहज की जिन, पवन का घोड़ा, लय की लगाम, चित्त का चावुक, चेतना (आत्मा) को सवार तथा ज्ञान को गुरु बनाकर और सब उपायों को छोड़ दो। मैंने त्रिभुवन छान डाला किन्तु परब्रह्म तिल की ओट में रहा। जब विघाता में तल्लीनता का भाव उत्पन्न किया तो फिर मैं स्वयं वही हो गया, जिसको कि दूँदने जाता था। जब मैं कहता हूँ कि परब्रह्म है तो कोई विश्वास नहीं करता। किन्तु बिना अस्तित्व के अनंत सिद्ध कैसे सिद्ध होते रहे? गोरख कहता है कि हे मत्स्येन्द्र ! हीरे से हीरा बेघा जाना है। आत्मा से परमात्मा को इसी शरीर में प्राप्त किया जाता है।

गोरखनाथ ने पूरे आध्यात्मिक जीवन को एक चौगान के खेल से रूपायित किया है। यह खेल घोड़े पर चढ़कर होता है और लकड़ी के बल्ले से गेंद को उछाला जाता है।

उपाया=उत्पन्न हुआ। पाला=खाल=धौकनी। दबका=उपाय। नाकें=ओट में। संघ्या=संघान किया, छान डाला। भाव=तल्लीनता।

कारूप की मंगला और कमला की रूपायित में मुग्ध गुरु मत्स्येन्द्रनाथ से गोरखनाथ यह कहना चाहते हैं कि काया के राज्य में भ्रमण न कर आत्मा के राज्य में विचरण करना चाहिए।

‘सौ तो फिर.....दूँदने जाता।’ ऐसा ही भाव कबीर में यत्र-तत्र मिल जाता है—“लाली दूँदने मैं गई मैं भी हो गई लाल।”

(७)

मेरा मन तो ऐसा विश्वास करता है कि तत्त्व का वाणिज्य करो, केवल तत्त्व का वाणिज्य करो। गोरखनाथ सहज ज्ञान का वाणिज्य करता है। पाँच (ज्ञानेन्द्रियाँ) बेल हैं और नव (रंघ) गायें हैं। (इनके लिए) सहज भाव का घर (बाखर) बनाया गया है। मेरे मन में (वाणिज्य के प्रति) उत्साह भर गया है। मैं मुरहट (बहुत ऊँचे) घाट (स्थान) का बनजारा (व्यापारी) हूँ। हमारा प्रसारण (Export) शून्य है। (बेचने की सामग्री शून्य है अर्थात् शून्य परब्रह्म है।) हमारा वाणिज्य ऐसा है कि मैं न तो लेना जानता हूँ और न देना जानता हूँ। मत्स्येन्द्रनाथ का पुत्र गोरखनाथ कहता है कि ऐसे वाणिज्य का अर्थ यह है कि गुरु के वचनों को साथ लेकर अपनी करनी से पार उतर जाओ।

भाषा की दृष्टि से ‘अम्हे’, ‘एद्दा’ तथा ‘ना’ रूप द्रष्टव्य हैं।

(८)

हमारा तो बैरागी जोगी (मन) रात-दिन भोग में निरत रहता है। वह कभी भी जोगिन (महामाया कुण्डलिनी) का साथ नहीं छोड़ता। मानसरोवर (मन) में मनसा (इच्छा) झूलती आती है मस्त हो जाती है। और गगन मंडल (ब्रह्मरंघ) में मद्दी बना लेती है। (योगी से प्रश्न किया गया कि) हे योगी (मन) ! तेरे साथ-

ससुर किस स्थान के हैं, किस स्थान पर तेरा निवास-स्थान है, किस स्थान पर तेरे द्वारा जोगिन से भेंट हुई और तुझे रहने का स्थान कहाँ मिला ? (योगी मन उत्तर देता है) नाभि (मणिपूर चक्र) स्थान के मेरे सास और सुसर हैं तथा ब्रह्मस्थान (ब्रह्मरंघ) मेरा निवास-स्थान है। इड़ा-पिंगला के माध्यम से मैं जोगिन से मिला और सुषुम्ना में मुझे निवास मिला। काम-क्रोध को जलाकर घूना कर दिया और कामदेव को कपूर। मन और पवन दोनों को कल्या और सुपारी तथा उन्मनी अवस्था को सिंदूर का तिलक बना दिया। ज्ञान और गुरु हमारे दो तूम्हे हैं तथा तेचन इच्छा तूम्हे की डंडी है। उन्मनावस्था की ताँत बजने लगी। इस प्रकार (मैंने) तृष्णा को खण्डित किया। इस प्रकार सतगुरु ने हमारा परिणय बालकुमारी नारी से करा दिया। मत्स्येन्द्र के प्रसाद से गोरख कहता है कि (इस प्रकार महामाया कुण्डलिनी से परिणय हो जाने पर) माया का भय ही टल गया।

भाषा की दृष्टि से 'मांहरा', 'तून', 'मिल्या', 'क्रीधा', 'अम्हारे' आदि रूप पुराने हैं, जो गोरखनाथ की प्राचीनता सिद्ध करते हैं।

कीधा=किया। काथ=कल्या। तूवा=तूम्वा=वाद्य-यन्त्र। परणांव्या= विवाहित कर दिया। बाली=जलाकर।

कर्मवाच्य के प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

योगियों के साथ जोगिनें भी रहने लगी थीं और योगियों की साधना में विकृति आने लगी थी। गोरखनाथ उस विकृति को रोकने के लिए जोगिन की कल्पना शरीर के अन्दर ही करते हैं। रूपक द्रष्टव्य है।

(६)

माया रूपी तत्त्व बेल को ली। हे अवघूत ! (इस माया रूपी बेल को) गोरखनाथ ने जान लिया है। इस बेल को न तो डाल है, न जड़ है। न पुष्प है और न छाया है। बिना पानी के वृद्धि करती है। (माया का स्वरूप निश्चित नहीं है।) हे अवघूत ! कायाकुंज में तेरी बाड़ी है, जिसमें सद्गुरु ने यह तत्त्वरूपी बेल रोपी है। पुरुष (पवन) इसकी बहुत सिचाई करता है इसीलिए अच्छी बाल घर लाता है। इसका मूल ऐसा है, जैसे शशधर (चन्द्रमा), पत्ते ऐसे हैं जैसे सूर्य। (माया का मूल सहस्रार में स्थित चन्द्रमा में है।) मूलाधार चक्र (सूर्य) में उसका पूर्ण विकास है। फल इसका ऐसा है, जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा। इसको जो-जो जानते हैं, वे जानवान् हैं। (माया का फल सहस्रारस्थ अमृतमय चन्द्रमा है।) इस बेल में जब (सांसारिक दुःखों की) आग लगती है तो उसकी लपटें आकाश तक पहुँचती हैं। जैसे-जैसे बेल जलने लगती है, वैसे-वैसे इसकी डालों में कोंपलें निकलने लगती हैं। (सांसारिक दुःखों से माया और अधिक उद्दीप्त होती है।) काटने पर भी बेल में कोंपलें लगती हैं। (माया पर बलात् अधिकार नहीं किया जा सकता।) यह सींचने से कुम्हलाती है। (ज्ञानामृत चन्द्र-साव के द्वारा सींचने से माया नष्ट हो जाती है।) मत्स्येन्द्र के प्रसाद से जती गोरख कहता है कि यह माया नित्य नवीन रूप में हो

स्थित रहती है ।

बिराधि=वृद्धि । बाड़ी=जिस खेत में ककड़ी, खरबूज आदि की बेलें होती हैं, उसे बाड़ी कहते हैं । पांणती=मिचन । घणियांणी=अधिक । नोकै=अच्छी-खासी । आंणी=आनय=लाता है । दौं=दावागि । पहुँती=तक । जाला=लपट । दाज्ञवा लागी=जलने लगी । मेलहै=निकलती हैं ।

‘डा’ प्रत्यय की बहुलता प्रस्तुत पद पर राजस्थानी प्रभाव लक्षित कर रही है । संधा भाषा तथा उलटबांसी का रूप देखा जा सकता है ।

(१०)

सुजान ज्ञानवान् गोरख ब्रह्मज्ञान कहता है । हे पंडितो ! इस ब्रह्मज्ञान को समझो ? (ब्रह्मज्ञान यह है कि) इसकी उत्पत्ति बिना बीज के हुई है, वह बिना मूल का वृक्ष है, वह बिना पत्तों और फूलों के फल जाता है । (अर्थात् प्राकृतिक नियमों से बँधा नहीं है ।) वह ब्रह्मा का बालक है (अर्थात् अजन्मा है ।) लँगड़ा होते हुए भी वृक्ष पर (ब्रह्मरंध्र में) चढ़ा हुआ है । वह बिना आकाश का चन्द्रमा, बिना ब्रह्माण्ड का सूर्य और बिना मैदान का युद्ध है । इस परमार्थ को जो मनुष्य जानता है, उसके शरीर में परम ज्ञान हो जाता है । वह न शून्य है न स्थूल, न उसके चित्त है न उसको पूरा ही है । बिना शब्द के अनाहतनाद का गर्जन होता है । बिना बाड़ी के पुष्प है और बिना पुष्प के सौरभ है । बिना वायु के भौरों का समूह शोभा दे रहा है । वह राहु के बिना ग्रस लेता है । अग्नि के बिना जला देता है; बिना आकाश के तालाबों को भर देता है । हे ऋग्, यजुः साम और अथर्व वेदों को पढ़े हुए पंडितो ! इस परमार्थ का वर्णन करो । यह स्वसंवेद्य स्वयं प्रकाश सोहंभाव है जो न धरती में है, न आकाश में है और न जल में है । गुरु मत्स्येन्द्र के प्रसाद से गोरखनाथ गंगा (इडा) और जमुना (पिंगला) के बीच (सुषुम्ना) में खेल रहा है ।

नाथसिद्धों में उलटबांसियों के प्रयोग का एक कारण विद्वान् पंडितों को परास्त करने की भावना भी रही है । वह गूढ़ वर्णन जो पंडितों की समझ में भी न आवे । उनके किसी वेद में भी उसका बखान न हो ।

केरा=का । बालुड़ा=बालक । प्यंगुल=लंगड़ा । झूझ विन रचिया थान=बिना मैदान के रचा हुआ युद्ध । साइर=डा० बड्थवाल का कहना है कि संभवतः यह शब्द ‘सौरभ’ अथवा ‘सौंह’ होगा, ‘साइर’ का तो अर्थ नहीं बैठता । छाजे=शोभा देता है । गिलिया=ग्रसित हुआ । आदं=१. आद्रं=जलमय, २. आदि (प्रारंभ) ।

इस उलटबांसी को अगर सीधा करके देखा जाए तो भाव इस प्रकार होगा—अलख-निरंजन की उत्पत्ति नहीं होती, यह निर्बीज है । जिसकी उत्पत्ति बीज से है, वह स्वसंवेद्य नहीं हो सकता । यह निर्मूल है, ऐसा चैतन्य वृक्ष है, जिसका मूल नहीं है अथवा मूलमाया प्रकृति से इसकी उत्पत्ति नहीं है, मूल माया तो इसका स्वयं उपाश्रय करती है । हमारी नाभि में अग्निरूपी द्वादशकला का सूर्य है और तालुमूल

अथवा महस्रार के मूल में योनी नाम के त्रिकोण चक्र में सोलह कला-वाला चन्द्रमा है। योगी विपरीत कर्णी मुद्रा के द्वारा सूर्य का ऊर्ध्वमुख और चन्द्रमा को अधोमुख कर देते हैं, इस सूर्य द्वारा अमृत का भक्षण नहीं हो पाता। यही चन्द्रमा के घर में सूर्य का चढ़ना है।

(११)

गोरखनाथ कहते हैं कि मैं दसवें द्वार (ब्रह्मरंध्र) में स्वर्ग और मोक्ष-पद तक चढ़ गया हूँ। इक्कीस ब्रह्माण्डों के ऊपर से स्वसंवेद्य या सूक्ष्मवेद का उच्चारण कर रहा हूँ। सूर्य की बारह कलाओं में शक्ति का निवास है और चन्द्रमा की सोलह कलाओं में शिवस्थान है। मूलाधारस्थ सूर्य सहस्रारस्थ चन्द्रमा में मिल गया और शिव-घर (ब्रह्मरंध्र) में जीव की उत्पत्ती अवस्था हो गयी। फलस्वरूप वह अचल ध्यानस्थ हो गया। गंगन (त्रिकुटी) में अनाहतनाद का गर्जन हो रहा है। पश्चिम (सुषुम्ना) में सूर्य उदय हो गया है। (इडा की प्राणवायु पिंगला से मिलकर सुषुम्ना में बहने लगी है।) दक्षिण (मूलाधारस्थ) की डिविया (शक्ति) उत्तर (ब्रह्मरंध्र) में नाच रही है। पाताल (स्वाधिष्ठान) का खिंचाव पूर्व (सहस्रार) की ओर हो रहा है। चंद्र और सूर्य (इडा और पिंगला) दोनों नाडियों को मूंद दिया। यही मुद्रा-धारण है। पृथ्वी का भस्म (अर्थात् शरीर की सांसारिकता) जल में मिला दी। (अर्थात् बिन्दु-रक्षा हो गयी।) इस प्रकार नादी, बिन्दी, सिमी और आकाशी अलक्ष्य गुरु के चले हो गये। यह कंथी (शरीर) तीन सौ साठ थेगलियों (३६० हड्डियों) की बनी हुई है। इक्कीस हजार छह सौ (साँसें ही) तागे हैं (जिनसे थेगलियाँ सिली हुई हैं।) बहत्तर नाडियाँ ही बहुत सारी सुइयाँ हैं। बावन बीर (चेतन) इस शरीर रूपी कंथी को सीने में लगा हुआ है। इडा को सोधकर, पिंगला में मिलाकर सुषुम्ना के मार्ग से आकाश में चढ़ जाओ। मत्स्येन्द्र के प्रसाद से जती गोरख ने निरजन की सिद्धि का स्थान बताया है।

नै=और। इक्कीस ब्रह्माण्ड=इक्कीस ब्रह्माण्ड। सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में सप्तपाताल सहित इक्कीस ब्रह्माण्डों का वर्णन है, जो हमारे शरीर के अंग-प्रत्यंग में स्थिति हैं—पैर में पाताल, अंगुष्ठ के अग्रभाग में तलातल, पैर के ऊपर पृष्ठभाग में महातल, गुल्फों में रसातल, पिण्डलियों में सुतल, घुटनों में वितल, जाँघों में अतल मूलाधार में द्युलोक, लिंग स्थान में भुवलोक, नाभिस्थान में स्वर्लोक, मेरुदण्ड के मूल में महर्लोक, मेरुदण्ड के कुहर में सत्यलोक, मेरुदण्डनाल में तपोलोक, मूलाधार-चक्र में सत्यलोक, नाभि प्रदेश में विष्णु लोक, हृदय में रुद्रलोक, वक्षः स्थल में ईश्वर लोक कण्ठ में नीलकण्ठलोक, तालुद्वार में शिवलोक, जिह्वामूल में भैरवलोक, ललाट में अनादिलोक, मस्तक में कुलेश्वर देवलोक, शंखनाड़ी के ऊपर अकुलेशलोक, ब्रह्मरंध्र में परब्रह्मलोक, ऊर्ध्व कमल सहस्रार में परमेश्वरलोक, त्रिकूटस्थान में शक्तिलोक।

सप्तमवेद=स्वसंवेद या सूक्ष्मवेद। आचार्य द्विवेदी जी का कहना है कि स्वसं-वेदन ज्ञान ही सूक्ष्मवेद है—शब्दरूप में भी और अर्थ रूप में भी, परन्तु नाथयोगी

प्रणव या ओंकार को ही सुक्ष्मवेद मानते हैं ।

गेर्ष=गगन । भाण=भानु । ताण<तनाव, खिंचाव । नीं=की । नाद्री, व्यंटी, सींगी, आकासी=योगी चार प्रकार के कहे गये हैं—नाद्री, बिंदी, मींगी आकाशी । जो अनाहद नाद के अनुसन्धान को प्रधानता देते हैं वे नाद्री ; जो बिन्दु (शुक्र) की रक्षा को प्रधानता देते हैं वे बिन्दी ; जो अनाहद नाद के प्रतीक स्वरूप शृंगीनाद बजाते हैं वे सिंगी और जो आकाश अर्थात् त्रिकुटी को लक्ष्य किये रहते हैं वे आकाशी कहे जाते हैं । गोरखनाथ ने बाहरी साधना की अपेक्षा इन चार प्रकार की साधना का विधान पिण्ड के अन्दर ही किया है ।

कंथी=योगी के वस्त्रों में सर्वप्रथम है कंथी । गोरखनाथ योगी की बाहरी वेवभूषा पर विश्वास नहीं करते । उनका कहना है कि यह शरीर ही कंथा है, हड्डियाँ ही थैली हैं, साँसे ही तागे हैं और नाड़ियाँ ही सुइयाँ हैं ।

(१२)

गोरखनाथ ग्वाला है । वह आकाश मण्डल (ब्रह्मरंध्र) की गाय (ब्रह्मानुभूति) को दुहकर पीता है । मट्ठे (निस्सार वस्तुओं) को मथ कर अमृत रस को पीता है । वह अभय से लगा हुआ जीता है । ममत्व के बिना माँ (माया) शर गयी और पिता (अहंकार) के बिना बच्चे (पट्रिपु) भी मर गये (इस प्रकार) बिना जाति का लाल ग्वाला रात-दिन गाय चराता रहता है । (इन्द्रियों को संयत किये रहता है । अनाहद शब्द का संख बजाकर उसने काल की बड़ी सेना का दमन कर दिया है । इसलिए शरीर के भीतर ही आकाश मण्डल में सहज रूप से स्वामी (परब्रह्म) मिल गया है । हमारे घर के दरवाजे पर ऐसी गाय बँधी है जिसे हमने आकाशमंडल में प्राप्त किया है । सारा परिवार (भन सहित सम्पूर्ण इन्द्रियाँ) इसी गाय से लगा रहता है । निरन्तर बाँधता रहता है । यह गाय कान, पूँछ, सींग और रंग रहित है । मत्स्येन्द्र के प्रसाद से यती गोरख कहता है कि वह तो वहीं (ब्रह्मानुभूति में) लो लगाये रहता है ।

प्रस्तुत पद से, नाथपंथियों के द्वारा गायों का पालना तथा एक समुदाय से दूसरे समुदाय पर गाय प्राप्त करने के लिए आक्रमण करना लक्षित होता है । गोरखनाथ ने सभी प्रकार के बाहरी भटकावों से रोककर साधक को पिण्ड के अन्दर ही केन्द्रित करने का प्रयास किया है ।

मही=मट्ठा । अनभै=अभय । जीजै=जीता है । माइ=माँ, माया । छोरू=बच्चे (ब्रज छोरा) । गोरू=गाय (इन्द्रियाँ) । गावत्री=गाय । साधी=लब्ध लव्त्री, लाधी । रहै ल्यो लाई=लो लगाये रहता है ।

आध्यात्मिकता को स्पष्ट करने के लिए काव्यात्मक रूपक द्रष्टव्य है ।

(१३)

हे अवतृत ! ऐसा ज्ञान विचारों, जिसमें ज्योति का झिलमिल प्रकाश हो । जहाँ योग है वहाँ रोग नहीं व्यापता । ऐसा परख कर गुरु करना चाहिए (कि सही

योग सिखा दे) अगर शरीर और मन से पूर्ण परिचय नहीं है (इनकी संरचना और आध्यात्मिक स्वरूप को नहीं समझा है) तो (योगाभ्यास के नाम से) पच मरने से क्या लाभ ? अगर पूर्ण गुरु नहीं मिलता है तो किसी को भी (पग्वार को त्याग कर योगी बनकर) अपने कुल का नाश नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसी स्थिति में न तो काल ही मिटा न जजाल ही छूटा और न तप करके साधक शूर ही हुआ (अधूरे गुरु को पाकर साधना भी पूरी नहीं हुई और घर भी छूट गया—घोब्री का कुत्ता न घर का न घाट का।) यह शरीर सात घातुओं का पित्रा है, उसमें युक्ति को न जानने वाले तोते के समान जीव बन्द है। सतगुरु मिले तो उद्धार हो, नहीं तो नाश हुआ समझो। शरीर का सौन्दर्य कामदेव के समान है, इसे व्यर्थ ही क्यों उलीचते (फेंकते) हो—नष्ट करते हो। गोरख कहता है कि हे मूर्ख ! अरंडी (के पीधे) को अमृत से क्यों सींचते हो ?

गोरखनाथ का कहना है कि योग-साधना में उन्हीं को आना चाहिए जिन्हें अच्छा गुरु मिल जाए और तन-मन के परिचय में रुचि हो। अधूरी साधना से तो गृहस्थ जीवन अच्छा।

सात घात=सात घातुएँ शरीर के अन्दर रहती हैं, जैसे—रस, रक्त, मांस मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। बावू=साधु-संन्यासियों के लिए आदरसूचक शब्द। इसकी उत्पत्ति हिंवाबा से है। आज के क्लक अथवा फेशनेबुल व्यक्ति के लिए प्रयुक्त 'बावू' शब्द की ध्वनि यहाँ नहीं है। गोरखनाथ ने 'बावू' शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी किया है।

मंडण=साज-सँवार करना। अँबिरा=व्यर्थ। अरंड=एरंड

(१४)

निरंजन नाथ की दुहाई है कि मैं न कहीं जाता हूँ और न कहीं आता हूँ। (मेरा आवागमन मिट गया है।) पिण्ड में ब्रह्माण्ड को खोजते हुए मैंने सब सिद्धि प्राप्त कर ली है। शरीर रूपी गढ़ के अन्दर नौ लाख खाइयाँ हैं। (नवरंघ ही नौ लाख खाइयाँ हैं।) हे अवधूत ! दसवें दरवाजे पर ताला लगा हुआ है। इस शरीर रूपी गढ़ के भीतर ही देव, देवालय तथा काशी जैसे तीर्थ हैं। वहीं मुझे अविनाशी परमात्मा सहज स्वभाव से मिले हैं। गोरखनाथ कहता है कि हे नर लोगो ! काया गढ़ को कोई बिरला ही जीतेगा।

शरीर को गढ़ का रूपक जायसी आदि सूफी संतों ने भी दिया है। दसवें... लार्ड=ब्रह्मरंघ में समाधि लगानी चाहिए।

'जीतंगा, क्रिया में 'ग' वाला रूप खड़ीबोली का है।

(१५)

हे अवधूत ! हमारा नगर ऐसा कि (वहाँ एक द्वार है) वहाँ जो द्वार है, उसे खोजो। गोरखनाथ विचार करके कहता है कि (इस नगर में श्वास-प्रश्वासों का) नीचे-ऊपर बाजार सजा हुआ है। प्राणों के स्वामी हरि वहाँ के राजा हैं, विचार

काजी है, पंचतत्त्व बजीर हैं, मन-पवन दोनों हाथी-घोड़ा हैं और ज्ञान अक्षय भण्डार (कोष) है। हमारे शरीर की ही शहर समझिए। मन को बजीर समझिए। चेतना पहरेवाला कोतवाल समझिए। इसलिए चोर दरवाजा भी नहीं झाँक सकता। तीन सौ साठ हड्डियाँ रूपी पत्थरों से यह गढ़ बना हुआ है। सोलह खाइयाँ (शरीर के सोलह आधार) खुदी हुई हैं। नौ दरवाजे तो प्रकट रूप से दिखाई देते हैं किन्तु दसवाँ नहीं देखा जाता। एक हजार बाठ सौ सेर का काष्ठपंजर किले पर लगा हुआ है। वह त्तार कोठड़ियाँ बनाई गयी हैं। नौ दरवाजों पर व्यवस्था के लिए यन्त्र फिरता है। इसलिए कायागढ़ (किसी के द्वारा) लिया नहीं जा सकता। घंटा बजाने वाला अनहद रूपी घड़ी को बजाता है। परम ज्योति के दो दीपक (सगुण और निर्गुण ज्ञान) जल गये। काम और क्रोध दोनों की गर्दन मारी गयी। बाबा आदम ने ऐसी वादशाही हुकूमत चलायी। वहाँ सत्य रानी, सन्तोष शाहजादा तथा क्षमा और भक्ति दो दाइयाँ हैं। आदिनाथ के नाती, मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र गोरखनाथ ने ऐसी काया रूपी नगरी बसायी है।

राजा के नगर और गढ़ी का सुन्दर रूपक वर्णन है।

तीनसौ साठ चौरा = तीन सौ सप्त पत्थर, नाथयोगी शरीर में तीन सौ साठ हड्डियाँ मानते हैं। सोलह पाई = शरीर के सोलह आधार हैं—पाँव का अँगूठा, मूल गुदा, मेढ़, उड्डियान, नाभि, हृदय, कंठ, घटिका, जिह्वा मूल, तालु, ऊर्ध्व दंतमूल नासिकाग्र, नासिकामूल, भ्रूमध्य, ललाट और नेत्र। ये ही सोलह खाइयाँ हैं।

भार = एक तौल जो बीस पसेरी की होती है। कठजरा = काष्ठपंजर > काष्ठपंजर > कठंजर > कठजरा। सुत्र = व्यवस्था।

प्रस्तुत पद में अरबी-फारसी की शब्दावली द्रष्टव्य है।

(१६)

श्री गोरखनाथ जोगी सत्य-सत्य कहते हैं कि हमें तो मस्त रहना है। जिसने गुरुमुख शिक्षा के द्वारा अलक्ष्य पुरुष (ब्रह्म) को पहचाना है, हमें तो उसी के साथ रहना है। सतयुग में पहला युग रचा गया। एक विषघर उत्पन्न हुआ। हे अवधूत ! ज्ञान रहित गण और गन्धर्व—सभी उसने डस लिये। त्रेता युग में दूसरा युग रचा गया। राम ने रामायण (अपने चरित्र) का प्रकाश किया। तर-बंदर सब लड़-लड़कर मर गये, उन्होंने भी ज्ञान को नहीं पहचाना। द्वापर युग में तीसरा युग रचा गया अधिक आडम्बर एवं दायित्व के कारण कीरव और पाण्डव लड़-लड़कर मर गये। नारद ने संहार कर दिया। महाभारत की पारस्परिक कलह के लिए नारद जिम्मेवार हैं। कलयुग में चौथा युग रचा गया। सब आचार-विचार नष्ट हो गये। घर-घर में झुन्दी और घर-घर में वादी (विवाद करने वाले) हो गये। घर-घर में कहानी कहने वाले (मिथ्या प्रलाप करने वाले) हो गये। चार युगों में चार युग स्थापित हुए किन्तु ज्ञान निरालम्ब ही रहा। (ज्ञान का अवलम्ब किसी ने नहीं लिया।) मत्स्येन्द्र के प्रसाद से यती कहता है कि कोई विरला ही (ज्ञान के क्षेत्र में) पार उतरता है।

ज्ञान के लिए युग विशेष का कोई महत्त्व नहीं। उसके लिए तो अपने में मस्त रहना आवश्यक है। अगर अहंकार एवं आडम्बर-प्रसित रहे तो परिणाम युद्ध और संहार ही होगा, चाहे वह कोई भी युग हो।

(१७)

मन लगाकर ऐसा जाप जपो कि 'सोऽह सोऽह' के द्वारा अज्ञात जाप गाया जा सके। हठ आसन कर ध्यान धरो। दिन-रात ब्रह्मासन का स्मरण करो। निद्रा में भी जागते रहो (जगत् की ओर सोकर अद्यात्म की ओर जागो)। भोजन थोड़ा करो। काम, क्रोध, और अहंकार का निवारण करो। नासाग्र तक जो अपनी वायु है इड़ा और गिंगला में समाई हुई है। जब इन्कीस हजार छह सौ साँसें ही जाप बन जाती हैं, तो अनहद नाद अपने आप ही उत्पन्न हो जाता है। सुषुम्ना (बंकनालि) में सूर्य उदय हो जाता है। और रोम-रोम में तुरी की ध्वनि बजने लगती है। (सहस्रार ही से चेतन तत्त्व नीचे की ओर गया है। योगाभ्यास में वह फिर) उलट कर सहस्रार ही में बास पा जाता है और भ्रमर-गुफा (ब्रह्मरंध्र) में ज्योति का प्रकाश हो जाता है। शिव रूप गोरख कहता है कि हे मथुरा ! ऐसे साधु ही इस परमतत्त्व को प्राप्त करते हैं।

(१८)

हे पंडितो ! कैसे बताऊँ कि देवता किस स्थान में रहता है ? निज तत्त्व को देख लेने पर हम और तुम नहीं रह जाते। पत्थर के मन्दिर में पत्थर के देवता की प्रतिष्ठा करते हो। फिर तुम्हारे अन्दर स्नेह का प्रस्फुटन कैसे हो सकता है ? तुम सजीव फूल पत्तियों को तोड़कर निर्जीव मूर्ति को पूजते हो। इस प्रकार पाप की करनी से दुस्तर संसार को कैसे तर सकते हो ? तीर्थ में स्नान करते हो। बाहर घोने से जल भीतर प्रवेश करके आत्मा को कैसे निर्मल कर सकता है ? आदिनाथ का नातो (शिष्य) अथवा मत्स्येन्द्रनाथ का पुत्र (शिष्य) गोरख केवल निज तत्त्व का दर्शन करता है।

'पत्थर का देवता नहीं पसीजता' मुहावरे का प्रयोग गोरख ने अपने ढंग से किया है।

गोरखनाथ ने इस पद में बाह्याडंबरों का खण्डन कर आत्मिक शुद्धि पर बल दिया है। इस प्रकार के बाह्याडंबरों का खंडन कबीर ने भी खूब किया था।

"मोकों कहाँ ढूँढ़े बंदे मैं तो तेरे पास में।

ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना कावे कैलास में।

"निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें नाहीं"—निराकार-निर्गुण सर्वव्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप का बोध हो जाने पर, निज तत्त्व की व्यापकता का सर्वत्र ज्ञान हो जाने पर, 'मैं' और 'तुम' का भेद समाप्त हो जाता है, उसी स्वरूप दर्शन में अन्तर्लीन हो जाता है।

कबीर की दो पंक्तियाँ भाव-साम्य के लिए उल्लेखनीय हैं—

“तीरथ में तो सब पानी है, होवे नहीं कछु अन्हाय देखा ।
प्रतिमा सकल तो जड़ है भाई, बोलें नहीं बोलाय देखा ।”

(१६)

हे पंडित ! (योगी के यहाँ) जन-जन से वाद (शास्त्रार्थ) नहीं होता । अवधूत बही है जो अनबोला है । पत्ते में ब्रह्मा, कली में विष्णु और फल में रुद्र देवता (महादेव) हैं । (देवता पर चढ़ाते समय तुमने) तीन देवताओं का छेदन किया । फिर तुम किसकी सेवा करते हो ? एकदंडी, द्विदंडी, त्रिदंडी भगवान हुए । विष्णु का उन्होंने पार नहीं पाया, तीर्थों में भ्रमण कर-कर मर गये । एक कालमुख, जटाधारी, लिगोपासक शैवयोगी हुए । महादेव का उन्होंने पार नहीं पाया, राख पोत-पोत मर गये । चार महाधुरंधर (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) तथा बारह उनके चेले (नारद, जनक, याज्ञवल्क्य, लोमश, मार्कण्डेय, व्यास, वसिष्ठ, शुक्र, जड़भरत, दत्त, गोडपाद और शंकर) एककारी (अद्वैतब्रह्मनिष्ठ) हुए । मूलस्वरूप का उन्होंने पार नहीं पाया, ज्योति जला-जलाकर मर गये । चौदह व्रतों को करने वाले (चौदसिया) और पूर्णव्रत करने वाले (पूनमिया) जंन हुए । अर्हन्तपद का उन्होंने पार नहीं पाया, बाल लोंच-लोंच कर मर गये । एक अल्लाह (मौला) को कुरान के मानने वालों ने दो बना दिया (शिया और सुन्नी दो सम्प्रदाय) । ग्यारह खुरासानी (नबी) हुए । अल्लाह का उन्होंने भी पार नहीं पाया, वाँग दे-दे मर गये । नौ नाथ और चौरासी सिद्ध आसनधारी हुए । योग का उन्होंने भी पार नहीं पाया, वनखण्डों में भ्रम-भ्रम मर गये । पंचतत्त्व की काया (सक्की) नष्ट हुई, कोई मुरझित नहीं रख सका । गोरखनाथ कहता है कि काल का दमन उपीने किया, त्रिपुने ज्ञान का प्रकाश कर लिया ।

धर्म एवं सम्प्रदाय के नाम से जो बाह्याडंबर किये जाते हैं, वे सब मिथ्या हैं । मूल है ज्ञान । जिसका आचरण किया जा रहा है, उसका ज्ञान । बिना ज्ञान के मात्र बाह्याचारों में फंसे हुआ को गोरखनाथ ने बड़े तीखे शब्दों में तीखी फटकार सुनायी है । यहाँ तक कि नाथ और सिद्धों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा है । कबीर ने यह तीखापन गोरख से ही सीखा था ।

‘अगर खुरासानियों से तात्पर्य नबी से है तो वे बारह हुए हैं और उनमें से एक ही खुरासान के निवासी थे ।’ ऐसा डा० बड़धवाल का मत है ।

(२०)

गोरखनाथ कहते हैं कि काया-गढ़ को लो । काया-गढ़ को लो और युग-युग जीओ । काया रूपी दुर्ग के अन्दर नौ लाख खाइयाँ (नवरंघ्र) हैं । यन्त्र (चक्र) फिरते हैं । इसलिए गढ़ नहीं लिया जाता । वहाँ ऊँच-नीचे पर्वत और झिलमिलाती हुई खाइयाँ हैं । कोठड़ी (ब्रह्मरंघ्र) का पानी (अमृत) सम्पूर्ण गढ़ शरीर में संचरित होता है । यहाँ नहीं, वहाँ नहीं, त्रिकुटी के मध्य सहज शून्य में हमारा निवास है । आदिनाथ (जिव) के नाती, मत्स्येन्द्रनाथ के पुत्र गोरखनाथ के काया रूपी गढ़ को जीत लिया हैं ।

(२१)

हे अवधूतराज ! किससे युद्ध करूँ ? कोई विपक्षी नहीं दिखाई देता । अब जिससे युद्ध करता हूँ, वही आत्मा राम है, (आत्मास्वरूप है ।) स्वयं ही मछली और कछुआ है तथा स्वयं ही जाल है । स्वयं ही धोवर (मछली मारने वाला) है और स्वयं ही काल है । स्वयं ही शेर और बाघ है तथा स्वयं ही गाय है । स्वयं ही मारता है, स्वयं को ही खाता है । स्वयं ही टटिया, स्वयं ही फलक तथा स्वयं ही बन्धन है । स्वयं ही मारने वाला, स्वयं ही शरीर है । (गोरखनाथ के लिए) न तो नहाने के लिए कोई तीर्थ है और न पूजने के लिए कोई देवता । गोरखनाथ का कहना है कि (उसका आराध्य देव तो) अलक्ष्य और अभेद है ।

गोरखनाथ का तात्पर्य है कि सर्वात्मबोध ही परमात्मबोध है ! सब जगह एक ही सत्ता विद्यमान है—जड़ और चेतन सभी में वही है । भेद-दृष्टि समाप्त होने पर ही अभेद की प्राप्ति है ।

टाटो=टटिया, ठहर । फड़िका=फरका, जिससे ठहर के ऊपर छान छाया जाती है । कध=स्कंध, शरीर ।

(२२)

मेरा गुरु तीन छन्द गाता है अर्थात् एक ही बात को तीन प्रकार से कहता है । मुझे पता नहीं कि मेरे गुरु कहाँ चले गये, उनके बिना मुझे नौद नहीं आती ।

(एक ही माया है जो विभिन्न रूपों में विभिन्न स्थानों पर विद्यमान रहती है ।) वही माया कुम्हार के घर में हाँडी के रूप में है, अहीर के घर में गाय के रूप में है और ब्राह्मण के घर उमकी स्त्री (राँड) के रूप में विद्यमान है । इस प्रकार राँडी, साँडी और हाँडी एक ही चीज है ।

माया ही राजा के बरछे या बाण के रूप में, जंगल में बेल के रूप में और तेली के घर में तेल के रूप में विद्यमान है । इस प्रकार तेल, बेल और सेल एक ही चीज है ।

वह माया ही अहीर के घर में भैंस या गाय के रूप में, देवालय में लिंग के रूप में तथा दुकान में होंग के रूप में विद्यमान है । इस प्रकार होंग, लिंग और स्पंग (शृंगिन्) एक माया के ही तीन रूप हैं ।

एक ही सूत्र से नाना रूप बने हुए हैं, जो बहुत प्रकार से देखने में आते हैं । गोरखनाथ गुण रहित माया का यह वर्णन करते हैं । सत्गुरु ही ऐसी माया का विवेक करा सकता है ।

डा० पीताम्बर दत्त बड़वाल ने 'साँडी' का अर्थ 'मलाई' किया है ।

इस संसार में एक माया ही विभिन्न रूपों में विद्यमान है । माया के विभिन्न रूपों का वर्णन कबीर ने भी अनेक पदों में किया है । एक पद की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

“माया महा टगनी हम जानी ।

तिरगुन फाँसि लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी ।

केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी ।

पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ हू में पानी ।

जोगी के जोगिन होइ बैठी, राजा के रानी ।

काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी कानी ।"

(२३)

बछड़े (मूलाधारस्थ सूर्य) को बांधो (संयत करो) और दूध (अमृत) को पी जाओ। इससे कलियुग में भी शरीर अमर हो जायेगा। आकाश (ब्रह्मरंध्र) की गाय (चन्द्र) ने बछड़ा (सूर्य) उत्पन्न किया है। (सूर्य की उत्पत्ति ब्रह्मरंध्रस्थ चन्द्र से ही हुई है) उस गाय के पूँछ और पैर नहीं हैं। बारह (कला वाला सूर्य) बछड़े तथा सोलह कला वाला चन्द्रमा) गायें हैं। गाय को दुहते-दुहते रात्रि बीत गयी। यह गाय अचर है (अचल है अथवा न चरने वाली है) इसलिए घास-फूस नहीं खाती। पाँच ग्वालों (पंच ज्ञानेन्द्रियों) को मारने के लिए दौड़ती है। इस गाय का दूध मीठा है। गोरखनाथ गगन (ब्रह्मरंध्र) में बैठा-बैठा पीता है।

धीर=क्षीर, दूध। पाया=पैर। बिहाई=बिता दी। कचरा=घास-फूस।

(२४)

(जीवात्मा इस जगत् में शरीर के) साथ आता है किन्तु (जब जाता है तो) अकेला जाता है। इसी से गोरख राम में रमा हुआ है। हंस काया के साथ आया किन्तु जाता हुआ जोगी (आत्मा) किसी ने नहीं पाया। जीवित संसार में, मरा हुआ श्मशान में प्राण पुरुष ने किधर प्रयाण किया (कोई नहीं जानता)। (पहले) जन्म (फिर) मरण और फिर वियोग (होता है)। गोरखनाथ इसलिए योगी हो गया है।

मृवां=मरा हुआ। मसाणं=श्मशान। पयाणं=प्रगणं। जांमण=जन्म। तार्थ=इसलिए।

(२५)

सब चेले (सारा संसार) सोते हैं, नाथ सतगुरु जागता है। वह नाथ अवधूत दसवें द्वार (ब्रह्मरंध्र) पर मधुकरी (अमृत) माँगता है। उसके पास सहज ज्ञान का खप्पर तथा सुषुम्ना का डंडा है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ रूपी साथी उसके साथ मिलकर नवखण्ड (नवद्वारों) में खेलते रहते हैं। इड़ा और पिंगला के बीच आसन लगाओ। अनहद नाद से काल के भय को टालो। मैं तो गगन-मंडल (ब्रह्मरंध्र) में अकेला रमण करता हूँ और ऊर्ध्वमुखी वंकनाल (सुषुम्ना) से अमृतरस का उपभोग करता रहता हूँ। गोरखनाथ गुरु का उपदेश कहता है कि संतजन के मिलने से संशय का नाश हो जाता है।

सूता=सोते हैं। मधुकरी=रोटी। खपरा=खप्पर (भीख माँगने का पात्र) गंग जमन=इड़ा-पिंगला। बालां=जलाओ (आसन जलाओ का तात्पर्य है धृती रमाओ)। झेला=झेलता हूँ, उपभोग करता हूँ। अदेसा=संशय।

कुछ संयासी भिक्षा में ही अपना चित्त लगाए रखते थे। उनके लिए बही प्रमुख काम था। गोरख ने चित्त को भिक्षा से हटाकर आंतरिक मधुकरि की ओर लगाने की बात इसीलिए की है।

(२६)

हे राजा साँभल जाओ। अवधूत कहता है, उसकी अनुपम वाणी सुनो। गुण-हीन नारी से प्रेम करते हो। सोते-सोते रात बिता दी। (माया ऐसे वृक्ष के समान है, जिसकी) न डाल है, न मूल। न पत्ते हैं, न छाया। इसे (माया को) पंगु (आत्मा) बिना जल के सींचता है। (वह ऐसे हैं कि) बिना मढ़े हुए ही मृदंग बजता है और इस प्रकार लोक उस पर रीझता है। हे अवधूत ! चींटी ने (तुच्छ माया ने) पर्वत (उच्च आत्मा) को उठा लिया या गिरा दिया। गाय (निर्बल माया) ने बाघ (सबल आत्मा) को भगा दिया। खरहे (तुच्छ माया) ने समुद्र को लहरों को मना लिया। मृगों (इन्द्रियों) ने चीते (आत्म तत्व) को मार डाला। हे अवधूत ! ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर जा रहे हो। बिना गुरु के प्रकाश नहीं। जीता हुआ गोरख अब नहीं हारेगा, समझ कर पासे डालेगा।

‘साँभल’ किसी राजा का नाम भी हो सकता है। शबक=झपकी लेने पर, सोते हुए। बिहांगी=बोती। पिगुला=पंगु। आत्मा को पंगु इसलिए कहा है कि ब्रह्मज्ञान हो जाने पर इन्द्रियाँ नष्ट हो जाती हैं। मंदला=मृदंग। डोल्या=लुढ़-काया। बिडार्या=भगा दिया। सुसल=शश+ला, खरहे ने। रराल=डालेगा।

(२७)

हे अनगढ़ देव (निरंकार परमेश्वर) ! मैं तुझ पर बनिहारी जाता हूँ। गढ़ी हुई (बनी हुई) मूर्ति की सेवा सब कोई करता है किन्तु उसका (निराकार ब्रह्म कहें) भेद नहीं जानता। तू आदि पुरुष अविनाशी कहा जाता है, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। सारा संसार तेरा गढ़ा हुआ है, तू किसी ने नहीं गढ़ा। दस अवतार अवतरित हुए और चले गये किन्तु वे निराकार राम नहीं हो सके। कर्म का फल अपना उन्होंने भी पाया। करने वाला कोई और ही है। तू पृथ्वी का पूर्ण ब्रह्म पुरुष है। सम्पूर्ण स्वरूप और भूतियाँ तुझ में समाहित है। मैंने तेरा गढ़ने वाला न कानों से सुना और न नेत्रों से देखा। तू तो अपने आपसे उत्पन्न हुआ है। तुझे देखने से उजाला हो उजाला है अथवा तू ही प्रकाश को देखता है। गुह के उद्देशानुसार गोरख कहता है कि (सबका) स्रष्टा तू ही है।

गोरखनाथ ने निराकार ब्रह्म के स्वरूप एवं शक्ति का निरूपण किया है। कबीर में अवतारवाद का जो खण्डन मिलता है, वह गोरखनाथ से होता हुआ हो वहाँ तक आया है।

भाषा की सरलता और खड़ीबोली का आधुनिक ह्रा प्रस्तुत पद में द्रष्टव्य है।



डा० कमल सिंह

जन्म — 21.07.1939 (अलीगढ़), **शिक्षा** — एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच.डी.। सनातन धर्म महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर के हिन्दी-विभाग में रीडर एवं विभागाध्यक्ष से सन् 2000 ई. में सेवा मुक्त होकर स्वतंत्र लेखन में संलग्न।

मौलिक पुस्तकें — गोरखनाथ और उनका हिन्दी साहित्य, गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन, गोरखनाथ हिन्दी के प्रथम कवि, बाबा गोरखनाथ, आदिकालीन मानक हिन्दी और गोरखनाथ, आस्था और पीड़ा, भाषा-विवेचन, साहित्य चिन्तन आदि 16 पुस्तकें।

संपादित पुस्तकें — संस्कृति, साहित्य और भाषा, डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' : व्यक्तित्व और कृतित्व, समर्पण, संपर्क भाषा हिन्दी और भारतीय भाषाएँ, यह जो हमारा है, कवितावली पदकोश आदि 26 पुस्तकें।

शोध-निर्देशन — चौदह शोधार्थियों के शोधकार्य संपन्न।

पुरस्कार एवं सम्मान — 1. शोध-प्रबन्ध पर आगरा विश्वविद्यालय का स्वर्णपदक। 2. गोरखनाथ की भाषा का अध्ययन ग्रंथ पर श्री अमनसिंह आत्रेय हिन्दी विकास संस्थान, मेरठ द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित। 3. इसी ग्रंथ पर बिहार सरकार से पुरस्कार 4. भाषा विवेचन पर उ.प्र. सरकार द्वारा पुरस्कृत 5. आस्था और पीड़ा पर उ.प्र. सरकार द्वारा पुरस्कृत 6. डा. बद्रीप्रसाद कपूर स्मृति 'साहित्य भूषण सम्मान'

विशेष — गोरखनाथ से संबंधित विशेष अध्ययन/गोरखनाथ को हिन्दी का प्रथम कवि सिद्ध करने का श्रेय। अनेक संस्थाओं में विशिष्ट व्याख्यान। अनेक सेमीनार, गोष्ठी कार्यशाला आदि का आयोजन एवं संचालन। अनेक संस्थाओं के सदस्य।

सम्पर्क — 186 इंजीनियर्स कालोनी, क्वार्सी बाईपास रोड, अलीगढ़ — 202001 (उ.प्र.) फोन नं. — 9411670666, 9719464615

ISBN 978 - 81 - 88978 - 34 - 2



186, इंजीनियर्स कालोनी,

क्वार्सी बाईपास रोड, अलीगढ़ — 202001 (उ.प्र.)